यह पुस्तक भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद् (आई० सी० एस० एस० आर०), नई दिल्ली के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित की गयी है। इसमें दिये गये तथ्य, विचार एवं निष्कर्ष के लिए पूर्णतया लेखक जिम्मेदार है न कि भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद्।

कुमारप्पा ग्रामस्वराज्य संस्थान
बी-190, यूनिवर्सिटी मार्ग, बापू नगर
जयपुर-302004

प्रशासनिक निदेशक	:	जवाहिरलाल जैन
योजना निदेशक	:	डा० अवध प्रसाद
सहयोगी	:	गोपीनाथ गुप्त। पी०के० सवानी
आमुख	:	डा० लक्ष्मीमल्ल सिंघवी
भूमिका	:	डा० उपेन्द्र बक्सी

लोक अदालत : संगठन एवं कार्य-पद्धति का अध्ययन

सुरिन्दर कुमार घई, मैनेजिंग डाइरेक्टर, स्टर्लिंग पब्लिशर्ज प्रा० लि०, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित एवं स्टर्लिंग प्रिन्टर्स, एल-11 ग्रीन पार्क एक्सटेन्शन, नई दिल्ली में मुद्रित।

Lok Adalat : Sangathan Awam Karyapadhati Ka Addhyayan

मूल्य 50 रुपये

आमुख

डा. अवध प्रसाद और उनके दो सहयोगियों ने अपनी शोध के लिए एक ऐसा रोचक, जीवन्त और विचारोत्तेजक विषय चुना है कि जिसका अंतरंग सम्बन्ध भारतीय लोकजीवन के मर्म और यथार्थ से है।

मूलत: जनतांत्रिक राज्य प्रणाली स्थानीय स्वायत्तशासन का ही एक विराट राष्ट्रीय स्वरूप और संस्करण है। इस दृष्टि से हमारी राष्ट्रीय संसद को राष्ट्रीय पंचायत कहा जा सकता है। राष्ट्रीय स्तर पर और राज्य के स्तर पर संसदीय पंचायत प्रणाली की सफलता के लिए यह अनिवार्य है कि हम गांव के स्तर पर, तहसील या तालुक के स्तर पर, जिला, कस्बा और शहर के स्तर पर, स्वायत्तशासन की संस्थाओं में प्राण-प्रतिष्ठा करें, स्वावलम्बी जनतांत्रिक परम्पराओं का निर्माण करें, लोकशक्ति में लोकनिष्ठा को सुदृढ़ और संगठित करें। अन्यथा आशंका यह है कि हमारा संसदीय परिवेश केवल बाहरी दिखावा और आडम्बर ही रह जायगा। कहना न होगा कि सिर्फ ऊपरी सतह का अभिजात लोकतन्त्र कभी स्थायी नहीं हो सकता क्योंकि उसके साथ जनजीवन की जीवनदायिनी जड़ें जुड़ नहीं सकतीं। मेरा यह विनीत मत है कि इस आधारभूत प्रस्थापना की उपेक्षा करना हमारे देश में जनतन्त्र के भविष्य के साथ खिलवाड़ करना होगा।

मुझे इसमें कोई संदेह नहीं की हमारे संविधान का प्रारूप बनाते समय संविधान-सभा एवं प्रारूप समिति ने स्वायत्तशासन की इस मूल प्रस्थापना के महत्व को पूर्णत: नहीं समझा। इस भूल-चूक के कारण अनेक थे। कांग्रेस संगठन और देश की राजनीति का अधिक प्रभावशाली मध्यवित्त नेतृत्व गांधीजी की नैतिक-आध्यात्मिक तेजस्विता और लोकछवि के समक्ष विनत-नतमस्तक अवश्य था, किन्तु उसने गांधीवादी दर्शन, विचारधारा

और मूल्यों का हृदयंगम नहीं किया था। प्रारूप समिति के अध्यक्ष डा. भीमराव अम्बेडकर भारतीय पंचायत-प्रणाली के परंपरागत सामाजिक अन्याय की आशंकाओं के कारण नकारात्मक दृष्टिकोण के व्याख्याता बन गए थे। संविधान सभा के प्रमुख सांविधानिक सलाहकार श्री बेनीगल नरसिंह राऊ की निजी पृष्ठ-भूमि में कानून और प्रशासन ही मुख्य थे, जनजीवन और राजनीति से उनका सम्पर्क नहीं था। प्रारूप समिति के सदस्यों की भी स्थिति यही थी कि उनमें से कई अपने विषय के, विशेषतया कानून के, उद्‌भट विद्वान अवश्य थे किन्तु ग्राम्य जीवन की परम्पराओं और संभावनाओं का साक्षात्कार उन्हें नहीं था। संविधान-सभा स्वयम् वयस्क मताधिकार के आधार पर नहीं चुनी गई थी, यद्यपि उसमें व्यापक राष्ट्रीय सहमति का समावेश अवश्य था।

संविधान निर्माण में पंचायत-संस्थानों की उपेक्षा का सबसे मूल-भूत कारण यह था कि उस समय हमारे देश में पाश्चात्य कानूनी और सांविधानिक परम्पराओं के विषय में, ब्रिटेन की संसदीय प्रणाली और संयुक्त राज्य अमरीका के संविधान के विषय में और ब्रिटेन की देख-रेख में बनाए गए भारतीय और दूसरे डोमिनियन देशों के संविधानों और शासन प्रणालियों के विषय में अपेक्षाकृत कहीं अधिक चिन्तन, साहित्य और जानकारी उपलब्ध थी। भारतीय राजनीति शास्त्र एवं आधुनिक अनुसंधान हमारे संविधान-निर्माण के समय बहुत कुछ अविकसित थे और आज भी अर्धविकसित ही हैं। पंचायत-व्यवस्था की संभावनाएं अनचीन्ही और अज्ञात थीं। पंचायतों को लेकर एक ओर किसी सुदूर पुरातन स्वर्ण-युग की सुरम्य कल्पनाओं को आहूत किया जाता था तो दूसरी ओर हमारे दीन-दलित, निरक्षर, सुसुप्त ग्राम्य-जीवन की लोकतांत्रिक सामर्थ्य शंकास्पद मानी जाती थी। ऐसी स्थिति में मौलिक सांविधानिक चिन्तन एवं पंचायती संस्थाओं के व्यावहारिक अनुभव के अभाव में पंचायती-संविधान की संकल्पना करना दुर्वह, दुस्तर और दुस्साहसपूर्ण होता।

राज्य-नीति के निदेशात्मक सिद्धान्तों में सम्मिलित अनुच्छेद 40 की पृष्ठभूमि में संविधान सभा के समक्ष समयाभाव के अतिरिक्त दो विरोधी विचारधाराओं के बीच एक अन्तरिम कामचलाऊ समझौते का महत्वपूर्ण कथ्य है। संविधान बनाते समय अनुच्छेद 40 में पंचायती व्यवस्था के विकास का आश्वासन देकर हमारी संविधान-सभा ने, पंचायती संस्थाओं की सांविधानिक-सार्वजनिक भूमिका पर राष्ट्रीय बहस को केवल कुछ समय के लिए स्थगित किया था। आज उस बहस के मूल प्रश्नों को फिर उठाया

जाना आवश्यक है; उन प्रश्नों पर गहराई से विचार करना अपेक्षित है।

हमारे संविधान के अनुच्छेद 40 के द्वारा पंचायती राज के उत्तरोत्तर विकास का जो संयत और विनम्र आश्वासन दिया और दुहराया गया था उसे पूरा करने के लिए समुचित सक्रिय प्रयत्न नहीं हो पाया। जो प्रयत्न बड़ी धूमधाम से प्रारम्भ हुए उनमें राष्ट्रीय राजनैतिक संकल्प, सदाशयता और साधनों का अभाव रहा। फलत: पंचायत-व्यवस्था की उज्जवल संभावनाएं अधिकांशत: अप्रकट और अपूर्ण रहीं और अपने शैशव में ही वह व्यवस्था विविध व्याधियों से रूग्ण और दुर्बल हो गई। पंचायत व्यवस्था की दुर्बलता के कारण जानना और उसकी व्याधियों का उपचार करना एक आधारभूत राष्ट्रीय महत्व का विषय है। जब तक हम अपने राष्ट्रीय स्वभाव को नहीं पहचान पाएंगे, राष्ट्र का स्वास्थ्य, शक्ति, स्फूर्ति तथा नये रक्त संचार से वंचित रहेगा। पंचायत व्यवस्था की सम्यक् दिन-चर्या देश की आधि-व्याधि-विकृतियों के लिए सक्षम और उपयोगी प्राकृतिक चिकित्सा सिद्ध हो सकती है, ऐसा मेरा मंतव्य और विश्वास है। किन्तु यह भी सम्भव है कि जब हम लोकनिष्ठा और राष्ट्रीय संकल्प के साथ, दूरदर्शी तद्दृष्टि और विनम्र विवेक के साथ, सामाजिक न्याय और संवेदन की संजीवनी प्रेरणा लेकर संकीर्ण दलगत स्वार्थों के ऊपर उठकर राष्ट्रीय सहमति के व्यापक आधार पर पंचायत व्यवस्था को संविधान और सार्वजनिक जीवन की प्रक्रिया में सुप्रतिष्ठित करें और उसे केवल शब्दों का अर्घ्य ही न दें, बल्कि उसे सार्थक बनाने में प्राणपण से जुट जाएं। यह लक्ष्य और कार्यक्रम सुगम नहीं है; राष्ट्रीय स्तर पर श्रम, संकल्प, दृष्टि, साधन और सहमति के समवेत समन्वय के बिना इस लक्ष्य और कार्यक्रम का सफल होना सम्भव नहीं है। मेरी यह मान्यता है कि जिस दिन यह लक्ष्य और कार्यक्रम हमारे देश में सही माने में मूर्त्तरूप लेने लगेगा, उस दिन हम एक नये विश्वास के साथ कह सकेंगे कि अब भारत में लोकतन्त्र और स्वतंत्रता सुरक्षित है, कि भारत में अब स्वातन्त्र्य और लोकतन्त्र लोकजीवन की धरती की तह में अपनी जड़ें जमा चुका है।

हमारे संविधान के अनुच्छेद 40 में पंचायत व्यवस्था का कोई सुनिश्चित स्वरूप निर्धारित नहीं किया गया है। मुख्यतया और मूलत: उस प्रावधान में दर्शन और दिशा का संकेत है, किसी सुस्पष्ट और ब्यौरेवार योजना का आदेश नहीं है। अनुछेद 40 का आधार और आग्रह 'स्वायत्त शासन' के निमित्त है और उस लक्ष्य के लिए अनुच्छेद 40 केवल ग्राम-पंचायतों को संस्थानात्मक आयुध और उपकरण के रूप में अभिहित और मनोनीत करता

है। न्याय-पंचायत या लोकअदालत का कोई शाब्दिक उल्लेख संविधान में नहीं मिलता। इस दृष्टि से यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि हमारे संविधान द्वारा आदिष्ट राज्य-नीति के निदेशात्मक सिद्धान्तों में न्याय-पंचायतों की स्थापना भी सम्मिलित है या नहीं ?

संविधान में ग्राम-पंचायत की कल्पना स्वायत्त-शासन की इकाई के रूप में की गई है, किन्तु इसका यह अनिवार्य अर्थ नहीं है कि ग्राम पंचायत या स्वायत्तशासन का कोई न्यायिक पक्ष और पहलू नहीं हो सकता, न यह कहा जा सकता है कि ग्राम-पंचायत और स्वायत्तशासन का संगठन केवल निर्वाचन की राजनीति का या संसदीय पद्धति का अंग मात्र हो सकता है। मूलभूत सैद्धान्तिक प्रश्न यह है कि क्या गांव, तहसील और जिला के स्तर पर न्याय-प्रशासन का कोई कार्य ग्राम-पंचायत को सौंपा जा सकता है या नहीं और यदि ऐसा किया जाता है तो परिणामतः क्या विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के क्षेत्राधिकार आपस में उलझ नहीं जाते ? उत्तर में यह कहा जा सकता है कि हमारी सांविधानिक प्रणाली संयुक्त राज्य अमरीका की तरह राज्य-शक्ति के सम्पूर्ण विभाजन के सिद्धान्त पर आधारित नहीं है और वस्तुतः संयुक्त राज्य अमरीका में भी राज्य-शक्ति के विभाजन का सिद्धान्त क्रियान्वित नहीं होता। किन्तु यह उत्तर संतोषजनक नहीं है। ब्रिटेन की संसदीय पद्धति में विधायिका और कार्यपालिका के बीच सीमारेखा अवश्य है किन्तु विभाजन नहीं है, क्योंकि मंत्रिपरिषद एक तरह से संसद की समिति है और सांविधानिक सिद्धान्त की दृष्टि से संसद के प्रति उत्तरदायी है; संयुक्त राज्य अमरीका में कांग्रेस (विधायिका) और राष्ट्रपति (कार्यपालिका) अलग-अलग हैं और राष्ट्रपति या उसकी काबिना के सदस्यों का अपने पदों पर रहना कांग्रेस के सांख्यिक समर्थन पर निर्भर नहीं करता। किन्तु ब्रिटेन एवं संयुक्त राज्य अमरीका दोनों में न्यायपालिका, विधायिका और कार्य-पालिका अलग और स्वतंत्र है। जिस प्रकार की शक्ति और क्षेत्राधिकार न्यायपालिका में निहित होते हैं उनके लिए न्यायपालिका का विधायिका और कार्यपालिका से अलग और स्वतंत्र होना अनिवार्य भी है। तब प्रश्न यह उठता है कि ग्राम पंचायत में राज्य-शक्ति का यह विभाजन किस प्रकार संयोजित हो, किस प्रकार न्याय-पंचायत या लोकअदालत पंचायत-व्यवस्था की विधायिका और कार्यपालिका से सर्वथा पृथक् स्वतंत्र और सुरक्षित रखी जाय ?

यह उल्लेखनीय है कि पुरातन समाज में न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका के बीच की सीमारेखाएं स्पष्ट नहीं थीं और शायद इसीलिए

पंचायत-व्यवस्था में इन तीनों पक्षों का एक विलक्षण सम्मिश्रण सम्पन्न हुआ। उस सम्मिश्रण के बावजूद भी पंचायत-व्यवस्था के न्यायिक पक्ष की विशिष्ट अपेक्षाओं को विस्मृत या उपेक्षित नहीं किया जाता था। न्याय की प्रक्रिया में 'पंच-परमेश्वर' की दुहाई दी जाती रही है। इसकी तह में मूल प्रस्थापना यह है कि न्याय निष्पक्ष, निश्छल, निर्भीक, निष्कलुष हो; कि न्याय संतुलित, सहृदय और सकरुण हो; कि न्याय युक्तियुक्त, तर्कसंगत और स्थापित मानकों पर आधारित हो; कि न्याय समाजोन्मुख हो और समाज के प्रति दायित्वपूर्ण हो। क्या न्याय-पंचायत की व्यवस्था आज इन आदर्शों को मूर्त्त रूप दे सकती है ?

समकालीन समाज के संदर्भ में न्याय-पंचायत को लेकर कई ज्वलंत प्रश्न उठते हैं—क्या बहुमत के मुखापेक्षी निर्वाचित पंच स्थानीय सामूहिक विवाद को निष्पक्ष नजर से देख सकते हैं ? क्या वे समय के—वातावरण के—वेग-आवेग में बह नहीं जायेंगे ? क्या मुखर या प्रबल भीड़ का भय उनकी अन्तरात्मा को आच्छादित नहीं करेगा ? क्या प्रभावशाली समुदाय न्याय-पंचायत के संयत्र को अपने स्थापित स्वार्थों का शस्त्र और माध्यम नहीं बना लेंगे ? इन प्रश्नों का कोई सीधा-सपाट उत्तर संभव नहीं है। स्पष्ट है कि इन प्रश्नों को नकारने से या उनसे पलायन करने की प्रवृत्ति से काम नहीं चल सकता। हमें सैद्धान्तिक और व्यावहारिक, दोनों स्तर पर विचार करना होगा और उपयुक्त कदम उठाने होंगे।

विवादों के निर्णय और समाधान में परम्परा से सभी देशों में रीति, रिवाज, लोकमत और सामान्य समाज की न्यूनाधिक भागीदारी रही है। एक हद तक, सामान्य नागरिक दीवानी विवाद का निर्णायक या दण्डनायक हो सकता है। दीवानी तथा फौजदारी मामलों में जूरी की प्रथा इसी भागीदारी का एक स्वरूप है। हमारे अपने देश में पंचायतों का न्यायिक पक्ष सदैव मुख्य रहा है। इस दृष्टि से न्याय-पंचायत या लोकअदालत इस देश के लिए कोई अनबूझ, अनजाना एवं अपरिचित विचार नहीं है। किन्तु आधुनिक समकालीन संदर्भ में यह विचार कितना खप सकता है, कितना कारगर हो सकता है, यह प्रश्न अवश्य उठता है। यह प्रश्न भी उभरता है कि शायद स्थानीय पंचायती न्याय सब प्रकार के विवादग्रस्त मामलों के लिए समुचित, उपयुक्त और पर्याप्त नहीं कहा जा सकता। उलझे हुए आधुनिक कानूनी विवादों के लिए विशेषज्ञों के न्यायालय शायद अधिक सक्षम और स्वीकार्य हों, इस तथ्य से भी इंकार नहीं किया जा सकता। जहां निजी वैयक्तिक मूलभूत अधिकारों का प्रश्न है वहां भी पंचायती न्याय का नियमन आवश्यक

होगा, यह भी मेरी राय में निर्विवाद है। ये प्रश्न न्याय-पंचायत की मर्यादाओं के प्रश्न हैं जिसे कानून के संतुलित और दूरदर्शी प्रारूप से सुलझाया जा सकता है। जहां तक न्याय-पंचायतों की निष्पक्षता का प्रश्न है, उस लक्ष्य के लिए हमें न्याय-पंचायतों की एक संस्कृति का निर्माण करना होगा; विश्वसनीय निष्पक्षता के मूल्यों को लोकशिक्षण एवं प्रशिक्षण द्वारा जनता और जनता के पंचों तक पहुंचाना होगा। यह कार्य व्ययसाध्य है, श्रमसाध्य है, निष्ठासाध्य है, अत्यंत कठिन है, किन्तु असंभव नहीं है। यदि हम न्याय-पंचायत की निष्पक्षता और सामाजिक संवेदन की उत्तरदायी न्याय-प्रक्रिया की नींव डालना चाहते हैं तो लोक-शिक्षण, लोकमत, विधि और परिपाटी के समन्वय से न्याय की एक नई लोक-संस्कृति का निर्माण करना चाहिए। हमारे ग्राम्य अंचलों में न्याय-पंचायत का संस्थान उस नई न्याय-प्रणाली एवं न्याय-संस्कृति का द्योतक, पोषक और संवाहक बन सकता है; स्थानीय स्तर पर लोकअदालत के रूप में होते हुए भी उसे हमारी न्यायपालिका से जोड़ा जा सकता है और एक व्यापक परिप्रेक्ष्य में हमारी न्याय-पंचायतें हमारे प्रतिदिन के लोक-जीवन में न्याय की आदतों को सजीव, सुघड़ और सुदृढ़ बनाने में योगदान दे सकती हैं।

स्वर्गीय श्री मोतीलाल सीतलवाड की अध्यक्षता में प्रथम विधि आयोग ने अपनी चौदहवीं रपट में पंचायती अदालतों की उपयोगी संभावनाओं पर बल दिया था। तदनन्तर केन्द्रीय सरकार ने विधि आयोग के सदस्य श्री जी. आर. राजगोपाल की अध्यक्षता में एक अध्ययन-दल गठित किया था। उस अध्ययन-दल की रपट पंचायती अदालतों के विषय में एक प्रामाणिक, विश्लेषणात्मक और रचनात्मक दस्तावेज है। राजगोपाल-अध्ययन-दल की सिफारिशें और उनके सुझाव क्रियान्वित करने की दिशा में कोई संकल्पशील प्रयत्न नहीं हुआ। उस रपट के अतिरिक्त न्यायमूर्ति श्री प्रफुल्ल भगवती की अध्यक्षता में गुजरात कानूनी सहायता समिति ने और न्यायमूर्ति श्री कृष्ण अय्यर की अध्यक्षता में केन्द्रीय सरकार की विशेषज्ञ समिति ने भी पंचायती अदालतों को पूरी सहानुभूति के साथ स्वीकार करने के लिए बहुत जोर दिया। केन्द्रीय सरकार की कानूनी सहायता विशेषज्ञ समिति (जिसका मैं सदस्य रहा) ने अपनी 1973 की रपट ('जनता को प्रक्रियात्मक न्याय') में पंचायती न्याय और कानूनी सहायता पर एक पूरा अध्याय लिखा है और न्याय-पंचायतों को देश के बहुसंख्यक निर्धन-जन के लिए कानूनी सहायता की एक सार्थक विधा और प्रकार माना है। हमारी 1973 की रपट में यह मन्तव्य असंदिग्ध शब्दों में

प्रकट हुआ है कि आधुनिक न्याय के दुःसह व्यय, दुर्निवार विलम्ब, दुःसाध्य उलझी हुई प्रक्रिशाएं और उनसे उत्पन्न अविश्वास और अलगाव की पीड़ादायक प्रतीतियां एक सीधा-सरल उपाय और एक सुलझा हुआ समाधान मांगती है। न्याय-पंचायत वह समाधान हो सकता है। न्याय-पंचायतें हमारी अधिकांश आबादी के लिए दिन-प्रतिदिन की सामान्य विवाद-समस्याओं को सुलझाने में, मध्यस्थता करने में, मेल और समझौता कराने में और सर्वमान्य निर्णय देने में एक विराट और व्यापक योगदान दे सकती हैं। न केवल ग्रामीण अंचलों में बल्कि शहरी विवादों में भी इस प्रकार की न्याय-पंचायतों की उपयोगी भूमिका हो सकती है। किन्तु इन संभावनाओं को सकारात्मक और मूर्त्त रूप देने के लिए गहराई तक स्वस्थ लोकमत बनाना होगा, मर्यादाएं और सामाजिक परिपाटियां स्थिर करनी होंगी, कानूनी सुरक्षाओं के विधि-विधान निर्मित करने होंगे, मिल कर, विचार-विनिमय से विवेक के आधार पर 'संपृच्छध्वं संजानीध्वं' के आदर्श पर चलने की सांस्कृतिक आदत डालनी होगी, दलगत और निजी स्वार्थों से ऊपर उठ कर सामाजिक न्याय लेने और देने की क्षमता का निर्माण और विकास करना होगा, हर समस्या के परस्पर विरोधी पहलुओं को समझने और उनमें संतुलन-समन्वय स्थापित करने का स्वभाव बनाना होगा, न्यायपंचों और जनता को पंचायत-न्याय के दर्शन और शैली में शिक्षा-दीक्षा देनी होगी। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह आदर्श बहुत दुर्गम और दुस्तर है, अत्यंत महत्त्वाकांक्षी है, यह भी स्पष्ट है कि यह आदर्श राष्ट्रीय सहमति, निष्ठा, साधन और श्रम का मुखापेक्षी है। किन्तु इस आदर्श के अतिरिक्त भारतीय जीवन के सन्दर्भ में और कोई समर्थ विकल्प भी नहीं है। इस संबंध में अब तक चलती आ रही उपेक्षा, उदासीनता और पलायनवादी अकर्मण्यता कोई विकल्प या समाधान नहीं है बल्कि दृष्टिरहित संवेदनहीनता का और क्लीव विवशता के परिचायक मात्र हैं। हमें नया समाज बनाने और नया दौर लाने के लिए इस संवेदनहीनता और उदासीनता को तिलांजलि देनी होगी, श्रेष्ठ परंपराओं से प्रेरणा लेते हुए नये परीक्षणों और प्रयोगों के प्रति आशावान और निष्ठावान होना होगा, अनागत, अज्ञात भविष्य का सामना करने के लिए अतीत की उपलब्धियों और वर्तमान की अपेक्षाओं को जोड़ कर नई सामर्थ्य और नये संकल्पों का संचय, समन्वय और संयोजन करना होगा। यह स्वप्न का आवाहन भी है और यथार्थ का आदेश भी।

प्रस्तुत पुस्तक को एक स्वप्निल यथार्थ की तीर्थयात्रा कहूं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस पुस्तक में डा. अवध प्रसाद एवं उनके दो सहयोगियों ने

रंगपुर में श्री हरिवल्लभ भाई पारीख द्वारा स्थापित लोकअदालत का अध्ययन किया है। मैं रंगपुर आश्रम को एक अनोखा परीक्षण मानता हूं। मैंने स्वयं इस संस्थान का साक्षात्कार किया हैं। कुछ वर्ष पूर्व मैं स्वयं जिज्ञासा, कुतूहल और आकर्षण से संप्रेरित होकर बड़ौदा जिला के उस दुर्गम वनप्रान्तर में गया था और अपने साथ दिल्ली विश्वविद्यालय के विधि-संकाय के प्रमुख डा. उपेन्द्र बक्सी को ले गया था ताकि हम दोनों इस परीक्षण पर कुछ सामग्री संकलित करें, उसका विश्लेषण और मूल्यांकन करें। सब मिलाकर रंगपुर की मेरी यात्रा बहुत सार्थक और सफल रही। रंगपुर परीक्षण की अपनी कुछेक कमियां और कमजोरियां हैं किन्तु उसकी अपनी अद्वितीय और उल्लेखनीय उपलब्धियां भी हैं। वे उपलब्धियां और वे कमियां और कमजोरियां समाज-वैज्ञानिकों के लिए बहुत मूल्यवान हैं। प्रस्तुत पुस्तक इस दृष्टि से विशेष महत्त्व रखती है। जिस अनुसंधान-कार्य और मूल्यांकन की कल्पना मैंने और श्री उपेन्द्र बक्सी ने की थी और जिसका श्रीगणेश हमने रंगपुर जाकर किया था, यह पुस्तक उस कार्य की एक सजीव कड़ी है। मैं डा. अवधप्रसाद, श्री गोपीनाथ गुप्ता एवं श्री पी. के. सवानी को बधाई देता हूं और कुमारप्पा ग्राम स्वराज संस्थान एवं उसके सुयोग्य सदस्य-सचिव श्री जवाहिरलाल जैन को साधुवाद देता हूं कि उन्होंने रंगपुर की लोकअदालत का एक समाज-वैज्ञानिक नखचित्र प्रस्तुत किया है; किताबी अनुसंधान की लीक से हट कर हमारे राष्ट्रीय जीवन के यथार्थ और मर्म को व्यवहार के धरातल पर देखने, समझने और आंकने का एक रचनात्मक और अध्ययनशील प्रयत्न किया है।

मुझे आशा है कि यह पुस्तक पंचायती न्याय के कठिन और पेचीदा सवालों और समस्याओं पर राष्ट्रीय चिन्तन के लिए तथ्य और विवरण ही नहीं बल्कि विश्लेषण, दृष्टि और अनुमति भी जुटाएगी एवं विवाद-समाधान के क्षेत्र में राष्ट्रीय नीति-निर्माण का मार्ग प्रशस्त और आलोकित करेगी।

—डा० लक्ष्मीमल्ल सिंघवी,

वरिष्ठ अधिवक्ता, सर्वोच्च न्यायालय;
मानद कार्याध्यक्ष, सांविधानिक एवं संसदीय अध्ययन संस्थान

30, लोदी एस्टेट,
नई दिल्ली.
1 मई, 1978

भूमिका

समाज में विवादों का निपटारा करने वाली संस्थाओं का अध्ययन विधि की समाजशास्त्रीय सूची का एक मुख्य विषय रहा था एवं है। राजकीय विधि प्रणालियों में ही अत्यधिक उलझे रहने के कारण न्याय (विवादों का निपटारा) से जिनका गहरा सम्बन्ध रहा है, उनमें सामान्यत: यह धारणा बन गयी है कि सरकारी न्यायालयों के अतिरिक्त विवादों का निपटारा करने वाली अन्य संस्थायें समाज में विधि के अध्ययन की दृष्टि से अत्यन्त कम महत्त्व की अथवा रास्ते के इधर-उधर की स्मारक चिन्ह मात्र हैं। वास्तव में सामान्य प्रवृत्ति यह रही है कि विवादों का निपटारा करने में प्रवृत्त गैर-सरकारी संस्थाओं का अध्ययन 'सांस्कृतिक' या विधि नृतत्वविज्ञान के अन्तर्गत आने वाला अध्ययन मान लिया जाय, जो कुछ इने गिने विशेषज्ञों तक सीमित मूल विषय से परे का क्षेत्र है और व्यस्त न्यायाधीश, वकील या विधायक की दृष्टि से इसका कोई तात्कालिक तथा प्रासंगिक महत्त्व नहीं है।

भारत में 'विधि' नृतत्वविज्ञान को भी संपूर्ण शास्त्रीय अनुशासन के रूप में अभी तक मान्यता प्राप्त नहीं हुई है। नृवंशशास्त्रीय विवरणों में भी विवादों का निपटारा करने वाली संस्थाओं और उनके द्वारा प्रक्रियाओं के यदा-कदा प्रासांगिक उल्लेख ही हैं, लेकिन जहां तक उनके सामाजिक स्थायित्व एवं परिवर्तन के दिशा-निर्देशन के मूल्यांकन का प्रश्न है, वह कभी-कभी ही अंगीकार किया गया है। आदिवासी नृवंशशास्त्र में भी विवादों का निपटारा करने वाली संस्थाओं और उनके द्वारा व्यवहृत प्रक्रियाओं के महत्त्व की आम-तौर पर अवहेलना की गयी है। (अवलोकन करें—भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद्—1972, 31-133, 258-61 वीणादास, 1973) जहां कहीं विवादों का निपटारा करने वाली इन संस्थाओं की उपादेयता दृष्टि-गोचर हो भी रही है, वहां भी व्यवस्थित अनुसंधान के अवसरों का परित्याग कर दिया गया लगता है (बक्सी—1973)। आदिवासी जातीय समुदायों में सामाजिक नियंत्रण और न्याय परम्पराओं से संबंधित महत्त्वपूर्ण अध्ययन क्रिस्टोफ वान-फ्यूरर हैयरडोर्फ के 'मोरल्स एण्ड मेरिट्स' (1967) और प्रोफेसर नायक द्वारा किये गये अध्ययनों (भारतीय सामाजिक अनुसंधान परिषद् 1973 : 258) तक ही सीमित हैं।

'विधि' नृत्तत्वविज्ञान के अध्ययन की दृष्टि से भी आदमसन होवेल (1954), मेक्स ग्लूकमेन (1967, 1965), पालवोहन्नन (1957), ए. एल. एस्सटीन (1964) जैसे उच्च कोटि के अध्ययन भारत में नहीं किये गये हैं। तथ्य तो यह है कि भारत के प्रमुख विश्वविद्यालय विधि के स्नातकोत्तर अध्ययन के लिये सर हैनरी मैन की पुरानी पुस्तकों पर आश्रित हैं और यह केवल इस बात का ही परिचायक नहीं है कि हमारे विधि पाठ्य-क्रम अप्रचलित और असंगत हैं, बल्कि इस क्षेत्र में इस ज्ञान की जो दयनीय स्थिति है, उस पर दुखद टिप्पणी भी है।

लम्बे समय से एकत्र होती जाने वाली इस कमी को सुधारने की आवश्यकता बहुत तीव्र है। इस सन्दर्भ में रंगपुर स्थित लोकअदालत के बारे में किया गया वर्तमान अध्ययन इस क्षेत्र में उपलब्ध अत्यन्त सीमित साहित्य में एक ठोस अभिवृद्धि माना जायेगा। प्रमुख सर्वोदय नेता श्री हरिवल्लभ परीख, (जिन्हें लोग स्नेह पूर्वक 'भाई' के प्रिय नाम से संबोधित करते हैं) के द्वारा प्रारम्भ की गयी यह लोकअदालत अब चौथाई सदी से अधिक पुरानी संस्था हो गयी है। इस संस्था ने (1946-71) की पच्चीस वर्षीय अवधि में कुल 17,254 विवादों का निपटारा किया है, जिनमें 10615 पारिवारिक एवं विवाह सम्बन्धी, अशांति तथा कलह के 3215, भूमि सम्बन्धी विवाद 2225, मारपीट एवं हिंसा के 816, एवं कुछ हत्या एवं हत्या के प्रयासों से सम्बन्धित रहे हैं। इस दीर्घ अवधि में इस संस्था ने, जो प्रथमत: विवादों का निपटारा करने वाली संस्था के रूप में प्रारम्भ हुई थी, इस क्षेत्र में विविध प्रकार की सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तनों की प्रक्रिया का सिलसिला जारी कर दिया है। इस क्षेत्र में लगभग 402 ग्रामदानी गांव हैं, जिनमें एक लाख से अधिक लोग निवास करते हैं और लगभग 7,500 एकड़ भूमि है। रंगपुर का यह आश्रम, जिसके अब नौ केन्द्र और हैं, इस संपूर्ण क्षेत्र में आर्थिक-सामाजिक परिवर्तन लाने के कार्यों में सफलतापूर्वक कार्यरत हैं। उसकी मुख्य उपलब्धियां हैं—भूमि-मुक्ति (खास तौर से साहूकारों के चुंगुल से भूमि का छुटकारा), शराब-मुक्ति (नशे के व्यसन से मुक्ति), कृषि-यंत्रीकरण और सिंचाई, पशुपालन मे उन्नत तरीकों का प्रयोग, जीवनशालाओं (जीवन को स्वावलंबी एवं सुखमय बनाने का मार्ग दिखाने वाली पाठशाला) के माध्यम से प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षण कार्यक्रम और सहकारी समितियों और बैंकों के माध्यम से ऋण एवं एकीकृत वित्तीय आवश्यकताओं की आपूर्ति, जो संभवत: अल्पकालीन कार्यक्रमों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम है। इस प्रकार विवादों का निपटारा करने के सामाजिक

सेवा-कार्यों के बिन्दु से प्रारंभ कर के रंगपुर आश्रम इस क्षेत्र के सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन की महत्त्वपूर्ण धुरी बन गया है। वास्तव में आश्रम और उसका नेतृत्व बहुत बड़ी सीमा तक एक प्रकार से इस क्षेत्र की 'सरकार' बन गया है।

ग्रामदान एवं भूदान आन्दोलन तथा ऊपर वर्णित अन्य सेवा कार्यों के कारण लोकअदालत के एक प्रकार के 'संघीय' संगठन के स्वरूप का धीरे-धीरे विकास होता जा रहा है। कम से कम ग्रामदानी गांवों में तो ग्राम सभाओं ने स्थानीय जनता की अदालतों का रूप ग्रहण कर लिया है। वे अपने क्षेत्र के अनेक विवादों का अपने स्तर पर निपटारा कर देती हैं। स्थानीय स्तर पर निर्णित न होनेवाले विवाद यदाकदा निर्णयार्थ रंगपुर स्थित लोक-अदालत के समक्ष ले जाये जाते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि लोकअदालत प्रणाली में विवादों का निपटारा करनेवाली संस्थाओं का एक समूह आश्रम के तत्वावधान में संगठित हो गया है। यह सही है कि कुछ हद तक इसे प्रणाली कहने की बात की पूर्णतः संपुष्टि नहीं की जा सकती। वैसे लोकअदालत प्रणाली में भाई की जो भूमिका है, उसको भी भुलाया नहीं जा सकता। लोकअदालत भाई की कृति है। उनके नेतृत्व एवं मार्गदर्शन में इसका जन्म एवं विकास हुआ है, इसलिये जब हम लोकअदालत के संगठन की विवेचना करें तो उसका सही विवेचन करने का एक मात्र तरीका यह है कि हम मात्र लोकअदालत के बजाय 'लोकअदालत में भाई' इस मुहावरे का प्रयोग करें (बक्सी 1975)।

जो कुछ हो, तथ्य यह है कि लोकअदालत ने अपना स्थानीय प्रतिरूप खड़ा कर दिया है और लोकअदालत का कोई भी अध्ययन उस समय तक पूरा नहीं माना जायेगा जब तक साथ ही साथ स्थानीय स्तर पर विवादों का निपटारा करने में प्रवृत्त इन संस्थाओं का भी गहरा अध्ययन न किया जाये। इस दृष्टि से वर्तमान अध्ययन भी इसी प्रकार अधूरा है जिस प्रकार हम लोगों द्वारा किया गया पूर्व अध्ययन, लेकिन 'केन्द्रीय' लोकअदालत के अध्ययन की दिशा में निश्चय ही यह एक महत्त्वपूर्ण तथा आवश्यक प्रारंभ है। रंगपुर की लोकअदालत एक ऐतिहासिक प्रारंभ बिन्दु तथा सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन के सतत केन्द्र-बिन्दु तथा सामाजिक दृष्टिकोणों से एक अनूठी संस्था है।

लोकअदालत प्रणाली ने विवादों का निपटारा करनेवाली संस्थाओं की एक ऐसी श्रंखला विकसित की है जो न तो 'परम्परागत' ही है और न 'आधुनिक' ही। लोकअदालत प्रणाली प्राचीन परम्परा से नहीं निकली है।

वास्तव में सर्वोदय विचारधारा के संदेशवाहकों के संस्कारों में से इसका जन्म हुआ है। दूसरी ओर यह प्रणाली अपने संगठन, कार्य-पद्धति और संस्कृति की दृष्टि से भील पंचायतों के मूल्यवान लक्षणों पर फलीफूली है।

लोकअदालत प्रणाली दूसरी दृष्टि से भी अनूठी है। यह केवल विवादों का निपटारा करने वाली संस्था ही नहीं है, वल्कि सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन का भी एक साधन है। यह निर्विवाद है (यद्यपि वहुधा इसकी सराहना नहीं की जाती) कि विवादों का निपटारा करनेवाली सभी संस्थायें, चाहे वे सरकारी अन्य प्रणाली से संबंधित हों या सामुदायिक न्याय व्यवस्था से, किसी न किसी रूप में सामाजिक परिवर्तन के हेतु लोक शिक्षण कार्य सम्पन्न करती हैं। सरकारी न्याय प्रणाली, जो यद्यपि विरासत में मिली 'कामन लॉ' की संस्कृति से ओतप्रोत है, अपनी न्यायिक संस्थाओं के माध्यम से उच्च शिक्षादायक भूमिका का निर्वाह करती है। (चाहे वह विवाद की सुनवाई की प्रक्रिया के दौरान हो अथवा अपील के स्तर पर।) हां, यह भूमिका न तो सैद्धांतिक दृष्टि से मान्य होती है और न मान्य की जा सकती है, जैसी कि अन्य विधि-प्रणालियों में, उदाहरणार्थ सोवियत विधि-प्रणाली में इस शिक्षात्मक भूमिका पर स्पष्ट तौर पर ही अधिक वल रहता है। हरिवल्लभ पारीख लोकअदालत प्रणाली की हर प्रक्रिया का विवाद प्राप्त होने एवं उसकी सुनवाई की प्रक्रिया प्रारंभ होने के समय से लेकर अंतिम निर्णय की स्थिति तक और यदि आवश्यक दिखाई दे तो निर्णय की क्रियान्वति तक का लोक-शिक्षण के रूप में उपयोग करते हैं। हम कह सकते हैं कि न्याय की इन प्रक्रियाओं एवं वास्तविक निर्णयों के दौरान अनेक विषयों पर जैसे परिवार नियोजन, शराब के अत्यधिक सेवन से होने वाले दुष्परिणाम, लेन-देन के मामलों में ईमानदारी, महिलाओं के लिये समानता की स्थिति, कृषि में उन्नत तरीकों का प्रयोग, स्वास्थ्य और स्वच्छता, स्वावलंबन और मानव गरिमा का महत्त्व आदि पर वे अपनी उपदेशात्मक सीधी कार्यवाही जागरूक ढंग से जारी रखते हैं और अनेक अवसरों पर लोकअदालत की वैठकें प्रौढ़-शिक्षण कार्यक्रम का माध्यम ही वन जाती हैं। इनमें हरिवल्लभ परीख वैठकों में उपस्थित लोगों को अपनी दिल्ली और अहमदावाद की यात्राओं के अनुभव सुनाते हैं और सुदूर विदेशों में रहने वाले लोगों के रहन-सहन और कार्यकलापों एवं समस्याओं के वारे में उनका ज्ञानवर्द्धन करते हैं। मेरी दृष्टि से यह लोकअदालत प्रणाली का 'विकास संवंधी कार्य' है। (वक्सी, 1975) वर्तमान अध्ययन के नवें परिच्छेद में इस पर विशेष प्रकाश डाला गया है। इसमें लोकअदालत प्रणाली के उपदेशात्मक तत्व से उत्पन्न

तथा सम्बन्धित विशिष्ट सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों को स्पष्ट किया गया है।

जहां तक सरकारी विधि प्रणाली एवं लोकअदालत प्रणाली के पारस्परिक सम्बन्ध का प्रश्न है, लोकअदालत प्रणाली की अपनी कुछ अनूठी विशेषताएं हैं। समय पाकर लोकअदालत ने न्यूनाधिक रूप में सरकारी विधि प्रणाली की भूमिका को अधिकांश मामलों में पूर्णतः आत्मसात् कर लिया है। न केवल इस क्षेत्र के बहुत से निवासी सरकारी विधि प्रणाली का आश्रय नहीं लेते हैं बल्कि जब सरकारी विधि प्रणाली में प्रवृत्त अधिकारियों को यह जानकारी प्राप्त हो जाती है कि उनके सम्मुख प्रस्तुत विवाद की लोकअदालत में सुनवाई चली है या चल रही है तो वे अक्सर अपने सम्मुख प्रस्तुत सुनवाई को स्थगित कर देते हैं ताकि वादी-प्रतिवादी को लोकअदालत के माध्यम से अपने विवाद का निपटारा करने का अवसर उपलब्ध हो सके। दूसरे शब्दों में, चाहे यह विरोधाभास लगे, इस प्रकार सरकारी विधिप्रणाली मे प्रवृत्त अधिकारियों की यह कार्यवाही लोकअदालत की वैधता एवं युक्तता को समर्थन देती है और इस हद तक लोकअदालत प्रणाली सरकारी विधि-प्रणाली के ऊपर छा जाने वाली प्रक्रिया है।

लोकअदालत प्रणाली की यह 'छा जाने वाली प्रवृत्ति' प्रतिवादियों को सूचना देने की प्रक्रिया में ही स्पष्टतः दृष्टिगोचर हो जाती है। सरकारी विधिप्रणाली में प्रयुक्त तौर-तरीकों के समान ही लोकअदालत द्वारा भी प्रतिवादी को एक वक्तव्य द्वारा यह निर्देश दिया जाता है कि वह लोकअदालत की कार्यवाहियों में उपस्थित हो अन्यथा मकदमेबाजी प्रारम्भ हो सकती है, जिसके सम्बन्ध में उसे आगाही की जाती है कि "वह हम गरीब किसानों के हित में नहीं है।" दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि सरकारी न्याय-प्रणाली की दुरुहता और मंहगेपन को ही लोकअदालत की कार्यवाहियों में भाग लेने की आवश्यकता का आधार बना दिया गया है। इस प्रकार सामुदायिक आधार पर विवादों का निपटारा करने वाली संस्था द्वारा सरकारी विधि-प्रणाली को अपने कार्य के लिये वैधता के रूप में उपयोग करने का ऐसा अनूठा तरीका अब तक अन्यत्र हमारे देखने में नहीं आया है।

यह सही है कि लोकअदालत प्रणाली और सरकारी विधिप्रणाली के एक दूसरे पर छा जाने वाले अथवा विरोधी झुकाव परस्पर सम्बन्धों का केवल एक पहलू है। दोनों ही प्रणालियों में पारस्परिक पूरकता और पृथकता सम्बन्धी तत्व मौजूद हैं। पारस्परिक पूरकता सम्बन्धी स्थिति का तत्व विचारधारा

श्रौर कार्य दोनों ही स्तरों पर मौजूद है। विचारधारा के स्तर पर लोक-श्रदालत प्रणाली शराब-मुक्ति, भूमिमुक्ति, डायनों श्रादि के अन्धविश्वासों के निराकरण, स्त्री-पुरुष की समानता श्रादि में सरकारी प्रयासों की अनुपूरक है। कार्य सम्बन्धी पारस्परिक पूरकता के स्तर पर लोकश्रदालत प्रणाली द्वारा विवादों का निपटारा करने की दिशा में अपनाई गयी भूमिका उस सीमा तक उदाहरण के रूप में प्रस्तुत की जा सकती है जिस सीमा तक इसके निर्णयों से सामाजिक स्थायित्व को पोपण मिलता है श्रौर भारतीय संविधान के अनुसार वांछित समाज-व्यवस्था के हेतु वे सामाजिक परिवर्तन में सहायक होते हैं। (अध्ययन के परिच्छेद 8, 9, श्रौर 10 का अवलोकन करें साथ ही देखें बक्सी, 1975)। जहां तक रोज़मर्रा के पारस्परिक पूरकता सम्बन्धी कार्यों का सवाल है, लोकश्रदालत प्रणाली द्वारा उपलब्ध लोकपाल सम्बन्धी तत्व, कानूनी सहायता श्रौर सेवा, सार्वजनिक रूप से रखे गये रेकार्ड श्रौर वैवाहिक श्रादि मामलों में सलाह देने के कार्य उल्लेखनीय रूप से राज्य के विकास तथा श्राधुनिकीकरण सम्बन्धी प्रयासों में सहायक होते हैं।

जहां तक दोनों प्रणालियों में पृथकता के अंशों की मौजूदगी का सवाल है, स्थिति कुछ पेचीदा है। सामान्यत: गंभीर फौजदारी मामले जैसे मानव हत्या, लोकश्रदालत सरकारी विधिप्रणाली के लिये छोड़ देती है। लोक-श्रदालत के प्रारम्भिक जीवन काल में उसके द्वारा ऐसे कुछ मामलों पर अपने निर्णय दिये गये जिनके अनुसार एक मामले में पश्चाताप करने वाले अपराधी हत्यारे को यह दण्ड दिया गया था कि वह समाज की निगरानी में निश्चित अवधि तक मृतक के उत्पीड़ित परिवार की भूमि जोतकर उस खेत में होने वाली पैदावार मृतक की विधवा एवं बच्चों को दे श्रौर उसके रक्षण का दायित्व वहन करे। सरकारी विधि प्रणाली के अन्तर्गत जो दण्ड उन परिस्थितियों में निर्धारित होता, उसका अपराधी एवं उत्पीड़ित दोनों ही परिवारों पर प्रतिकूल असर पड़ता जबकि लोकश्रदालत की दण्ड-प्रक्रिया में उत्पीड़ित परिवारों के पुनर्वास पर अधिक जोर दिया गया। निश्चय ही पीड़ित को राहत दिलाने की यह व्यवस्था अधिक उन्नत मानी जानी चाहिये, लेकिन लोकश्रदालत द्वारा निर्णित इस प्रकार के मामले अब अतीत की बातें मात्र रह गयी हैं। हमारे सर्वेक्षण के दौरान श्राश्रम के पास नदी में बहती हुई एक लाश का मामला हमारे सामने श्राया, जिसमें उस लाश को जांच के लिये तत्काल पुलिस के सुपुर्द कर दिया गया था।

मगर कुछ मामलों मे लोकश्रदालत प्रणाली श्रौर सरकारी विधिप्रणाली दोनों ने एक रूप होकर एक प्रकार से सहमत कदम उठाये हैं। जैसे जीजा

भाई, रेवती और वेहला भाई के मामले। (विशेष विवरण देखें—परीख 1973) यहां दोनों प्रणालियों में पारस्परिक प्रतियोगिता की स्थिति रही। इस सन्दर्भ में सरकारी विधि प्रणाली की कार्यवाही के प्रति आदरभाव का दर्शन होता है। उदाहरण के लिये जब वेहलाभाई सम्बन्धी विवाद के मामले में श्री हरिवल्लभ परीख को गिरफ्तार किया गया और बाद में जमानत पर छोड़ा गया तो उन्होंने तमाम दबावों के बावजूद लोकअदालत में उस विवाद की सुनवाई उस समय तक नहीं होने दी जब तक सरकारी विधिप्रणाली के अन्तर्गत उस विवाद की सुनवाई की कार्यवाही पूरी नहीं हो गयी। रेवती के जटिल मामले में जिस कुशलता के साथ समझौता, प्रचार, सीधी कार्यवाई एवं समाचार पत्रों के सम्मिलित माध्यमों का उपयोग किया गया, वह लोकअदालत प्रणाली की 'छा जाने वाली' भावना का सूचक है। यही प्रवृत्ति, जैसा कि पहले कहा गया है, प्रतिवादी को लोकअदालत के समक्ष बुलाने के लिये प्रयुक्त तौर-तरीके में भी परिलक्षित होती है, जिसमें लोक-अदालत की कार्यवाही में प्रतिवादी को भागीदार बनाने हेतु सरकारी विधि प्रणाली के तंत्र का एक प्रकार की अनुज्ञा के रूप में उपयोग किया जाता है।

लोकअदालत प्रणाली को किन कारणों से यह सफलता प्राप्त हुई, इसका विश्लेषण करें तो एक कारण तो हमें यह दृष्टिगोचर हुआ है कि इस क्षेत्र में सरकारी विधि प्रणाली की उपस्थिति अत्यन्त अल्प है। सरकारी विधि प्रणाली के अन्तर्गत कार्यरत प्रशासनिक व्यवस्थाएं भी इस क्षेत्र से बहुत दूरी पर स्थित हैं। यातायात एवं संचार के पर्याप्त साधनों का अभाव इस क्षेत्र के लोगों को इस प्रणाली से पृथक रखे हुए है। (देखें अध्याय 4)। तीसरा कारण यह है कि लोकअदालत द्वारा किये गये विवादों के निर्णयों से प्रभावित होकर क्षेत्र के अधिकांश निवासी यह महसूस करने लगे हैं कि लोकअदालत प्रणाली द्वारा निष्पादित न्याय गुणात्मक दृष्टि से सरकारी विधि प्रणाली के अन्तर्गत उपलब्ध न्याय से कहीं अधिक 'संतोषयुक्त' है। आसान पहुंच, तत्परता और कम खर्चों के अलावा इन कारणों का भी अपना महत्त्व है— लोकअदालत प्रणाली की सफलता का एक आधारभूत कारण यह प्रतीत होता है कि विवाद का निपटारा करने के लिये प्रयुक्त इसकी कार्य-पद्धति अत्यन्त जनतांत्रिक है। (देखें अध्याय 10 और 11) लोकअदालत द्वारा विवादों के निपटारों के लिये महत्त्वपूर्ण आधारभूत मूल्य के रूप में समुदाय को भागीदार बनाने की जो नीति अपनाई जाती है और उस प्रक्रिया एवं कार्य विधि का जिस ढंग से गठन किया गया है, उनसे सामुदायिक भागीदारी के मूल्य की अधिकतम उपलब्धि हुई है। जनसमुदाय की इस ढंग की श्रेष्ठ

भागीदारी ने इस संस्था एवं इसकी कार्यप्रणाली को सामाजिक दृष्टि से अधिक स्पष्ट और उत्तरदायी बना दिया है। इसी के प्रतीक स्वरूप यह भागीदारी लोकअदालत तथा इसके नेता की वैधता का निरंतर नवीनीकरण करती रहती है और इसके निर्णयों को सामुदायिक इच्छा या समाज से जनमत की अनुज्ञा का स्वरूप प्रदान करती रहती है।

यह जानी मानी शिकायत है कि जनतांत्रिक दिखाई देने वाले तरीके या कार्यविधियां भी प्रायः निर्णायक शक्ति के केन्द्रीकरण का मुखौटा लगाये रहती हैं। प्रायः जनसाधारण की सहमति से किये जाने वाले निर्णय थोड़े से लोगों द्वारा कमरों में लिये गये निर्णयों के औपचारिक समर्थन मात्र होते हैं। किन्तु प्रस्तुत अध्ययन यह विश्वास करने का व्यावहारिक आधार प्रदान करता है कि विवादों का निपटारा करने के लिये प्रयुक्त लोकअदालत की कार्य प्रणाली में जनसाधारण की भागीदारी केवल दिखावटी अथवा प्रतीकात्मक चेष्टा नहीं है। (हमने अपने प्रारंभिक अध्ययन में भी इस तथ्य को व्यावहारिक रूप में स्वीकार किया था) इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि लोकअदालत प्रणाली की सफलता का एक महत्त्वपूर्ण कारण इसके द्वारा प्रयुक्त कार्यविधि एवं प्रक्रियाओं का उच्च जनतांत्रिक स्वरूप है।

तथापि लोकअदालत प्रणाली के अन्तर्गत प्राप्त न्याय की गुणात्मकता सम्बन्धी प्रश्न तो रह ही जाते हैं। इस अध्ययन में ये प्रश्न स्पष्ट भाषा में मुखरित होकर सीधे सामने नहीं आये हैं बल्कि लोकअदालत के भविष्य के प्रति संदेहात्मकता के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। लेखकगण महसूस करते हैं कि लोकअदालत प्रणाली का भविष्य संदेहात्मक अथवा समस्यामूलक हो सकता है क्योंकि यह प्रणाली एक व्यक्ति पर आधारित हो गयी है। श्री हरिवल्लभ भाई के समर्पित जीवन, जादू भरे आकर्षक व्यक्तित्व और अविश्रांत कार्य के कारण लोकअदालत को इसके मौजूदा स्वरूप की प्राप्ति हुई है। नेता एवं न्यायकर्ता दोनों रूपों में उनकी शक्ति एवं प्रतिष्ठा अद्वितीय है, लेकिन एक व्यक्ति के नेतृत्व पर अत्यधिक आश्रित रखने की इस परिस्थिति में अधिनायकवाद की प्रबल प्रवृत्ति अनिवार्यतः उत्पन्न हो जाती है। यह प्रवृत्ति न्याय उपलब्धि में किस सीमा तक सहायक सिद्ध हुई है, यह एक विचारणीय विषय है। निस्संदेह लोकअदालत कार्य प्रणाली बहुत जनतांत्रिक है, और इसके निर्णय तुरन्त कार्य रूप में परिणित कराये जाते हैं। (हम इस पूर्ति को मनोवैज्ञानिकता कहेंगे) लेकिन जब सम्पूर्ण कार्यविधि एक व्यक्ति के इर्द-गिर्द घूमती रहती है तो उसमें न केवल निरंतरता के लक्षण खतरे में पड़ जाते हैं, बल्कि समकालीन एवं भावी नेतृत्व के विकास

की संभावनाएं भी सीमित हो जाती हैं। साथ ही ऐसी अपेक्षा भी वास्तव में नहीं रखी जा सकती कि जनसमुदाय प्रत्येक निर्णय का उसके वास्तविक न्यायपरकता के गुणों के कारण आदर करता है। हमें बेझिझक यह स्वीकार करना चाहिए कि कुछ निर्णय न्यायकर्त्ता की विवेक बुद्धि पर आधारित, मनमाने, (इस अर्थ में कि दो समान परिस्थितियों में विभिन्न निर्णय हो जाते हैं) और कभी-कभी तुलनात्मक रूप से पक्षपात युक्त भी हो सकते हैं (पक्षपात युक्त इस अर्थ में कि वे सिद्धांत या नियम पर आधारित होने के बजाय अवसर या परिस्थिति पर आधारित हो जाते हैं या वे अन्य सामाजिक तथा विधि के क्षेत्र के बाहर के विवादों में न्यायकर्त्ताओं तक वादी-प्रतिवादी की अपेक्षाकृत न्यूनाधिक पहुंच के कारण प्रभावित हो जाते हैं) इस प्रकार की परिस्थितियां रंगपुर स्थित लोकअदालत एवं ग्रामदानी गांवों की ग्रामसभाओं के संघात्मक सम्बन्धों में विशेप रूप से अभिव्यक्त हो सकती हैं, क्योंकि ग्रामदानी गांवों की ग्रामसभाओं के कार्यकर्त्ता विचारधारा और व्यवहार दोनों दृष्टियों से श्री हरिवल्लभ भाई के प्रति समर्पित हैं।

इसके साथ ही यह भी समझना होगा कि चाहे संवैधानिक दृष्टि इस स्वच्छन्दता, पक्षपात, अवसरवादिता, अन्याय और अधिनायकता के विपरीत हो, पर सरकारी विधिप्रणाली और प्रशासनिक श्रेणियों के प्रतिनिधि भी न्यूनाधिक रूप में अपने निर्णयों में इन्हीं बुराइयों की अभिव्यक्ति करते रहते हैं लेकिन लोकअदालत प्रणाली इस अर्थ में उक्त प्रणाली से भिन्न है कि कार्य प्रणाली की रूढ़ता एवं अफसरशाही की अवश्यंभावी प्रवृत्ति के बावजूद अंतिम अधिकार एक व्यक्ति में केन्द्रित हैं। इसके विपरीत औपचारिक राज्य-पद्धति, सारे दुर्गुणों के बावजूद, ऊपर से नीचे तक क्रमिक उत्तरदायित्व भावना से ओतप्रोत है, चाहे फिर इस प्रकार की जवाबदेही में सर्व सामान्य की पहुंच की कितनी ही सीमायें क्यों न हों। श्री हरिवल्लभ परीख के अलावा क्रमिक नियंत्रण की कोई औपचारिक व्यवस्था नहीं है। नियंत्रण की अनौपचारिक यंत्र रचना शक्तिधारकों और उस शक्ति को मान्यता देकर शक्तिधारकों के आदेशों, निर्देशों को मानने वाले शक्तिदाताओं की पारस्परिक सम्बन्ध स्थिति—अवश्य मौजूद है और हर प्रकार के शक्ति ढांचे में यह स्थिति अवश्यम्भावी है। अंतिम तौर पर विश्लेषण प्रस्तुत करें, तो यह सब शक्ति सम्बन्धों में समता और विशिष्टता का ही प्रतीक है।

इस का यह तात्पर्य नहीं है कि अधिनायकवाद की ओर उन्मुख यह प्रवृत्ति सभी संदर्भों में आवश्यक तौर पर हितकर हो लेकिन लम्बी अवधि में यह प्रवृत्ति ऐसी सिद्ध हो सकती है क्योंकि इससे लोकअदालत प्रणाली को एक

विशिष्ट प्रकार की सीमा-मर्यादा प्राप्त हो सकती है जो समय की परिधि में वास्तव में सभी सामाजिक प्रणालियों का एक सामान्य लक्षण रहा है।

वस्तुत: लोकअदालत प्रणाली सामुदायिक विवाद-निर्णय प्रणाली का एक ऐसा आदर्श प्रस्तुत करती है जो कुछ बातों में राज्य की विधि प्रणाली से श्रेष्ठ है। लेकिन इस प्रणाली में निहित गुणों की सराहना करने का यह अवश्यं-भावी अर्थ भी नहीं कि सरकारी विधिप्रणाली संपूर्णत: दोषयुक्त ही है। इस अध्ययन में, मुख्यतया इसके अंतिम अध्यायों में, पाठकों को ऐसा महसूस हो सकता है कि इस का लगभग संगठित झुकाव सरकारी विधिप्रणाली के विरुद्ध है। यह झुकाव वास्तव में दृढ़ता से ग्रहित मान्यताओं की अभिव्यक्ति हो सकता है जो लेखकों की ग्राम संदर्भों में बौद्धिक और सामाजिक मूल-निष्ठा से उत्पन्न है। झुकाव तथा मान्यता के बीच सीमा रेखा कहीं भी हो, यह स्पष्ट है कि प्रस्तुत अध्ययन के लेखकों की सरकारी विधिप्रणाली में बहुत कम आस्था है। उनका कथन है की सरकारी विधिप्रणाली के अन्तर्गत कार्यरत न्यायालयों का लक्ष्य सामाजिक परिवर्तन लाना है ही नहीं। न्याय प्रदान करने में जनसाधारण की उन तक पहुंच नहीं है और न उनमें गति-शीलता है, न उनमें खर्च की सीमा है और न उनमें जनतांत्रिकता का तत्व है। उक्त दोनों कथनों में सत्य का अंश तो है, पर पूरी सच्चाई नहीं है। कुछ न्यायाधीश इस अर्थ में सक्रियावादी होते हैं कि उनका झुकाव संविधान में अन्तर्निहित या कानून द्वारा अपेक्षित सामाजिक परिवर्तनों को समर्थन देने के उद्देश्य से विधि के सारे उपकरणों के उपयोग की ओर होता है। इतिहास ने बार-बार इस तथ्य को प्रकट किया है कि परिवर्तनों की ओर उन्मुख न्यायाधीश प्रभावपूर्ण ढंग से कानून का उपयोग कर सकते हैं। लेकिन यह भी सही है कि ऐसे न्यायाधीशों की संख्या या उनके काम के प्रभाव का दिग्दर्शन कराने वाले कोई अध्ययन उपलब्ध नहीं हैं (यद्यपि ऐसे अध्ययनों की अत्यंत आवश्यकता है) लेकिन यहां मोजूदा संदर्भ में इस पहलू पर इतना जोर दे देना ही पर्याप्त होगा।

सरकारी विधि प्रणाली की न्याय सम्बन्धी गुणात्मकता के प्रति दोषा-रोपण का निराकरण करना थोड़ा कठिन है। एक तो यह कि सरकारी विधि-प्रणाली के अन्तर्गत किये जाने वाले न्याय के जो संकेतक माने गये हैं अर्थात त्वरा, व्यय और पहुंच— इनके सम्बन्ध में कोई विश्वसनीय आंकड़े हैं ही नहीं। हां, विवादों के निपटारों में होने वाले विलम्ब के सम्बन्ध में स्थूल आंकड़े अवश्य प्राप्त हैं, पर उनसे कुछ अर्थ नहीं निकलता।

विधि का जिस ढंग का भारीभरकम ढांचा बना हुआ है, उसके कारण

स्पष्टतः ही न्याय-प्रक्रिया में 'विलम्ब' (अति-महत्त्वपूर्ण विवादों में होने वाले कुछ अतीव विलम्ब के मामलों के अलावा) कानून के अन्तर्गत गठित सामान्य स्थिति की एक व्यवस्था ही बन जाता है। निर्णय की शीघ्रता अपने आपमें कोई मूल्य नहीं है और न यह होना ही चाहिए। लोकग्रदालत में भी यह कोई बड़ा मूल्य नहीं है। इसके अतिरिक्त न्यायालयों में 'विलम्ब' सम्बन्धी निर्णय अधिकांश मामलों में मूल्य सम्बन्धी निर्णय हैं। दूसरे शब्दो में यह भी स्पष्ट नहीं है कि विलम्ब के सम्बन्ध में निर्णय देते समय हमारे दिमाग में कोई ऐसा मापदण्ड मौजूद है जो, किस मामले में कितना समय लगना उचित है, यह बतला सके। यह प्रश्न न भी उठाया जाये तो जब हम सरकारी विधिप्रणाली के अन्तर्गत उपलब्ध निर्णयों में होने वाले विलम्ब का जिक्र करें तो उसकी पुष्टि के लिए हमारे पास अनुभवी एवं जानकार विधि-वेत्ताओं द्वारा एकत्रित प्रमाणित तथ्यों का संग्रह होना चाहिए। सरकारी विधि-प्रक्रिया के सामान्य स्वरूप के कारण विवादों के प्रस्तुतीकरण में समय लगेगा ही। यह भी कहना कठिन है कि किस समय बिन्दु के आगे और किस प्रकार के मामलों में कब विलम्ब या समय लगने की मर्यादा का उल्लंघन प्रारम्भ हो जाता है। जानकार और सदाशयी लोग, जब वे कानून के विलम्बों की चर्चा करते हैं तो वे इस प्रश्न को उठाते भी नहीं, उत्तर देने की बात तो अलग ही है।

उक्त संदर्भ में विधि-प्रक्रिया के बारे में अन्तर्ज्ञान से दिये गये निर्णय का अपना स्थान है और वे सही हो सकते हैं लेकिन वही स्थिति वैज्ञानिक आधार पर दिये जाने वाले निर्णयों के बारे में भी है। पूर्ववर्ती प्रकार के निर्णयों का बाहुल्य है, तो परवर्ती प्रकार के निर्णय कम हैं।

सरकारी विधि प्रणाली के बारे में यह दोष दर्शन कि वह खर्चीली अथवा जनसाधारण की पहुंच से परे है, बहुत सामान्य बात हो गयी है और इसमें सामान्यतया सच्चाई भी है। सबको समान ढंग से न्याय उपलब्ध कराने की समस्याओं का समाधान कानूनी सहायता तथा सेवा उपलब्धि के कार्यक्रमों और कानून के सुधार से कुछ हद तक हो सकता है। लेकिन अन्ततोगत्वा (जैसा अन्यत्र के अनुभव से सिद्ध है) ऐसे कार्यक्रम केवल अल्पकालीन राहत दे सकते हैं, वे समस्या का स्थायी समाधान नहीं है। यह बात कानून-सुधार-कार्यक्रमों की तुलना में कानूनी सहायता एवं सेवा-कार्यक्रमों के बारे में अधिक सही हो सकती है। लेकिन कानूनी सुधारों को भी विधि-प्रणाली के मूलभूत ढांचे का समादर करना ही पड़ता है। लोकग्रदालत जैसी संस्थाओं का अध्ययन वर्तमान विधि प्रणाली के विकल्पों के बारे में (इस सम्बन्ध में इस देश में बहुत कम

रचनात्मक चिन्तन हुआ है) आधारभूत प्रश्न खड़ा करता है। निश्चय ही किसी भी देश की विधि प्रणाली उस देश की राजनैतिक प्रणाली के अंग के रूप में कार्य करती है लेकिन प्रायः उस विधि प्रणाली की अपनी निजी स्वायत्तता होती है। जैसा कि रावर्ट अंगर ने हाल ही में दुहराया है कि 'इस स्वायत्तता के चार पहलू हैं—(1) पृथक सत्ता सम्बन्धी, (2) संस्थागत, (3) कार्य-विधि सम्बन्धी, और (4) व्यवसायात्मक' (अंगर 1976, 52-54)। इसलिये इस बात की पर्याप्त गुंजाइश है कि स्वायत्तता की इन सीमाओं के भीतर विधि एवं कार्य-विधि के वैकल्पिक नमूने प्रस्तुत करने की कोशिश एक हद तक की जा सकती है।

अंत में यह तो मानना ही होगा कि मौजूदा राजकीय न्यायालय प्रणाली जनसाधारण की भागीदारी को एक मूल्य के रूप में स्वीकार नहीं करती। जूरी प्रणाली इसका एक उदाहरण था। कुछ और भी ऐसे, पर कम महत्त्वपूर्ण उदाहरण, रहे हैं, (देखें—जैन, 1976-134), लेकिन अब वह वस्तुतः समाप्त-प्रायः हैं। न्याय और उसमें जनसाधारण की व्यापक भागीदारी का पारस्परिक सम्बन्ध—हमेशा ही कार्य-कारण रूप नहीं ठहराया जा सकता। कुछ स्थितियों में ऐसा संभव है (जैसे कि संभवतः लोकअदालत में)। लेकिन अन्य मामलों में इससे भिन्न स्थिति भी हो सकती है—उदाहरण के लिये क्रूर न्याय (Lynch Justice)। उन्मादग्रस्त भीड़ द्वारा लिये गये निर्णयों में जन-साधारण की व्यापक भागीदारी तो होती है लेकिन इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उसका निर्णय आवश्यक रूप से न्यायपूर्ण ही हो। यहां तक कि जूरी प्रणाली में जूरीगण भी अपनी कानून विरोधी हरकतों के लिये कुख्यात हैं (उदाहरणार्थ कडीश एम. आर. और कडीश एस. एच. एच. 1971-199)। यहां इस विषय में चर्चा बढ़ाने की आवश्यकता नहीं है लेकिन फिर भी यह कहना पर्याप्त होगा कि विवादों का निपटारा करने वाली संस्थाओं में निर्णय देने की प्रक्रिया में जन भागीदारी का सम्बन्ध एक खुला प्रश्न ही रहना चाहिये।

इस प्रकार के अध्ययनों की शायद यह दुर्लभ उपलब्धि है कि वे बहुत से मूलभूत प्रकार के जटिल प्रश्न खड़े कर देते हैं। वर्तमान अध्ययन भी अपनी दोनों प्रकार की सीमाओं— सैद्धांतिक एवं प्रयोगिक— में बिलकुल इस प्रकार के चिंतन का आवाहन करता है। यह इसका बहुमूल्य योगदान है। लोकअदालत स्वतः ही समाज निर्माताओं को वर्तमान भारत में एक उपयुक्त विधि प्रणाली और सामाजिक व्यवस्था के निर्माण के लिये नये सिरे से चिंतन करने की सशक्त प्रेरणा प्रदान करता है।

उपेन्द्र बक्सी (संकायाध्यक्ष)
विधि संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रारम्भिक

गुजरात के बड़ौदा जिले में आनन्द निकेतन आश्रम के माध्यम से आस-पास के ग्रामीण क्षेत्र में महात्मा गांधी की प्रेरणा के अनुरूप सघन रचनात्मक कार्यक्रम गत पच्चीस वर्ष से चल रहा है, जिसका संचालन प्रारम्भ से ही आश्रम के संस्थापक-अध्यक्ष श्री हरिवल्लभ परीख द्वारा किया जा रहा है। वे लोकअदालत के नाम से जन-न्यायालय का एक अभिनव सामाजिक प्रयोग कर रहे हैं, जिसके द्वारा अब तक लगभग बीस हजार मामलों का फैसला और समाधान हो चुका है। इस प्रयोग का कुछ परिचय श्री हरिवल्लभ परीख ने 'क्रान्ति का अरुणोदय' नामक पुस्तिका में दिया और इसका संक्षिप्त अध्ययन डा. लक्ष्मीमल सिंघवी और डा. उपेन्द्र बक्सी ने किया। कुमारप्पा ग्रामस्वराज्य संस्थान ने इस सामाजिक प्रयोग का थोड़ा विस्तार और गहराई से अध्ययन करने का निश्चय किया और तद्नुसार इसकी एक योजना भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली को प्रेषित की। संतोष की बात है कि परिषद् ने इस योजना को अपनी स्वीकृति प्रदान की और इसको आवश्यक आर्थिक सहायता देना स्वीकार किया।

इस अध्ययन का प्रारम्भ 1 अप्रैल 1975 से किया गया। योजना की सलाहकार समिति का इस कार्य में पूरा सहयोग मिला। समिति की बैठकें आनन्द निकेतन आश्रम, रंगपुर तथा जयपुर में बुलाई गईं। हरिवल्लभ परीख और उनके साथी कार्यकर्त्ताओं ने इस अध्ययन में बहुत रुचि ली और सारी जानकारी, जो लिखित और मौखिक उनके पास थी, सबसे हमें अवगत किया। लोकअदालत के अधिवेशनों में हम स्वयं शामिल हुए, आसपास के गांवों में घूमे, लोगों से प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त किया और बातचीत की। डा. विजयशंकर व्यास, डा. उपेन्द्र बक्सी का पूरा सहयोग और मार्गदर्शन इस अध्ययन को प्राप्त हुआ। डा. एस. पी. वर्मा ने भी अध्ययन में बहुत रुचि दिखाई और समय-समय पर आवश्यक सुझाव दिये।

योजना निर्देशक डा. अवधप्रसाद ने इस योजना का संचालन किया। उनके सहायक श्री गोपीनाथ गुप्त और श्री पी. के. सवानी ने उस सारे कार्य को पूरा करने में बहुत परिश्रम किया है। राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

में समाजशास्त्र विभाग के अध्यक्ष डा. नरेन्द्र सिंघी का प्रारम्भ से ही इस अध्ययन में पूरा सहयोग एवं मार्गदर्शन मिला। उन्होंने परिश्रमपूर्वक अध्ययन को अंतिम रूप देने में मदद की ।

संस्थान भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद् के सदस्य-सचिव श्री जे. पी नायक, निर्देशक डा. नरूला तथा अन्य उच्चाधिकारियों का विशेष आभारी है जिनके प्रोत्साहन के बिना इस योजना का प्रारम्भ और पूर्ति नहीं हो सकती थी। योजना 30 नवम्बर तक पूरी हो जानी थी पर कुछ कारणों से दो माह की अवधि और बढ़ानी पड़ी। जनवरी के अन्त में यह अध्ययन परिषद् को प्रेषित कर दिया गया था।

परिषद् ने इस अध्ययन को अपनी मान्यता प्रदान की और इस के प्रकाशन के लिए भी कुछ आर्थिक सहायता स्वीकृत की। इसे प्रकाशित करने का उत्तरदायित्व स्टर्लिंग पब्लिशर्ज दिल्ली ने स्वीकार किया। संस्थान इन दोनों का बहुत आभारी है।

इस प्रकार के अन्य प्रयोग भी इस देश के विभिन्न भागों में चले हैं और कुछ अब भी चल रहे हैं। इनका अध्ययन किया जाना भी हमारे विचार से उपयोगी होगा।

जवाहिरलाल जैन
मंत्री निदेशक

कुमारप्पा ग्रामस्वराज्य संस्थान,
जयपुर।
2-4-77

विषय-सूची

1

अध्ययन की पृष्ठभूमि

मानव-समाज के विकास के साथ उसके सामाजिक जीवन को संगठित एवं नियंत्रित करने वाली अनेक संस्थाओं एवं व्यवस्थाओं का भी क्रमिक विकास हुआ। इन संस्थाओं में मुख्य हैं—विवाह, परिवार, धर्म, राज्य आदि। ये संस्थायें सार्वभौमिक रही हैं चाहे देश, काल एवं क्रम के अनुसार उनके स्वरूप में न्यूनाधिक भिन्नतायें दृष्टिगोचर होती रही हों। सामुदायिक जीवन में आने वाले व्यक्ति के पारस्परिक सम्बन्धों एवं आचरणों को नियमबद्ध करने वाली व्यवस्थाओं में न्यायिक संस्था का मुख्य स्थान रहा है और उसकी सार्वभौमिकता भी सर्वविदित है। न्याय व्यवस्था के संचालन के लिए आदिकाल से ही मानव-समाज ने न्याय के कुछ नियमों का सहारा लिया है। विभिन्न देशों की भौगोलिक परिस्थितियों एवं उनके फलस्वरूप विकसित सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन की भिन्नताओं के कारण नियमों में अन्तर भले ही हो रहा हो लेकिन आधारभूत नियमों में सभी जगह सादृश्य देखा जा सकता है। इन आधारभूत नियमों में मुख्य ये माने जा सकते हैं, जैसे, (क) अपराधी को दंड मिले, (ख) ऐसे व्यक्ति को दंड न मिले जो निर्दोष हो, (ग) न्यायालय के सम्मुख सब समान हैं, आदि। कानून एवं न्याय सामाजिक जीवन के अभिन्न अंग हैं। समाज में कानून का निर्माण नैतिकता के पोषण के लिए होता है और इस प्रकार दोनों का निकट सम्बन्ध है। जिस समाज में जितनी अधिक नैतिकता होगी वहां कानून का पालन उतना ही अधिक होगा। यह देखने में आया है कि सामान्यतया परम्परागत नियम नैतिकता की भित्ति पर आधारित रहे है।

किसी देश की न्यायिक संस्था के विकास को सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए क्योंकि उसका विकास उसी परिप्रेक्ष्य में होता है। न्यायिक संस्था की संरचना, न्याय प्रक्रिया, न्यायिक मूल्य एवं दंड आदि

में सामाजिक एवं सांस्कृतिक भिन्नता के कारण अन्तर पाया जाता है। ऐतिहासिक दृष्टि से न्यायव्यवस्था पर विचार करें तो यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि प्रायः सभी देशों में न्याय का अन्तिम अधिकार राज्य में निहित रहा है। राजतंत्रीय शासनपद्धति में यह व्यवस्था स्वभावतः राजा के हाथों में केन्द्रित होती है। भारतीय इतिहास से इस बात की भी पुष्टि होती है कि यहां न्यायव्यवस्था मुख्यतः दो भागों में विभक्त थी : (1) न्याय का कार्य राज्य के हाथों में था और उसका निर्णय अंतिम होता था, यद्यपि वह अपनी सहायता के लिये इस कार्य में अन्य लोगों को लगाने का अधिकार रखता था। (2) स्थानीय स्तर पर पंचायती व्यवस्था थी। यहां प्राचीन काल से ही ग्रामस्तर पर पंचायती न्याय प्रणाली की ठोस परम्परा रही। इस व्यवस्था में गांव के पंचों द्वारा, जिनकी संख्या आमतौर पर पांच होती है, विवादों को सुलझाया जाता रहा। आदिवासी समाज में यह परम्परा आज भी देखी जा सकती है।[1]

भारत में ब्रिटिश शासनपद्धति के ज़रिये पाश्चात्य ढंग की न्यायप्रणाली का विकास हुआ। आज जो कानूनसम्मत न्यायव्यवस्था भारत में प्रचलित है, उसका आधार पाश्चात्य न्यायव्यवस्था है। कानून भारतीय समस्याओं को दृष्टिगत रखकर भले ही बनाये गये हों, परन्तु विवादों को सुलझाने के लिये जो पद्धति जारी की गई है, वह ब्रिटिश साम्राज्य की देन है। ब्रिटिश साम्राज्य ने विभिन्न स्तर के न्यायालयों की स्थापना की और अपनी आवश्यकतानुसार क्रमशः उन्हें मजबूत करता रहा। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद हमने भी उसी न्यायव्यवस्था को स्वीकार कर लिया। यहां यह स्वीकार किया जाना चाहिये कि हमारे देश का संविधान भी पाश्चात्य देशों के संविधानों को ध्यान में रखकर ही बनाया गया एवं इस व्यवस्था के अनुसार विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका के बीच समन्वयात्मक सम्बन्ध रखते हुए सबका कार्यक्षेत्र एवं अधिकार क्षेत्र अलग-अलग निर्धारित किया गया। संविधान की मूल भावना यह रही कि सबको निष्पक्ष न्याय मिले।

भारतीय संविधान में पंचायतीराज की व्यवस्था को लागू करने का भी प्रावधान है। भारत में लोकतांत्रिक समाज की जड़ें मजबूत करने के लिये पंचायतीराज को आवश्यक माना गया। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए सन् 1959 में देश में पंचायतीराज को प्रारम्भ किया गया और आज पूरा देश पंचायतीराज की परिधि में आ गया है। पंचायतीराज की व्यवस्था में न्याय-पंचायतों का मुख्य स्थान है। न्यायपंचायतों की स्थापना के पीछे यह भावना थी कि जन साधारण को स्थानीय स्तर पर सहज-सरल न्याय प्राप्त हो

और सामान्य मामलों के लिये दूर के न्यायालयों में जाने की परेशानी एवं खर्च से बचा जा सके। इसके साथ-साथ विकेन्द्रित समाज रचना की दृष्टि से न्याय कार्य को विकेन्द्रित करने की दिशा में इसे एक कदम माना गया।[2] न्यायपंचायतें किस सीमा तक इस उद्देश्य में सफलता प्राप्त कर सकी हैं, यह अलग प्रश्न है और यहां इस प्रश्न पर विचार करना सभव भी नहीं। फिर भी यह एक तथ्य है कि न्यायपंचायतों के माध्यम से विकेन्द्रित आधार पर न्याय कार्य की व्यवस्था को मजबूत करने का प्रयास किया गया है।

यह व्यवस्था एक सीमा तक गांधीजी द्वारा प्रतिपादित पंचायतीराज की कल्पना का एक हल्का-सा रूप है। गांधीजी ने न्याय कार्य को ग्रामस्वराज्य का एक अंग माना था लेकिन उनकी कल्पना का ग्रामस्वराज्य अभी मूर्त्त रूप नहीं ले पाया है।[3] आज की न्यायपंचायतें स्थानीय स्तर पर एक सीमा तक ही न्याय की सुविधा प्रदान करती हैं, जबकि गांधीजी ग्राम सम्बन्धी सभी विवाद ग्रामपंचायतों द्वारा सुलझाये जाने की आकांक्षा रखते थे।

वर्तमान न्यायव्यवस्था में न्याय सर्व सुलभ नहीं हो पाता है और दूर गांव में रहने वाला सामान्य नागरिक अपने को इस स्थिति में नहीं पाता कि गांव से दूर जा कर न्याय प्राप्त कर सके। सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से कमजोर एवं अशिक्षित व्यक्ति न्यायालय में अपने को असहाय महसूस करता है। वह इस आर्थिक स्थिति में भी नहीं होता कि न्यायालय तक जा सके और न्याय प्राप्त कर सके। पंचायतीराज की न्यायपंचायतें इस कमी को एक सीमा तक तो पूरी करती हैं लेकिन उनका कार्यक्षेत्र काफी सीमित है। सरकारी न्यायालय में जाने में गांव के सामान्य लोगों को अनेक प्रकार की कठिनाइयां होती हैं, जैसे :

(1) समय ज्यादा लगना,

(2) अधिक खर्च,

(3) कानूनी उलझनें, जिनके कारण वकील की मदद लेना आवश्यक होता है,

(4) जटिल पद्धति।

गांव के लोगों के लिये न्यायालय की दौड़ परेशानी में डालने वाली भी होती है। वहां के कानूनी दावपेंच, गवाही, पेशी, खर्च का बोझ, आदि के कारण जो परिस्थिति बनती है, उसमें उसके लिए न्याय पाना अत्यन्त कठिन हो जाता है। न्यायव्यवस्था की इन परेशानियों से देहात में रहने वाले जन-साधारण को मुक्ति प्रदान करने के लिये ही गांधीजी ने पंचायतीराज की

कल्पना प्रस्तुत की थी और कहा था—"जब पंचायतीराज बनेगा, तब लोकमत सब कुछ करवा लेगा।" गांव का शासन चलाने के लिये हर साल गांव के पांच आदमियों की एक पंचायत चुनी जाएगी। इसके लिये नियमानुसार एक खास निर्धारित योग्यता वाले गांव के बालिग स्त्री-पुरुषों को अधिकार होगा कि वे अपने पंच चुन लें। इन पंचायतों को सब प्रकार की आवश्यक सत्ता और अधिकार रहेंगे।[4]

पंचायत की इस व्यवस्था के पीछे भारतीय ग्राम्य समाज की प्रकृति के अनुरूप न्यायप्रणाली विकसित करने का लक्ष्य रहा है। गांव के लोगों को ग्राम स्तर पर ही शीघ्र, सस्ता एवं सरल न्याय मिले, यह गांधीजी का मूल उद्देश्य था।

गांधीजी ने परम्परागत न्यायालय के स्थान पर जिस प्रकार के पंचायती न्याय की बात कही, उसकी मुख्य विशेषताओं को हम इस रूप में गिना सकते हैं —

(1) इसका कार्यक्षेत्र ग्राम-स्तर पर होता है।
(2) इसमें पंच गांव के लोग ही होते हैं जिन्हें गांव की एवं विवाद की पूरी जानकारी होती है।
(3) न्याय-कार्य खेल रूप में होता है।
(4) इसमें स्वशासन की भावना होती है।
(5) इसमें दबाव का स्थान नहीं होता है।

लोकअदालत-स्थापना की परिस्थिति

गांधीजी ने ग्रामसेवक को निःस्वार्थ होकर ग्रामसेवा-कार्य करने की बात कही थी। इस प्रकार की निःस्वार्थ सेवा से ही ग्राम-स्वराज्य की स्थापना होगी और सच्चा स्वराज्य प्राप्त हो सकेगा, यह उनकी दृढ़ धारणा थी। वे कहते थे कि ग्रामसेवक गांव के ऊपर बोझ बनने के बजाय मेहनत की कमाई खायेगा और स्वयं को आदर्श के रूप में प्रस्तुत करेगा। उसका प्रभाव ग्राम-समाज पर पड़ेगा। गांव के लोग उसकी क्रियाओं से प्रेरणा लेंगे। इस प्रकार सच्चा ग्रामसेवक गांव को आदर्श बनने के लिये प्रेरणा देगा।[5]

भारत में अनेक लोगों ने गांधीजी द्वारा बताये गये रास्ते पर ग्राम-पुनर्निर्माण का कार्य प्रारम्भ किया था। इसी प्रकार का एक कार्यक्रम 1949 में रंगपुर (वड़ोदा) में चालू हुआ। उस समय इस क्षेत्र का सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन अत्यन्त पिछड़ा हुआ था।[6] आदिवासी क्षेत्र होने के

कारण आर्थिक पिछड़ेपन के साथ-साथ सामाजिक असमानता की जड़ें भी काफी गहरी थीं। जीवन के सभी क्षेत्रों में शोषण विद्यमान था। इस परिस्थिति से मुक्ति का प्रयास भी इस कार्यक्रम के सूत्रधार एवं प्रणेता श्री हरिवल्लभ परीख ने प्रारम्भ किया और शोषण-मुक्ति को अपने कार्य का प्रमुख अंग बनाया। महाजन, जंगल के कर्मचारी, पुलिस एवं बड़े किसानों द्वारा शोषण की परिस्थितियों ने इस क्षेत्र के आदिवासियों को सरकारी न्यायालय में जाने को मजबूर कर रखा था एवं आदिवासी समाज के पारिवारिक एवं विवाह संबंधी विवाद भी अदालत में जाने लग गये थे। न्यायालय की दौड़ ने इनके जीवन को आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से अत्यन्त विषम एवं कष्टमय बना दिया था और उस स्थिति से मुक्ति के लिये आवश्यक था कि सभी प्रकार के विवादों के स्थानीय स्तर पर निपटारे का कोई न कोई सस्ता और सरल रास्ता निकाला जाय और क्षेत्र के लोगों को गैर आदिवासी शोषक वर्ग से मुक्ति दिलाई जाए। इस क्षेत्र में यह आम धारणा थी कि आवागमन की सुविधा एवं बाहरी तड़क-भड़क से दूर इस क्षेत्र में बाहर का हर व्यक्ति केवल अपने स्वार्थ-साधन के लिये आता है; यथा, महाजन व्यापार के लिये, ठेकेदार जंगल उजाड़ने के लिये, सवर्ण किसान जमीन लेने के लिये, सरकारी कर्मचारी पैसा कमाने के लिये और पुलिस विवादों को बढ़ाने के लिये। इस स्थिति को सुधारने में श्री परीख को काफी परिश्रम करना पड़ा।

आनन्द निकेतन आश्रम, रंगपुर एक सार्वजनिक सेवा-संस्था है जो इस क्षेत्र में सेवा-कार्य में संलग्न है। बड़ोदा से 120 कि०मी० दूर और आवागमन की सुविधा की कमी के कारण यह क्षेत्र एक समय अत्यन्त पिछड़ा हुआ था। यहां की परिस्थिति को देखते हुए आश्रम ने नीचे लिखे कार्यों को प्राथमिकता दी :—

(1) लोकअदालत—इसके माध्यम से विवादों को सुलझाने, गलत मान्यताओं को समाप्त करने एवं ग्रामस्वराज्य की दिशा में आगे बढ़ने की प्रेरणा देने का प्रयास किया जाता है।

(2) कृषि-विकास—इसमें सिंचाई के साधन उपलब्ध करने के साथ-साथ कृषि की नयी पद्धति का शिक्षण भी दिया जाता है।

(3) सहकारी समितियां—इसके द्वारा कमजोर वर्ग की आर्थिक स्थिति सुधारने का प्रयास किया जाता है।

(4) प्रौढ़ शिक्षा।

(5) शोषणमुक्ति—बहुसंख्यक गरीब जनसमुदाय को महाजन, बड़े किसान एवं अधिकारियों के शोषण से मुक्त कराने का प्रयास किया जाता है।

(6) समग्र शिक्षा—आनन्द निकेतन आश्रम में जीवन-शाला के नाम से एक प्रवृत्ति चलती है जिसमें इस प्रकार की व्यावहारिक शिक्षा दी जाती है जिसे प्राप्त कर व्यक्ति स्वावलम्बी जीवन व्यतीत कर सके। यहां मुख्यत: कृषि, कृषि-तकनीक, ग्रामीण मशीन आदि का प्रशिक्षण सामान्य शिक्षा के साथ-साथ दिया जाता है।

उपरोक्त कार्यक्रमों में लोकअदालत इन सबका केन्द्र-बिन्दु रही है। यह एक प्रकार की धुरी है जिसके चारों ओर अन्य कार्यक्रम चलते हैं। लोक-अदालत के माध्यम से ही ग्रामों के पुन:निर्माण का कार्यक्रम हुआ और साथ ही अन्य कार्यों का भी विकास हुआ।[7] प्रारम्भ (1949) से ही लोकअदालत यहां का प्रमुख कार्यक्रम रहा है और पिछले 27 वर्षों में लोकअदालत में अनेक प्रकार के हजारों विवाद निपटाये गये हैं।

लोकअदालत : उद्देश्य एवं परिभाषा

लोकअदालत सरकारी न्यायालय एवं न्याय पंचायत दोनों से भिन्न न्यायिक संगठन है। यह भिन्नता ही इसकी विशेषता है।[8] जैसा कि ऊपर कहा गया है, इसका विकास समस्याओं के समाधान की खोज के प्रयास के क्रम में स्वत: हुआ है। प्रारम्भ में इसकी व्यवस्था, कार्य-पद्धति आदि के कोई बने-बनाये नियम नहीं थे। आवश्यकता के अनुसार धीरे-धीरे व्यवस्था का विकास स्वत: होता गया। यही कारण है कि यहां के नियम अत्यन्त सरल हैं एवं कागजी कार्यवाही नाममात्र की है। लोकअदालत का स्वाभाविक विकास होने के कारण इसे बंधे-बंधाए नियमों की परिभाषा में परिभाषित करना कठिन है। हमारी दृष्टि में लोकअदालत के निम्नलिखित उद्देश्य हैं :

1. गांव के लोगों में स्वशासन की भावना का विकास एवं उसका अभ्यास।
2. समाज के सभी वर्गों के लिये ऐसी न्याय-व्यवस्था का निर्माण करना जिससे उन्हें सस्ता तथा जल्दी न्याय मिल सके।

अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिये लोकअदालत ने जो स्वरूप विकसित किया है, उसके आधार पर इसकी विशेषताओं की खोज करने का प्रयास किया

गया है। सामान्य तौर पर लोकअदालत की नीचे लिखी विशेषतायें मानी जा सकती हैं :

1. इसकी सभी कार्यवाही खुले रूप में होती है। इसीलिये इसे खुली अदालत (open court) भी कहा गया है,
2. विकेन्द्रित स्वरूप—यह ग्राम स्तर तक फैला हुआ है। वैसे वर्तमान व्यवस्था में अधिकांश विवादों का निपटारा केन्द्रीय लोकअदालत में, जो रंगपुर आश्रम में स्थित है, किया जाता है, फिर भी ग्रामस्तर पर निपटाये जाने वाले विवादों की संख्या नगण्य नहीं है,
3. न्याय-प्रक्रिया में लोकतांत्रिकता—सबको अपनी राय व्यक्त करने का अधिकार,
4. निर्णय को स्वेच्छा से स्वीकार करना,
5. कानूनी (राज्य का) बन्धन का न होना,
6. शारीरिक दण्ड का न होना,
7. शीघ्र एवं सस्ता न्याय,
8. न्याय-प्रक्रिया की सरलता,
9. स्वशासन का अभ्यास (विवाद निपटाने की प्रक्रिया में पंचों का समावेश एवं नेतृत्व के विकास का प्रयास),
10. तथ्यों के आधार पर न्याय देने का प्रयास,
11. नये मूल्यों की स्थापना का प्रयास जिसमें सामुदायिकता, नैतिकता, मानवीयता आदि मुख्य हैं।

उपरोक्त बातें कमोवेश लोकअदालत में पायी जाती हैं। लोकअदालत में वकील जैसे मध्यस्थ एजेन्ट की आवश्यकता नहीं होती। वादी-प्रतिवादी उपस्थित समुदाय के सामने निर्भीक होकर अपनी-अपनी बात कहते हैं और अध्यक्ष एवं अन्य पंचों के सवालों का जवाब देते हैं। इन्हीं विशेषताओं के कारण गांव के लोग इसे पसन्द करते हैं। इस समय लोकअदालत दो रूपों में चलती है :

(क) एक निश्चित स्थान पर (आनन्द निकेतन आश्रम में खुले चबूतरे पर) लोक अदालत की बैठकें होती हैं,

(ख) ग्राम स्तर की लोक अदालत का विस्तार हो, इस दृष्टि से ग्राम-स्तर पर उसकी बैठकें होती हैं जिसमें गांव के वालिग लोग उपस्थित रहते हैं।

प्रस्तुत अध्ययन की उपयोगिता

प्रस्तुत अध्ययन में लोकअदालत के संगठन एवं कार्य-पद्धति का सर्वेक्षण प्रस्तुत किया गया है। लोकअदालत ने परम्परागत न्याय-पद्धति को नये परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। आमतौर पर न्याय की जो व्यवस्था है, उससे भिन्न यहां की लोकअदालत न्याय के क्षेत्र में नयी दिशा प्रस्तुत करती है। इसके विविध पक्षों पर गहराई से विचार करने की आवश्यकता है। लोकअदालत का यह अध्ययन न्यायव्यवस्था की विविध समस्याओं का समाधान खोजने में सहायक हो सकता है। इस अध्ययन की उपयोगिता को स्वीकार करते हुए कुछ बातें इस रूप में कही जा सकती हैं :

(क) ग्रामीण भारत की जिस प्रकार की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थिति है, उसमें इस प्रकार के प्रयास का अपना महत्त्व है। मुख्य बात यह है कि न्याय शीघ्र उपलब्ध किया जाय एवं न्याय-प्राप्ति में खर्च कम हो। प्रायः यह देखा जाता है कि न्याय-प्राप्ति में वर्षों लग जाते हैं और विलम्ब के कारण न्याय का महत्त्व एवं उपादेयता निरर्थक हो जाती है। लोकअदालत तात्कालिक एवं सस्ते न्याय का मार्ग बताती है। यदि इसकी व्यवस्था एवं कार्य-पद्धति के बारे में विस्तृत एवं प्रामाणिक जानकारी मिले, तो इसे न्याय क्षेत्र में स्वीकार किया जा सकता है। इसका सबसे अधिक लाभ समाज के उस कमजोर वर्ग को होगा जो आर्थिक परेशानियों एवं अज्ञान के कारण न्याय प्राप्त करने में अपने आपको सदैव विफल एवं असहाय महसूस करता है।

न्याय-कार्य में देरी आज की न्याय व्यवस्था की एक प्रमुख समस्या है और न्यायविद् इस खोज में हैं कि शीघ्र न्याय के लिए कौन-सा तरीका अपनाया जाये। यह अध्ययन इस खोज में मददगार हो सकता है।

(ख) न्याय सत्य पर आधारित होता है। सत्य की खोज के उद्देश्य से मौजूदा न्याय-व्यवस्था में अनेक कानून-कायदे बने हुए हैं। लेकिन यह पद्धति इतनी पेचीदा हो गई है कि इस काम में वकीलों की मदद

अनिवार्यतः आवश्यक हो गयी है। तथ्यों को प्रस्तुत करने एवं सत्य की खोज के प्रयास में वकीलों का धन्धा जिस रूप में फैला है, वह सामान्यजन की पकड़ के बाहर है। व्यवहार में विवाद के प्रस्तुतीकरण और उस विवाद के सम्बन्ध में प्रतिवादी का पक्ष प्रस्तुत करने में वकील ही प्रमुख होता है। न्याय व्यवस्था पेचीदा होने के साथ-साथ उसमें बन्धाव (closed system) भी है, खुलापन नहीं है। इसके विपरीत लोकअदालत पूर्णतः खुली हुई है, "खुलापन" (openness) इसकी विशेषता है। इसकी खुली न्यायपद्धति (open justice) का विश्लेषण न्याय-पद्धति के सम्यक् विकास में योग दे सकता है और उससे सामान्य जन को भी न्याय कार्य में भागीदार बनने का अवसर उपलब्ध हो सकता है। इसके साथ-साथ वकील जैसे मध्यस्थ की आवश्यकता भी कम हो सकती है।

(ग) न्याय के विकेन्द्रीकरण के प्रयास में यह अध्ययन उपयोगी सिद्ध होगा। ग्राम या ग्रामसमूह स्तर पर 'स्व-न्याय' (self justice) की व्यवस्था की सफलता में यह अध्ययन महत्त्व रखता है। न्याय पंचायत के सरकारी प्रयास को गति प्रदान करने में भी लोकअदालत के अनुभव का उपयोग किया जा सकता है।

(घ) अधिकांश गावों में आज भी पुरानी रूढ़ियों एवं अन्धविश्वासों का बोलबाला है और परम्परागत जाति पंचायतें इनका पोषण करती हैं।[9] आवश्यकता इस बात की है कि न्याय-प्रक्रिया में बाधक ऐसी रूढ़ियों एवं अन्धविश्वासों से ग्राम्य समाज को मुक्त कराया जाये। लोक-अदालत अपने कार्य के माध्यम से लोकशिक्षण का कार्य भी करती है, न्यायकार्य के साथ लोकशिक्षण एवं समाज-परिवर्तन की प्रक्रियाओं को किस प्रकार जोड़ा जा सकता है, अध्ययन का यह पक्ष प्रगतिशील ग्रामीण व्यवस्था के लिये उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

(ङ) प्रस्तुत अध्ययन का एक महत्त्व यह भी है कि लोकअदालत ने न्याय एवं दंड के सिद्धांत एवं व्यवहार पक्ष को नई दिशा दी है। शारीरिक दंड देकर अपराधी को धृष्ट एवं अभ्यस्त अपराधी बनाने के स्थान पर उसके अन्तर्मन में प्रायश्चित की भावना जागृत करके उसकी अपराध-वृत्ति का शमन करना इस न्यायप्रक्रिया का एक प्रमुख अंग है। साथ ही लोकअदालत की न्यायप्रक्रिया का दूसरा महत्त्वपूर्ण अंग यह भी है कि विवादग्रस्त पक्षों के आपसी तनाव को हमेशा के लिए

समाप्त किये जाने पर विशेष ज़ोर देता है, ताकि पीढ़ी दर पीढ़ी क़ायम रहने वाला वैमनस्य समाप्त हो और आज के विवादी या दुश्मन माने वाले कल के मित्र एवं अच्छे पड़ोसी बन जायें।

अध्ययन का विषय

प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित विषयों को शामिल किया गया है :

1. भौगोलिक परिस्थिति और लोकअदालत पर उसका प्रभाव,
2. सामाजिक संरचना और लोकअदालत के विकास एवं संगठन में उसका योग,
3. लोकअदालत का संगठन और न्याय पद्धति,
4. निर्णय की क्रियान्विति,
5. निर्णय की प्रतिक्रिया,
6. लोकअदालत द्वारा किये गये निर्णयों का अध्ययन,
7. कानूनी न्यायव्यवस्था के साथ लोकअदालत का सम्बन्ध और लोकअदालत पर उसका प्रभाव।

इसके अतिरिक्त इस अध्ययन में लोकअदालत सम्बन्धी अन्य पहलुओं पर भी विचार किया गया है। अध्ययन में शामिल प्रश्न इस प्रकार हैं :

1. लोकअदालत में और सरकारी न्यायालयों में जाने वाले विवादों के प्रकार में क्या भिन्नता है ?

2. तुलनात्मक दृष्टि से लोकअदालत और सरकारी न्यायालयों की निर्णय-प्रक्रिया में किस प्रकार की भिन्नता है ?

3. ऐसे कौन से तत्व हैं जो लोकअदालत के सफल संचालन में प्रभावी हैं और इन तत्वों की तुलना सरकारी न्यायालय, न्यायपंचायत और ग्राम-सभा के कार्य में प्रभावी तत्वों से किस सीमा तक की जा सकती है ?

4. इस क्षेत्र के लोगों का लोकअदालत के साथ किस प्रकार का व्यवहार है और वे लोकअदालत की सफलता में किस सीमा तक मददगार हैं ?

5. लोकअदालत एवं सरकारी न्यायालयों के सम्बन्ध किस रूप में विद्यमान हैं ?

6. लोकअदालत में विवाह और जमीन सम्बन्धी विवादों के अधिक संख्या में आने का क्या कारण है ? क्या यह स्थिति समाज में स्त्रियों के स्थान या भूमि व्यवस्था में कमजोरी के कारण है ?

अध्ययन में नीचे लिखी प्राकल्पनाओं को जांचने का भी प्रयास किया गया है :

1. इस क्षेत्र के लोगों की सामाजिक परिस्थितियां, सांस्कृतिक वातावरण, आर्थिक विषमता एवं प्रचलित पेचीदा तथा मंहगी न्यायव्यवस्था लोक-अदालत की स्थापना का कारण हैं।

2. लोकअदालत की सफलता का कारण निःस्वार्थ और सतत कार्यशील नेतृत्व एवं क्षेत्र में विद्यमान सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियां रही हैं।

3. इस क्षेत्र में भूमि एवं विवाह सम्बन्धी विवाद पारस्परिक तनाव के मुख्य कारण रहे हैं।

4. सहज, सरल एवं सीधी कानूनी प्रक्रिया विवादग्रस्त पक्षों को अधिक प्रभावी ढंग से संतोष प्रदान करती हैं।

5. समझौता भावना लोकअदालत में प्रस्तुत विवादों के निपटारे का मुख्य अंग रही है।

6. लोकअदालत विवादग्रस्त पक्षों की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए समाधान करती हैं।

क्षेत्र एवं पद्धति

आनन्द निकेतन आश्रम का सघन कार्य क्षेत्र करीब 100 गांवों का माना जाता है। इस अध्ययन में 10 गांवों (कुल का दस प्रतिशत) को शामिल किया गया है। इन गांवों के अतिरिक्त पांच ऐसे गांवों से भी तथ्यों का संग्रह किया गया है जहां के लोग अपने विवादों को सरकारी न्यायालयों में ले गये हैं। इस प्रकार के पांच गांवों को इस लिये चुना गया है कि लोक-अदालत एवं सरकारी न्यायालयों में जाने वाले मामलों के बीच तुलना की जाय। लोकअदालत से प्रभावित दस गांवों से व्यापक रूप में तथ्यों का संग्रह किया गया है जब कि अन्य पांच गांवों से केवल सरकारी न्यायालयों में जाने वाले विवादों की जानकारी ही एकत्र की गयी है।

इन 10 गांवों में 15 प्रतिशत मतदाताओं से साक्षात्कार किया गया है। इस साक्षात्कार में ऐसे लोग शामिल हैं, जिनके विवाद लोकअदालत में

गये हैं। साक्षात्कारियों में से 80 साक्षात्कार ऐसे हैं जिनके विवाद लोकअदालत में गये हैं। शेष साक्षात्कारियों में निम्न प्रकार के लोग शामिल हैं—(1) गांव के मुखिया (2) लोक अदालत में जूरी के रूप में भाग लेने वाले (3) गवाह के रूप में या पक्ष-विपक्ष में भाग लेने वाले और (4) सामान्य जन।

इसके अतिरिक्त क्षेत्र के अन्य लोगों से भी साक्षात्कार किया गया है जिनमें मुख्य हैं गैर आदिवासी नागरिक, शिक्षक, सरकारी कर्मचारी एवं वकील।

गांव का चुनाव एवं उत्तरदाताओं की सामाजिक-आर्थिक परिस्थिति

जिन दस गांवों में सर्वेक्षण कार्य किया गया है और जिन लोगों से साक्षात्कार किया गया है, उनके बारे में सामान्य जानकारी इस प्रकार है :

तालिका संख्या–1

सर्वेक्षित ग्राम की प्रकृति

क्रमांक	गांव का नाम	मतदाता संख्या	मतदाता संख्या का 15 प्र.श. जिनका साक्षात्कार किया गया है।	गांव की प्रकृति
1.	रंगपुर	287	43	आदिवासी
2.	मोटावांटा	381	57	,,
3.	खेरका	436	65	,,
4.	जाम्बा	271	40	,,
5.	गजलांवाट	82	12	,,
6.	कपराईली (रतनपुर)	159	23	मिश्रित
7.	गोयावांट	396	59	,,
8.	मंकोड़ी	637	95	आदिवासी
9.	मेखड़िया	205	30	,,
10.	बिजली	137	20	,,

उपरोक्त गांवों के अतिरिक्त क्षेत्र के जिन पांच गांवों से सरकारी न्यायालय में जाने वाले विवादों के बारे में संक्षिप्त जानकारी प्राप्त की गयी है, उनके नाम हैं—(1) खाटियावांट (2) झराई (3) मूंडामोर (4) चिपाण और

(5) नलवांट। इनकी आश्रम से दूरी क्रमश: 3, 2, 4, 2, 5 कि० मी० है। क्षेत्र में किये गये साक्षात्कार को नीचे लिखे वर्गों में विभाजित किया गया है—

1. सामान्य साक्षात्कार (क) उपरोक्त दस गांवों के 15 प्रतिशत मतदाताओं से साक्षात्कार किया गया जिसकी कुल संख्या 435 है।[10]

(ख) उक्त संख्या में से 80 साक्षात्कार ऐसे हैं जो वादी या प्रतिवादी के रूप में लोकअदालत में गये हैं।

(ग) साक्षात्कारियों में से 9 से सम्बन्धित विवाद ऐसे हैं जो लोकअदालत के निर्णय के पहले सरकारी न्यायालय में भी जा चुके थे।

2. अध्ययन क्षेत्र के कुछ विशेष लोगों से भी साक्षात्कार किया गया है जिसे विशेष साक्षात्कार कहा गया है। क्षेत्रीय बाजार (कंवाट), कस्बा (छोटा उदयपुर) एवं जिला मुख्यालय (बड़ौदा) के महाजन, शिक्षक, वकील तथा अन्य बुद्धिजीवियों को इस साक्षात्कार में शामिल किया गया है। रेंडम सेंपल के अनुसार इस साक्षात्कार में कुल 31 व्यक्तियों को शामिल किया गया है।

3. सरकारी न्यायालय में जाने वालों से साक्षात्कार—सामान्य साक्षात्कार के अतिरिक्त इसी क्षेत्र के पांच अन्य गांवों (ऊपर लिखे) के ऐसे विवादों से सम्बद्ध लोगों से भी साक्षात्कार किया गया जो सीधे सरकारी न्यायालय में गये थे। इनकी संख्या 23 है। सीधे सरकारी न्यायालय में जाने वालों से साक्षात्कार से भी कुछ तुलनात्मक तथ्य प्राप्त हुए हैं।

सामान्य (नं० 1) और विशेष (नं० 2) साक्षात्कारियों की सामाजिक स्थिति इस प्रकार की पायी गयी :

तालिका संख्या—2

उत्तरदाताओं का जातिवार विभाजन

क्र०	नाम जाति	सामान्य साक्षात्कार संख्या	सामान्य साक्षात्कार प्रतिशत	विशेष साक्षात्कार संख्या	विशेष साक्षात्कार प्रतिशत
1.	राठवा	378	86—89	00	00
2.	भील	39	8—97	1	3—23
3.	नायका	11	2—53	00	00—00
4.	हरिजन	3	0—69	00	00—00
5.	सवर्ण हिन्दू	4	0—92	27	87—09
6.	मुसलमान	00	00—00	1	3—23
7.	जाति न वताने वाले	00	00—00	2	6—45
	योग	435	100—00	31	100—00

उम्र की दृष्टि से उपरोक्त उत्तरदाताओं का वर्गीकरण इस प्रकार है :

तालिका संख्या—3

उत्तरदाताओं का उम्र के अनुसार वर्गीकरण

क्र०	उम्र समूह (वर्ष में)	सामान्य साक्षात्कार संख्या	सामान्य साक्षात्कार प्रतिशत	विशेष साक्षात्कार संख्या	विशेष साक्षात्कार प्रतिशत
1.	20 से 35	152	34.94	4	12—90
2.	36 से 50	169	38.85	3	9—68
3.	51 से 65	87	20.00	0	00—00
4.	66 से 80	9	2.07	0	00—00
5.	80 से अधिक	18	4.14	0	00—00
6.	उम्र न वताने वाले	00	00.00	24	77—42

उत्तरदाताओं के धन्धे की स्थिति निम्न प्रकार है। इससे इनकी आर्थिक स्थिति का पता लगता है :

तालिका संख्या–4

उत्तरदाताओं का धन्धा

क्र०	धन्धा	सामान्य संख्या	साक्षात्कार प्रतिशत	विशेष संख्या	साक्षात्कार प्रतिशत
1.	कृषि	389	89—42	1	3—22
2.	मजदूरी	31	7—13	0	0—00
3.	नौकरी	14	3—22	16	51—62
4.	व्यवसाय	00	0—00	10	32—26
5.	अन्य	1	0—23	2	6—45
6.	उत्तर नहीं देने वाले	00	0—00	2	6—45
	योग	435	100—00	31	100—00

ऊपर की तालिकाओं के अनुसार सामान्य उत्तरदाताओं एवं विशेष उत्तरदाताओं के बारे में कह सकते हैं कि सामान्य उत्तरदाताओं में आदिवासी मुख्य हैं और उनका मुख्य धन्धा कृषि है। विशेष उत्तरदाताओं में सवर्ण हिन्दुओं की संख्या अधिक है और उनका मुख्य धन्धा नौकरी एवं व्यवसाय है।

जिन 80 वादियों एवं प्रतिवादियों से उनके विवादों के बारे में जानकारी प्राप्त की गयी है, उनकी आर्थिक स्थिति इस प्रकार है :

तालिका संख्या–5

विवाद से सम्बद्ध उत्तरदाताओं की आर्थिक स्थिति

संख्या 80

क्र० धन्धा	वादी प्रतिवादी	वार्षिक पारिवारिक 100-500	501-1000	आय स्तर (रुपये में) 1001-1500	1501-2000	योग
1. खेती	वादी	22	15	00	2	39
	प्रतिवादी	20	11	1	2	34
2. मजदूरी	वादी	5	00	00	0	5
	प्रतिवादी	1	00	00	0	1
3. अन्य	वादी	00	00	00	0	00
	प्रतिवादी	1	00	00	0	1

अध्ययन में द्वितीयक सामग्री का पर्याप्त उपयोग किया गया है। लोक-अदालत कार्यालय में प्राप्त फाइलों एवं अन्य प्रकार के विवरणों का अध्ययन करके विवादों के बारे में तो व्यापक जानकारी प्राप्त की ही गयी है, साथ ही परम्परागत आदिवासी समाज में प्रचलित न्यायव्यवस्था सम्बन्धी साहित्य का भी उपयोग किया गया है और इस अध्ययन से सम्बन्धित विषयों के बारे में प्रकाशित अन्य सामग्री को भी देखा गया है।

लोकअदालत की कार्यपद्धति के बारे में तथ्यात्मक जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से लोकअदालत की बैठकों का प्रत्यक्ष अवलोकन किया गया है। अध्ययनदल लोकअदालत की छः बैठकों में उपस्थित रहा है।

अध्ययन की सीमाएं एवं समस्यायें

प्रस्तुत अध्ययन की कुछ सीमाएं हैं। लोकअदालत जिस क्षेत्र में चल रही है, वह आदिवासी क्षेत्र है। सर्वेक्षण में प्राप्त तथ्यों से इस बात की पुष्टि होती है कि लोकअदालत में आये विवादों में लगभग सभी आदिवासियों के विवाद हैं। गैर-आदिवासी समाज के विवादों की संख्या बहुत कम है। इस प्रकार लोकअदालत का प्रभाव क्षेत्र आदिवासी समाज तक ही सीमित मान सकते हैं। प्रभाव क्षेत्र की यह सीमा प्रस्तुत अध्ययन की सीमा को भी दर्शाती है। आदिवासी समाज में जातिगत न्याय की जो परम्परा रही है, उसके कारण लोकअदालत को अनुकूल वातावरण मिला है। इसमें जातिगत न्याय की परम्परा एवं स्वयं के अनुभवों के आधार पर विकसित न्याय-पद्धति दोनों का समन्वय पाया जाता है। अतः लोकअदालत के अध्ययन में परम्परागत न्याय-व्यवस्था के संदर्भ में लोकअदालत द्वारा प्रयुक्त न्यायप्रणाली अन्य क्षेत्रों में लागू करने की दृष्टि से सीमारेखा की समस्या भी आती है। दोनों के पारस्परिक समन्वयात्मक स्वरूप को देखते हुए इसे अन्य क्षेत्रों में लागू करने की दृष्टि से प्रयोग की कमी खटकती है। यह हमारे अध्ययन की भी एक सीमा हो जाती है कि हम लोकअदालत के विस्तार के बारे में इस दृष्टि से प्रमाणिक तथ्य प्रस्तुत नहीं कर पा रहे हैं। लोकअदालत राज्य द्वारा बने कानून की सीमा में नहीं आती है। इसके निर्णय प्रचलित कानून के अन्तर्गत नहीं दिये जाते। अतः कानूनसम्मत न्याय एवं उसके निर्णय के साथ इसकी तुलना की समस्या भी आती है। लोकअदालत द्वारा दिये गये निर्णय दोनों पक्षों और ग्रामीण जनसमुदाय द्वारा तो मान्य होते हैं, परन्तु राज्य के कानून के साथ उनका सम्बन्ध न होने के कारण सरकारी न्यायालयों में लोकअदालत के निर्णयों का महत्त्व नहीं होता।

लोकअदालत जिस क्षेत्र में चलती है, वह सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त पिछड़ा हुआ है। यहां शिक्षा का प्रसार नाममात्र का है। इस प्रकार की समाजव्यवस्था में साक्षात्कार अत्यन्त कठिन कार्य हो जाता है। सभी प्रश्नों को समझाने एवं उत्तर प्राप्त करने में कठिनाई तो होती ही है इसके साथ-साथ सही उत्तर प्राप्त करना भी एक समस्या है।

लोकअदालत में आये कई वर्ष पुराने विवादों की जानकारी प्राप्त करने में भी कठिनाई हुई। लोकअदालत के कार्यालय में लिखित रूप में विवादों के बारे में अत्यन्त सीमित जानकारी प्राप्त हो सकी है। प्रारम्भ में तो विवादों का विवरण रखा ही नहीं जाता था। बाद में 1960 से विवादों का न्यूनाधिक विवरण रखा जाने लगा है। फिर भी जो विवरण प्राप्त हुए हैं, उन्हें पर्याप्त नहीं माना जा सकता। इसकी पूर्ति हमने एक सीमा तक साक्षात्कार से करने का प्रयास किया है।

संदर्भ

1. देखें, अध्याय तीन।
2. देखें, श्री नागेश्वर प्रसाद, 'डी सेन्ट्रालाइजेशन इन यूगोस्लाविया एण्ड इन्डिया'।
3. देखें, गांधीजी, 'हरिजन सेवक,' 1-6-1947'।
4. गांधीजी, 'हरिजन सेवक,' 28-7-1946।
5. देखें, गांधीजी, 'हमारे गांवों का पुनर्निमाण,' नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद।
6. देखें, अध्याय दो एवं तीन।
7. देखें, 'स्वप्न हुए साकार,' सोसाइटी फार डेवलपिंग ग्रामदान, नई दिल्ली।
8. तुलना के लिये देखें, अध्याय दस।
9. देखें, अध्याय तीन।
10. 15 प्रतिशत के अनुसार यह संख्या 444 होती है। कतिपय कारणों से 9 फार्मों को अस्वीकार करना पड़ा है।

2

भौगोलिक और सामाजिक परिस्थिति

भौगोलिक पर्यावरण

वड़ोदा गुजरात का ऐसा जिला है जिसमें विविध जाति एवं धर्म के लोग रहते हैं। यहां की भौगोलिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थिति में भी विविधता है। एक ओर वड़ोदा शहर है जिसके आस-पास औद्योगिक प्रतिष्ठानों का वाहुल्य है तो दूसरी ओर ऐसे क्षेत्र भी हैं जहां विकास की किरणें अभी तक विल्कुल नहीं पहुंच सकी हैं। भौगोलिक एवं भूमि संरचना की दृष्टि से देखें तो एक ओर समतल और उपजाऊ जमीन है तो दूसरी ओर घनघोर जंगल एवं ऐसी पथरीली जमीन हैं जहां कठिन परिश्रम के वाद भी नाम मात्र का ही उत्पादन हो पाता है। सामाजिक संरचना की दृष्टि से देखें तो यहां हिन्दू, मुसलमान तथा अन्य धर्मावलम्बियों के साथ-साथ आदिवासियों की संख्या भी पर्याप्त है। छोटा उदयपुर एवं नसवाड़ी आदि ऐसे क्षेत्र भी हैं जहां पचास प्रतिशत से अधिक संख्या आदिवासियों की ही है। जिले की पूर्वी सीमा मध्यप्रदेश से जुड़ी हुई है। उत्तरी सीमा पंचमहाल जिले से लगी हुई है। उत्तर-पश्चिम में खेड़ा जिला है। जिले की दक्षिणी सीमा भड़ौंच जिले से मिलती है। माही नदी वड़ोदा जिले को खेड़ा से अलग करती है, तो नर्मदा भड़ौंच से। औद्यागिक दृष्टि से यह गुजरात राज्य में सवसे विकसित जिलों में से है। भौगोलिक एवं भूमि संरचना की दृष्टि से इस जिले को मुख्यत: दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—(1) समतल मैदानी क्षेत्र, जहां शहरीकरण एवं औद्योगिक प्रतिष्ठानों का पूरा विकास हुआ है। यह क्षेत्र वड़ोदा शहर के आस-पास और खेड़ा से मिलने वाली सीमा पर है। (2) ऐसा क्षेत्र जहां आदिवासियों का वाहुल्य है और जहां कुछ दशक पूर्व घनघोर जंगल था। यह क्षेत्र मध्यप्रदेश, पंचमहाल एवं भड़ौंच जिले की सीमा से मिलता है।

वड़ोदा जिले की मिट्टी की मुख्य दो किस्में हैं। कुछ क्षेत्रों में बलुई, दोमट मिट्टी है तो कुछ क्षेत्रों में काली मिट्टी। पहाड़ी एवं आदिवासी क्षेत्र में काली मिट्टी का बाहुल्य है। छोटा उदयपुर एवं नसवाड़ी में काली एवं बलुई-दोमट दोनों प्रकार की मिट्टी है। इस क्षेत्र में प्रायः सभी किस्म की फसलें उगायी जाती हैं। काली मिट्टी के क्षेत्र में कपास प्रमुख व्यापारिक फसल (cash crop) है। यहां वर्षा अच्छी होती है। परन्तु अब धीरे-धीरे जंगल कटने के कारण वर्षा की कमी महसूस की जाने लगी है। जिले की कुल जनसंख्या का 23.89 प्रतिशत भाग आदिवासियों का है। आदिवासियों का घनत्व जिले के छोटा उदयपुर एवं नसवाड़ी क्षेत्र में अधिक है।[1]

वड़ोदा जिले के विभिन्न ताल्लुकों में आदिवासी आबादी की संख्या एव कुल आबादी का प्रतिशत इस प्रकार है :

सारणी संख्या—6

वड़ौदा जिले के विभिन्न ताल्लुकों में आदिवासी[2]

क्र०	ताल्लुका	आदिवासी आबादी संख्या	कुल आबादी में प्रतिशत
1.	छोटा उदयपुर	83,247	57.35
2.	जंबुगांव	46,543	41.07
3.	नसवाड़ी	38,992	68.46
4.	संखेड़ा	36,642	31.71
5.	डभोई	26,975	47.34

ऊपर की सारणी में केवल पांच ताल्लुकों में निवास करने वाले आदिवासियों की संख्या ही दी गई है क्योंकि उपरोक्त ताल्लुकों में ही आदिवासियों की संख्या अधिक है। वैसे जिले के अन्य क्षेत्रों में भी कमोवेश आदिवासी आबादी है। एक समय था जबकि यह क्षेत्र आवागमन एवं अन्य सुविधाओं की दृष्टि से काफी पिछड़ा हुआ था, लेकिन जंगल कटने एवं अन्य सुविधाओं के बढ़ने के साथ-साथ यहां के लोगों का जीवन भी बदला है। आदिवासी-प्रधान इस क्षेत्र में आदिवासियों की कुल 18 जातियां हैं। वड़ोदा जिले की इन आदिवासी जातियों की ग्रामीण एवं शहरी आबादी की जानकारी सारणी 7 में मिलेगी—

सारणी संख्या—7

बड़ौदा जिले की आदिवासी जातियां एवं उनकी आबादी[3]

क्र०	जाति	ग्रामीण आबादी	शहरी आबादी	कुल
1.	भील	1,13,890	4,946	1,18,836
2.	वरडा	4	—	4
3.	वावचा	26	857	883
4.	चौधरी	3	28	31
5.	धानका	59,657	4,601	64,258
6.	घोडिया	79	89	168
7.	दुबला	20,144	717	20,861
8.	गामीत	1	46	47
9.	गोंड	—	12	12
10.	कांकण	3	35	38
11.	ढोर कोली	64	81	145
12.	नायका	10,466	245	10,711
13.	पारधी	—	1	1
14.	पटेलिया	25	16	41
15.	पोमला	8	39	47
16.	राठवा	1,06,289	13	1,06,302
17.	विटोलिया	40	2	42
18.	अन्य	5,565	—	5,565
	कुल योग	3,16,264	11,728	3,27,992

उपरोक्त सारणी के अनुसार कुछ आदिवासी जातियों की आबादी नाम-मात्र की है। संख्या की दृष्टि से भील, धानका, दुबला, नायका, राठवा आदिवासियों की संख्या अधिक है।

आदिवासी परिभाषा एवं प्रजाति

देश की कुल आबादी का करीब 7 प्रतिशत भाग आदिवासियों का है। सामान्य बोल-चाल की भाषा में सुदूर जंगल में रहने वाली जातियों को आदिवासी कहा जाता है। लेकिन यह आवश्यक नहीं कि जंगलों में रहने

वाली सभी जातियों को आदिवासी कहें । शाब्दिक दृष्टि देखें तो आदिकाल से रहने वाली जातियों को आदिवासी कह सकते हैं । आदिवासी किसे कहा जाय या आदिवासियों की क्या परिभाषा की जाय, इस पर विद्वानों में मतैक्य नहीं है । श्री एल. एम. श्रीकान्त के अनुसार आदिवासी समाज को समय-समय पर विविध नामों से सम्बोधित किया जाता रहा है । जैसे—अरण्यक, वनवासी, वन्य जाति, रानीपरज, आदिवासी आदि । इन्हें किसी सर्वमान्य परिभाषा में बांधना कठिन है । फिर भी श्री हन्टर की परिभाषा के अनुसार आदिवासी वर्ग एक सुसंगठित सामाजिक संरचना में समुदाय के रूप में ऐसा समुदाय है जो एक खास प्रकार के भौगोलिक पर्यावरण में रहता है ।[4] समाज शास्त्री श्री गिलिन ने अपनी रचना 'कल्चरल एन्थ्रोपोलाजी' में जन-जाति की परिभाषा इस रूप में की है—"स्थानीय जनजातीय समूहों का ऐसा समवाय जनजाति कहा जाता है जो एक सामान्य क्षेत्र में निवास करता है, एक सामान्य भाषा का प्रयोग करता है तथा जिसकी एक सामान्य संस्कृति है ।" इस प्रकार विभिन्न विद्वानों ने अलग-अलग परिभाषायें दी हैं । परिभाषाओं की विविधता को देखते हुए आदिवासी समुदाय के प्रमुख लक्षणों से इनकी विशेषता को आंकना अधिक उपयोगी होगा । प्रो. ए.आर. देसाई ने कुछ ऐसे लक्षण गिनाये हैं जो प्रायः सभी आदिवासियों में पाये जाते रहे हैं । ये सामान्य लक्षण इस प्रकार हैं ।[5]

(1) वे सभ्य जगत से दूर पर्वतों तथा जंगलों में दुर्गम स्थानों में निवास करते हैं ।

(2) वे निग्रिटोज, आस्ट्रोलाइड अथवा मंगोलाइड में एक प्रजातीय समूह से सम्बन्धित हैं ।

(3) वे जनजातीय भाषा का प्रयोग करते हैं ।

(4) वे आदिम धर्म को मानते हैं जो कि सर्वजीववाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है और जिसमें भूतों तथा आत्माओं की पूजा का महत्त्वपूर्ण स्थान है ।

(5) वे जनजातीय व्यवस्था को अपनाते हैं, जैसे उपयोगी प्राकृतिक वस्तुओं का संग्रह, शिकार, वन में उत्पन्न वस्तुओं का संग्रह करना आदि ।

(6) वे अधिकांशतया मांसाहारी हैं ।

(7) उनकी खानाबदोशी आदतें हैं तथा मदिरा एवं नृत्य के प्रति उनकी विशेष रुचि है ।

(8) आदिवासी महिलायें विवाह, तलाक आदि मामलों में अधिक सुदृढ़ स्थिति में है।

प्रो. देसाई के अनुसार जनजातीय जनसंख्या के केवल 1/5 भाग में ही अब उपरोक्त लक्षण पाये जाते हैं। इससे स्पष्ट है कि अब आदिवासी समाज धीरे-धीरे अपनी मूल संस्कृति को छोड़ता या कम करता जा रहा है और दूसरी संस्कृति के रीति-रिवाज, परम्पराओं एवं जीवन पद्धति को स्वीकार करता जा रहा है।

भारत के मध्य भाग के आदिवासियों में आस्ट्रोलाइड जाति तत्व हैं। काफी गाढ़े रंग की शरीर की चमड़ी, छोटा कद, लम्बा सिर और काफी चिपटी नाक—ये उनके विशिष्ट लक्षण हैं। उनके चेहरे और शरीर पर बहुत बाल नहीं होते हैं। गुजरात के आदिवासी मध्य भारतीय भाग के आदिवासियों में आते हैं और उनमें विशेषतया आस्ट्रोलाइड जाति तत्व हैं। लेकिन धीरे-धीरे आदिवासी जातियां भी शेष जातियों के साथ थोड़े-बहुत सम्पर्क में आ रही हैं इसलिये यह जाति तत्व भी मूल स्वरूप में अब देखने को मिलें, यह सम्भव नहीं है।

गुजरात की आदिवासी जातियां पहले कहां से आयीं, इसकी खोज करने से ऐसा मालूम होता है कि वे उत्तर से, पूर्व से और दक्षिण से आयी हैं। उनकी भाषा, नाम और रीति-रिवाजों के अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि ये जातियां अलग-अलग समय पर अलग-अलग कारणों से गुजरात में आकर बस गयीं। बाद में उत्तर से आये हुए गुजर, राजपूत, ब्राह्मण, कोली आदि ने उन्हें मैदानों से पूर्व सीमा पर स्थित जंगलों और पहाड़ी प्रदेशों में भगा दिया था। इस तरह अपने मूल स्थान को छोड़कर उन्हें जंगल और पहाड़ों में घुस जाना पड़ा और बाहर की दुनिया से उनका सम्पर्क प्रायः समाप्त हो गया। सभ्य संसार से अलग पड़ जाने के कारण ही उनका जो स्वाभाविक विकास होना चाहिये था, वह नहीं हुआ। परिणामस्वरूप वे गरीबी और अज्ञानता के चंगुल में फंस गये। इनकी बोलियां गुजराती भाषा से अलग हैं फिर भी जहां-जहां वे गुजराती भाषा-भाषियों के सम्पर्क में आये, वहां उन पर वहां की भाषा का असर साफ़ नज़र आता है।

गुजरात की आदिवासी जातियों को भौगोलिक दृष्टि से मुख्यतया तीन भागों में बांटा जा सकता है :

1. उत्तर गुजरात के भील तथा उनकी उपजातियां, जिनका राजस्थान के भीलों के साथ निकट का सम्पर्क है।
2. पंचमहाल, बड़ौदा और भड़ोंच जिले के भील—राठवा, धानका, पटेलिया

तथा नायका, जिनका मध्यप्रदेश की आदिवासी जातियों के साथ निकट का सम्पर्क है।

3. दक्षिण गुजरात के आदिवासी जिनमें मुख्यतया धोढिया, पोवरी, गामीत, कोंकणा, दुबला, भील, नायका, वारली, कोटवालिया, ढोर, कोली वगैरह आते हैं और उनका महाराष्ट्र की आदिवासी जातियों के साथ निकट का सम्पर्क है।[6]

गुजरात में बसने वाली विविध आदिवासी जातियों के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक संगठन में विभिन्नता देखी जा सकती है। यह भिन्नता काफी सूक्ष्म स्तर की है। ऊपरी दृष्टि से देखने पर विभिन्न आदिवासी जातियों की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था, रीति-रिवाज तथा परम्परा में काफी हद तक साम्य देखा जा सकता है। यहां के आदिवासियों में समान तत्व का खोज करने पर अनेक विशेषतायें देखने में आती हैं जो कि कमोवेश प्राय: सभी आदिवासी जातियों में पायी जाती हैं। ये समान तत्व इस प्रकार हैं :

1. एक ही स्थान पर गोट-बस्ती निश्चित करके बसने के बजाय वे खेतों में अलग-अलग घर बनाकर रहते हैं। ज्यादा से ज्यादा हुआ तो बिलकुल अलग बसने के बजाय दस-पन्द्रह घरों का टोला बनाकर एक साथ रहते हैं। लेकिन इन टोलों में भी इतनी दूरी होती है कि जिससे उनके गांव का विस्तार काफी बड़ा हो जाता है। आदिवासी गांव प्राय: तीन-चार मील के विस्तार में फैला हुआ होता है।

2. वे घर स्वयं ही अथवा बहुत हुआ तो कुटुम्बियों की सहायता लेकर स्थानिक साधनों से बना लेते हैं और इस तरह के घर बांधते हैं कि उसके बनाने में एक दो दिन से अधिक समय नहीं लगता। मृत्यु के कारण अथवा अन्य वहमों के कारण पुराने घर को तोड़कर नया बनाने में देर नहीं लगती। ऐसे घर बनाये जाते हैं, जिन पर उन्हें कुछ नकद खर्च या तो करना ही नहीं पड़ता अथवा करना पड़ता है तो बहुत कम।

3. आहार में मात्र अनाज पर निर्भर नहीं करते, बल्कि शिकार से प्राप्त पक्षी या जंगली जानवर, जंगल से इकट्ठा किया हुआ आहार, नदी या तलाव से पकड़ी मछलियां, घर के आंगन में पाले हुए मुर्गे, बत्तख आदि का उपयोग करते है। मांसाहार का निषेध नहीं है। खेती कम होने के कारण मात्र खेती पर आश्रित रहना उनके लिये संभव भी नहीं। खेती के

साथ-साथ जंगल पर उनकी निर्भरता अभी बनी हुई हैं।

4. वस्त्र, जहां तक हो, कम उपयोग में लेते हैं। स्त्री-पुरुष दोनों सिर्फ गुप्तांग ढंकने की दृष्टि से ही आवश्यक पोशाक पहनते हैं।

5. व्यसनों की दृष्टि से जरूरी शराब वे शराबबन्दी से पहले, अपने आप महुए से बना लेते थे। वे तम्बाकू वाड़े में उगा लेते हैं। इसलिये उस पर भी नकद खर्च कम होता है। जरूरी सब्जी भी वे वाड़े में पैदा कर लेते हैं। इनके अलावा उनकी दूसरी जरूरतें बहुत कम हैं। दवा का उपयोग वे बहुत कम करते हैं इस सम्बन्ध में वे ओझा, भगत पर विशेष झुकाव रखते हैं, इसलिये इसमें उन्हें कम खर्च होता है।

इस तरह उनका जीवन बहुत कम जरूरतों पर और इनमें से अधिकतर स्वयं स्थानीय आधार पर पूरी कर लेने के नियम पर अवलम्बित है।

6. सामाजिक व्यवहार में काफी लोचनीयता देखने को मिलती है, फिर भी जो व्यवहार तय है, उनका चुस्ती से पालन होता है। वर को खुद पसन्द करने की छूट, तलाक, पुनर्विवाह की छूट, सामर्थ्य न हो तब मात्र सगाई करके ही विधिपूर्वक शादी किये बिना गृहस्थी आरम्भ करने की छूट अथवा घर-जंवाई रहने की छूट इत्यादि के कारण उनके सामाजिक जीवन में बहुत कम घुटन मालूम होती है तथा स्त्री और पुरुष में समानता की भूमिका पर सम्बन्ध बनते हैं।

सामाजिक सम्बन्धों के कारण स्त्री को पुरुष के दबाव में नहीं रहना पड़ता, ऐसा होते हुए भी उसमें स्वच्छंदता के लिये स्थान नहीं है। जाति के कानूनों को जो भी भंग करता है उसे जाति पंच के समक्ष हाजिर होना पड़ता है, और उसका फैसला मानना पड़ता है। पटेल, कारभारी और पंच मिलकर बने हुए जाति पंच तथा एक से अधिक गांवों के लिए चौरा पंच सब जातियों में देखने को मिलते हैं। ये पंच उनके सब सामाजिक व्यवहारों का चुस्ती से नियमन करते हैं।

7. सब सामाजिक प्रसंग अत्यन्त सादगी से मनाये जाते हैं और इन्हें मनाने में नृत्य को सबसे अधिक महत्व दिया जाता है।

8. वे किसी भी रूढ़ धर्म का पालन न करके अगम्य शक्तियों में आस्था रखते हैं और उन्हें खुश रखने की कोशिश करते हैं। इसमें भी सरलता और सादगी दिखाई देती है। वे खास करके अपने पूर्वजों की आत्मा को सन्तुष्ट रखने की सबसे अधिक चिन्ता रखते हैं।

9. अगम्य शक्तियों में विश्वास के कारण और जीवन सम्बन्धी कोई बोधगम्य दर्शन नहीं अपनाया जाने के कारण उनका जीवन वहम और अंधश्रद्धाओं से

भरा होता है। इसलिए ओझा और सयाने का सब जातियों में आदर होता है।

10. वे माल की खरीद-बिक्री के लिये हाट प्रथा पर आधारित रहते हैं।

11. बालक का नामकरण पशु-पक्षी, वृक्ष या दिन के आधार पर करते हैं।

12. उनकी स्वतन्त्र बोली है परन्तु लिपि नहीं है।

13. अलग-अलग धन्धों का विकास नहीं हो सका। शिक्षा का भी पर्याप्त विकास नहीं हुआ। खेती, जंगल और मजदूरी इन तीन पर उनका आर्थिक जीवन निर्भर रहता है। जंगल का काम कम हुआ है और जंगल सम्बन्धी कानूनों के कड़े बनने से उस काम में पहले जैसी सुविधा अब नहीं रहीं। खेती के लिए पर्याप्त जमीन नहीं मिलती, इसलिए अधिकांश को मजदूरी पर निर्भर रहना पड़ता है।

गुजरात की सब आदिवासी जातियों में उक्त तत्व विद्यमान हैं। सम्पर्क की वजह से एक जाति दूसरी जाति की अपेक्षा किसी बात में आगे बढ़ गयी हो, ऐसा संभव है। बाह्य सम्पर्क के कारण इनमें परिवर्तन आ रहा है। फिर भी उपर्युक्त तत्व कमोवेश सभी जातियों में पाये जाते हैं।[7]

आदिवासी—आर्थिक परिस्थिति

आदिवासी समाज की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थिति इस प्रकार की है कि गैर-आदिवासी समाज द्वारा उनका भरपूर शोषण किया जाता है तथा अज्ञान, अशिक्षा, रूढ़िग्रस्तता, अन्धविश्वास आदि ऐसे कारण हैं जिनसे उनका जीवन कष्टमय बना हुआ है। एक समय था जबकि वे जंगलों में स्वच्छन्द रूप में रहते थे और उनका जंगलों पर एक प्रकार से एकाधिकार था। इससे उनका आर्थिक जीवन सहज रूप में चलता रहता था। बाद में जंगलों के कटने, नये कानून बनने, महाजन एवं सरकारी कर्मचारियों के प्रवेश और ठेकेदारों के हस्तक्षेप आदि के कारण उनकी आर्थिक स्थिति उत्तरोत्तर दयनीय होती गयी। आज की परिस्थिति में सामान्य आदिवासी का आर्थिक जीवन काफी कष्टमय हो गया है। आदिवासी समाज का एक हिस्सा अवश्य समृद्ध हुआ है लेकिन वह दूसरे आदिवासियों का शोषक भी बन गया है। ऐसे आदिवासियों की जो शिक्षित हो गये हैं और जिनका सम्पर्क बाहरी समाज से हो गया है एवं जिन्होंने परम्परागत धन्धों के साथ-साथ या तो नये धन्धे अपना लिये हैं या आय के अन्य स्रोत खोज लिये हैं, आर्थिक स्थिति सुधर गयी है। सामाजिक क्षेत्र में भी रूढ़ि एवं अन्धविश्वासों के कारण उनका जीवन दुःखदायी हो जाता है। राजनीतिक चेतना के नाम पर उनके

मतों का स्वार्थपूर्ण उपयोग करने की परम्परा बन गयी है ।

परम्परागत आर्थिक परिस्थिति के अनुसार आदिवासी समाज को कई श्रेणियों में विभाजित किया गया है । डा. हटन ने भारतीय जनजातियों को तीन समूहों में विभाजित किया है (1) वे जनजातियां जो वनों से खाद्य सामग्री एकत्रित करती हैं (2) वे जनजातियां जो चारागाही व्यवस्था में हैं (3) वे जनजातियां जो कृषि-कार्य, शिकार, मछली मारना तथा उद्योगों पर जीवन यापन करती हैं ।[8]

गुजरात का आदिवासी समुदाय मुख्यत: कृषि और मजदूरी पर निर्भर रहता है। ये लोग प्राय: एक स्थान पर रह कर खेती करते हैं। आज की परिस्थिति में स्थानान्तरित खेती संभव भी नहीं है । एक समय था जब जंगली चीजों से इनको अच्छी आय होतीं थी और जंगलों की जमीन पर उनका अधिकार था । लेकिन ब्रिटिश साम्राज्य के दिनों में लगान-वृद्धि के कारण आदिवासियों की जमीन सीमित होने लगी और उनके स्थान पर गैर-आदिवासियों ने जंगल की जमीन खरीदनी प्रारंभ करदी । जंगल के क्षेत्र में गैर आदिवासियों का प्रवेश हुआ तो इसका प्रभाव आदिवासियों के जीवन पर भी पड़ा । एक तरफ आदिवासियों की जमीन छिनने लगी और दूसरी तरफ गैर-आदिवासियों के द्वारा शोषण के विविध तरीके सामने आने लगे । जिन क्षेत्रों में आदिवासियों की जमीन की सुरक्षा कानून द्वारा नहीं की गयी थी वहां के आदिवासियों के हाथ से जमीन निकलती गयी । आदिवासी किसान के स्थान पर भूमिहीन श्रमिक की श्रेणी में आने लगे । जंगली फल, लकड़ी और पशु आदिवासियों की जीविका के आधार थे, लेकिन राज्य की ओर से जंगलों को सुरक्षित करने के कानूनों के लागू होने के बाद वे इनसे भी वंचित होने लगे । आजादी के बाद भी आदिवासियों द्वारा जंगल का उपयोग किये जाने का अधिकार काफी सीमित किया गया है और अब वे जंगलों से वे लाभ नहीं प्राप्त कर पाते हैं जो पहले प्राप्त करते थे ।[9] जंगलों की सुरक्षा के साथ-साथ जंगल के कर्मचारियों की संख्या में भी वृद्धि हुई । इस प्रकार हम देखते हैं कि गैर आदिवासियों का जंगलों में आकर बसना, जंगल की सुरक्षा के कानून, सरकारी कर्मचारी, महाजन एवं ठेकेदारों का उनके आर्थिक जीवन में हस्तक्षेप आदि ऐसे कारण हैं जिससे उनका आर्थिक जीवन पहले से अधिक कष्टप्रद हो गया ।

यह आम धारणा है और यह सही भी है कि आदिवासी समाज अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिये कर्ज लेता है। यह बात इस क्षेत्र के आदिवासियों पर भी लागू होती है। ये पीढ़ी दर पीढ़ी कर्ज के शिकार रहते

हैं। कठिन आर्थिक परिस्थितियों में कर्ज ही इनका एक मात्र सहारा रहता है। यद्यपि इनकी आवश्यकतायें अत्यन्त सीमित हैं और उनमें से अधिकांश की वे स्वयं के श्रम से ही पूरा करते हैं, फिर भी ये कर्ज में डूबे रहते हैं। इससे इस बात की पुष्टि होती है कि इनका आर्थिक स्तर काफी गिरा हुआ है। रिजर्व बैंक आफ इंडिया की ओर से आदिवासियों के कर्ज के बारे में जो सर्वेक्षण किया गया है उसमें कहा गया है कि गुजरात में 66.7 प्रतिशत आदिवासी परिवार परम्परागत ढंग के कर्ज में डूबे हुए हैं। औसत प्रति परिवार कर्ज का भार 355) रुपये पाया गया। ये लोग कर्ज का बड़ा भाग महाजनों से बहुत ऊंची ब्याज की दर पर प्राप्त करते हैं। सहकारी समितियों एवं अन्य सरकारी एजेंसियों द्वारा कर्ज की सुविधा प्रदान करने के बावजूद 63 प्रतिशत कर्ज महाजनों से लिया जाता पाया गाया।[10] आमतौर पर फसल बोने के समय और उसके पहले इन्हें कर्ज की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त सामाजिक संस्कार के अवसर पर भी बड़ी मात्रा में कर्ज लिया जाता है। फसल खराब होने पर कर्ज का भार बढ़ जाता है। ये लोग जो कुछ पैदा करते हैं या जंगल से प्राप्त करते हैं उसे सस्ती कीमत पर बेचना पड़ता है और जरूरत पड़ने पर वे ही वस्तुयें अधिक कीमत पर खरीदनी होती हैं। यह भी देखा गया है कि कर्ज की स्थिति में आदिवासी की पूरी की पूरी फसल कर्ज के भुगतान में चली जाती है। आदिवासियों की जमीन की खरीद-बिक्री पर प्रतिबन्ध लगने के बाद कर्ज में जमीन छूटना कम हुआ है, परन्तु अन्य रास्ते निकले हैं। आदिवासियों में कर्ज की जो स्थिति है, उसमें शोषण के अनेक रूप छिपे हैं जिनका उल्लेख करना यहां संभव नहीं है। कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि कठिन आर्थिक परिस्थितियों में कर्जदारी इनके जीवन का अनिवार्य अंग बन गयी है। फलतः महाजन, दुकानदार और बड़े किसानों से अमानुषिक शर्तों पर ये लोग कर्ज प्राप्त करते हैं और शोषण के शिकार होते हैं। इस परिस्थिति को समाप्त करने के लिये सरकार की ओर से प्रयास किया जा रहा है। लोकअदालत के माध्यम से भी इस क्षेत्र में कर्ज से सम्बन्धित विवादों को सुलझाने का प्रयास किया जा रहा है। साथ ही साथ कर्ज लेन-देन में होने वाले शोषण का अंश कम करने का भी प्रयास किया जा रहा है। यह भी एक तथ्य है कि आदिवासी समाज श्रमिक बंधक (bonded labour) के रूप में काम करता है लेकिन अब श्रमिक बंधक बनने की स्थिति नये कानून के प्रचलन के कारण समाप्त होने की आशा बंधी है। जमीन की बिक्री पर प्रतिबन्ध होने के बावजूद उसकी जमीन का उपयोग महाजन या किसान करता पाया जाता है।[11]

सर्वेक्षित क्षेत्र छोटा उदयपुर, एवं नसवाड़ी ताल्लुकों में आदिवासियों का बाहुल्य है। जैसा कि कहा जा चुका है, कुल आबादी का आधे से अधिक भाग आदिवासियों का है। शेष में सवर्ण हिन्दू जातियां, हरिजन, मुसलमान तथा अन्य धर्मों के लोग हैं। आमतौर पर यह देखने में आया है कि गैर आदिवासी सवर्ण जातियां बाजारों में ज्यादा है और कई गांव ऐसे भी हैं जहां सवर्ण हिन्दू जातियों का बाहुल्य है। जैसा कि ऊपर कहा गया है कि ये लोग प्रारम्भ में जमीन प्राप्त करने के लोभ में जंगल की ओर बढ़े, लेकिन बाद में वहीं बस गये। आदिवासियों से इन्हें कई प्रकार का लाभ मिला और वह लाभ आज भी मिल रहा है, जैसे सस्ती जमीन, सस्ता श्रम, शोषण की सुविधा आदि। सुरक्षित क्षेत्र होते हुए भी इस क्षेत्र की राजनीति पर गैर आदिवासियों का प्रभाव देखा जा सकता है। दूरस्थ गांवों में आदिवासियों के बीच गिने चुने परिवार गैर आदिवासियों के भी मिलेंगे। ये गैर आदिवासी इनके बीच शोषक के रूप में रहते हैं। गैर आदिवासियों का बसने का जो ढंग है उसे तीन रूपों में देख सकते हैं (1) बाजारनुमा गांवों में बसना जैसे कंवाट, कोसिन्द्रा, नसवाड़ी, छोटा उदयपुर आदि। (2) गैर आदिवासी प्रधान गांव जिनमें सवर्ण हिन्दू, मुसलमान एवं हरिजन आदि हैं। इस प्रकार के गांव में श्रमिक किस्म के आदिवासी भी मिलेंगे। इन्हें आदिवासी क्षेत्रों में गैर आदिवासी गांव कह सकते हैं। (3) तीसरी श्रेणी आदिवासी-प्रधान गांव जिनमें गिने-चुने गैर आदिवासी परिवार, जैसे दुकानदार या घरेलू उद्योग करने वाले बसे हुए हैं।

सारांश

1. आनन्द निकेतन आश्रम रंगपुर स्थित लोकअदालत ने उपरोक्त भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक परिप्रेक्ष्य में काम करना आरंभ किया और इस क्षेत्र की समस्याओं एवं विवादों को सुलझाने की एक ऐसी पद्धति विकसित करने का प्रयास किया जिससे समाज की बुराईयां दूर हों और समाजिक सम्बंधों को एक नयी दिशा मिले। यह क्षेत्र विविध प्रकार की सामाजिक-आर्थिक समस्याओं से गुंथित था। आदिवासी परम्परा एवं संस्कृति की दृष्टि से यहां सामाजिक समस्याओं और आपसी विवादों को सुलझाने की एक परम्परा रही है और यह परम्परा आदिवासी न्याय व्यवस्था के अनुसार है। आदिवासी समाज में जातिगत संगठन, सामाजिक संरचना एवं न्याय की ठोस व्यवस्था रही है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत नातेदारी की समस्या, जातिगत, विवाह एवं तलाक के विवाद, भूतप्रेत सम्बन्धी समस्याओं को सुलझाने की जातिगत व्यवस्था देखने

को मिलती है। आदिवासी समाज में कई प्रकार के अन्धविश्वास हैं। इसलिए परम्परागत न्याय व्यवस्था में रूढ़ियों एवं अन्ध विश्वासों का पूरा स्थान है। आदिवासी समाज के जातिगत संगठन में जिस प्रकार की न्याय-व्यवस्था प्रचलित है, उसमें पारिवारिक, जातिगत एवं अन्य प्रकार की आपसी समस्यायें काफी हद तक सुलझाने का प्रयास रहता है। परन्तु इसकी एक सीमा है और उस सीमा के अन्तर्गत ही आदिवासियों को न्याय मिलता है। लोक-अदालत ने आदिवासी समाज की न्याय व्यवस्था को परिष्कृत करने का प्रयास किया है। आदिवासी समाज में अन्धविश्वास, भूतप्रेत सम्बन्धी धारणा, स्त्रियों के प्रति मान्यता, विवाह का अस्थायित्व आदि बुराइयों को समाप्त करने का प्रयास भी लोकअदालत ने किया है। अपनी समस्याओं एवं आपसी विवादों को पंच-निर्णय द्वारा खुले रूप में सुलझाया जाय, इस नीति को लोकअदालत ने स्वीकार किया है, और यह नीति किसी न किसी रूप में आदिवासी समाज की न्याय व्यवस्था में विद्यमान है।[12]

2. इस क्षेत्र की विविध प्रकार की सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों के कारण आदिवासी समाज में ही आपसी विवाद नहीं होते, समाज के अन्य वर्गों से भी आदिवासियों के विवाद चलते रहते हैं यथा—(1) महाजन के साथ लेन-देन (2) कर्ज सम्बन्धी विवाद (3) जमीन के विवाद (4) जंगल के कर्मचारियों के साथ विवाद (5) पुलिस एवं अन्य कर्मचारियों के साथ विवाद और गैर आदिवासी के साथ अन्य विवाद आदि। इन विवादों को आदिवासी-न्यायव्यवस्था के अन्तर्गत निपटाया जा सकता है, इन्हें सुलझाने के लिये सरकारी न्यायालय में भी जाना पड़ता है, लेकिन लोकअदालत इन विवादों को सुलझाने का प्रयास करती है।

3. इस प्रकार हम देखते हैं कि लोकअदालत ने एक ओर तो आदिवासी समाज की परम्परागत न्यायव्यवस्था के स्वरूप को अपनाया है। उस पर आदिवासी न्यायव्यवस्था का यह प्रभाव देखा जा सकता हैं। तो दूसरी ओर आदिवासी न्यायव्यवस्था की बुराइयों को दूर करने का भी प्रयास किया गया है एवं अपने कार्यक्षेत्र को व्यापक भी बनाया है। इस प्रकार इसको गुणात्मक एवं विस्तारात्मक दोनों दृष्टियों से व्यापक बनाया गया है।

संदर्भ

1. 'जनगणना रिपोर्ट,' वड़ौदा जिला (गुजरात) 1960
2. विमलशाह, 'गुजरात के आदिवासी,' पृष्ठ 10, गुजरात विद्यापीठ अहमदावाद
3. विमलशाह, उपरोक्त पृष्ठ 62
4. उद्धत, श्री एल० एम० श्रीकान्त, 'ट्राइवल सोविनियर,' पृ०—13, भारतीय आदिम जाति सेवक संघ, नई दिल्ली
5. ए० आर० देसाई, 'रूरल इंडिया इन ट्रांजिशन,' पृ० 51
6. विमलशाह, पूर्वोक्त, पृ० 32 अहमदावाद
7. विमलशाह, पूर्वोक्त पृष्ठ 39-40
8. हरिश्चन्द्र उप्रेती, 'भारतीय जनजातियां,' पृष्ठ 12, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, 1970
9. स्टेफन फुच, 'द एवोरिजनल ट्राइव्स आफ इंडिया,' पृष्ठ 137-138 मैकमिलन, नई दिल्ली 1973
10. वी० एन० श्रीवास्तव, 'एक्सप्लायटेशन इन ट्राइवल एरिया,' पृष्ठ 5, भारतीय-आदिमजाति सेवक संघ, नई दिल्ली—1968,
11. उपरोक्त, पृष्ठ 17-18
12. आदिवासी न्यायव्यवस्था के लिये अगला अध्याय देखें

3

परम्परागत आदिवासी समाज में न्यायव्यवस्था

आदिम समाज में न्याय और नेतृत्व

परम्परागत समाज व्यवस्था में न्याय की खास पद्धति रही है। आदिकाल से मनुष्य समूह में रहता रहा है और उसके सामुदायिक जीवन को व्यवस्थित करने के लिये नियमों का निर्माण किया गया है। आदिम समाज में इन नियमों पर धर्म, जादू-टोना, अलौकिक शक्तियों आदि मान्यताओं का अधिक प्रभाव था। इन नियमों के अन्तर्गत सामाजिक व्यवस्था को नियंत्रित करने के लिये परिवार और समूह के नेता या मुखिया को प्रमुख स्थान दिया गया। आदिम समाज का मूल रूप गुजरात के आदिवासियों मे भले ही देखने को न मिले परन्तु उसका सूक्ष्म रूप अवश्य देखने को मिलेगा।

आदिम समाज में व्यक्ति सर्वथा समूह-झुंड (horde), कुल (class) या कबीले (tribe) द्वारा सम्पूर्ण रूप से प्रभावित रहता है। वह अपने समुदाय तथा उसकी परम्पराओं, लोकमत, आज्ञाप्तियों (decrees) के आदेशों का पालन आज्ञाकारिता के साथ करता है।[1] स्पष्ट है कि आदिवासी समाज में समूह तत्व की प्रधानता है और ये लोग निर्णय का पालन निष्ठा-पूर्वक करते हैं। प्रो. हॉवहाउस यह मत व्यक्त करते हैं कि ऐसे समाज में वस्तुतः उनकी अपनी प्रथायें होती हैं जिन्हें उसके सदस्य असंदिग्ध रूप से बन्धनकारी अनुभव करते हैं।[2] कुछ विद्वानों की राय में आदिवासी समाज के नियम एवं परम्पराएं उनके ऊपर जबरन दबाव नही है, बन्धन नही है बल्कि यह स्वेच्छापूर्वक, समाज को व्यवस्थित करने के लिये बनाये गये नियम हैं। इस तर्क को यहां की आदिवासी समाजव्यवस्था के अनुकूल

मान सकते हैं। आदिवासी समाज में न्याय और दण्ड उनके द्वारा स्वेच्छा से स्वीकार्य होते हैं। वे इसे सुव्यवस्थित समाज के लिये उपयोगी मानते हैं। विद्वान डा. लोवी (Dr Lowie) ने इसे इस रूप में व्यक्त किया है, 'सामान्य रूप से रूढिजन्य प्रथा (customary usage) के अलिखित नियम लिखित नियमों की तुलना में कहीं अधिक स्वेच्छापूर्वक माने जाते हैं और उनका पालन स्वयंप्रेरित होता है। वस्तुतः कोई समाज तब तक कुशलतापूर्वक कार्य नहीं कर सकता जब तक उसके नियम स्वेच्छापूर्वक और स्वयं प्रेरणा से न माने जायं'।[1]

भारतीय आदिवासी समाज में न्यायव्यवस्था के माध्यम से इसकी सामाजिक संरचना में नियंत्रण आता है। विभिन्न आदिवासी जातियों में न्यायव्यवस्था के भिन्न-भिन्न स्वरूप प्रचलित हैं लेकिन सभी आदिवासियों में यह एक रूपता देखने में आयी है कि उनमें ग्राम एवं जाति के मुखिया का प्रमुख स्थान होता है।

आदिवासी न्यायव्यवस्था

देश के प्रमुख आदिवासी समाजों, जैसे संथाल, भील, दुबला, हो, मुंडा आदि में न्याय कार्य करने वाले प्रमुख को विभिन्न नामों से सम्बोधित किया जाता है। संथाल आदिवासी समाज की प्रमुख जाति है। छोटा नागपुर एवं बस्तर क्षेत्र संथाल आदिवासियों में मुखिया को मांझी कहा जाता है। वह जाति का प्रमुख होता है। वैसे ग्राम, क्षेत्र एवं जिला स्तर पर भी पंचायत का संगठन होता है और परगना मांझी, मुखिया, पटेल आदि इनके जातिगत अधिकारी होते हैं। परगना मांझी क्षेत्रीय पंचायत के प्रमुख की भूमिका निभाता है।[1]

मांझी नागरिक व्यवस्था का संचालन अपने सहयोगियों की मदद से करता है। गांव में न्याय व्यवस्था के लिये पंचायत होती है, जिसमें पांच से लेकर ग्यारह सदस्य तक होते हैं। संथालों में दस-ग्यारह गांव-समूह-स्तर पर भी पंचायत की व्यवस्था पायी जाती है, जिसे स्थानीय भाषा में परगना कहते हैं। इसे गांव के लोग चुनते हैं। गांव की व्यवस्था में मांझी के सहयोगी के रूप में परमानिक तथा चपरासी के रूप में गोदेत होता है। अनेक गांवों के बीच परगनेत नामक मुखिया होता है। परगनेत के सहायक के रूप में देश-मांझी नामक सहयोगी रहता है। संथालों में संघीय परिषद (फेडरल काऊन्सिल) की भी व्यवस्था है जिसका मुख्य कार्य न्यायव्यवस्था देखना है।

संघीय परिषद

प्रशासनिक उद्देश्य से कुछ गांवों का एक संघ बनाया जाता है, ऐसे संघ को बंग्लो (Bunglow) कहा जाता है। प्रत्येक बंग्लो में दो काउंसिल होती हैं। अपर काउंसिल पंचायत का उच्चस्थ अधिकारी बंग्लों का परगनेत होता है। गांव के मुखिया उक्त पंचायत के सदस्य होते हैं। यह पंचायत जटिल तथा पेचीदे मामलों पर विचार करती है।

कुली द्रुप (Kuli Drup)

इसे निचली सभा कहा जाता है जो बंग्लों की दूसरी सभा के रूप में कार्य करती है। कुलीद्रुप में प्रत्येक परिवार का मुखिया परिवार का प्रतिनिधित्व करता है तथा गांव का मुखिया इस सदन की अध्यक्षता करता है। गांव के अन्य अधिकारी इस सदन के पदेन सदस्य होते हैं। छोटे-मोटे झगड़ों का निबटारा यह सदन करता है लेकिन बड़े मामलों पर उच्च सदन (पंचायत) को ही निर्णय करने का अधिकार है।[6]

उरांव जनजाति में न्याय

सुन्दरवन की उरांव जनजाति में पहले ग्राम पंचायत तथा परहा पंचायत दोनों थी। परन्तु परहा पंचायत का अस्तित्व धीरे-धीरे समाप्त होता जा रहा है।[6] ग्राम पंचायत छोटे-छोटे धार्मिक एवं सामाजिक विवादों को निपटाती थी तथा परहा पंचायत जो कि कई ग्रामों को मिलाकर बनती थी, दो गांवों के बीच विवादों को निपटाती थी। एक समय था जबकि ग्राम पंचायत का अधिकार-क्षेत्र काफी व्यापक था तथा उसके निर्णयों का पालन कठोरता से किया जाता था। परन्तु अब इसका महत्व कम होता जा रहा है और कोर्ट में जाने की प्रवृत्ति बढ़ रही है।

उरांव पंचायत का गठन इस प्रकार होता है :

1. राजमोरल—मुखिया (एक)
2. मंत्री—राजमोरल का परामर्शदाता (एक)
3. सदस्यगण (संख्या निश्चित नहीं है)
4. चौकीदार (एक)

पंचायत का मुखिया आमतौर पर वंशानुगत होता है और उसकी मृत्यु के बाद उसका सबसे बड़ा लड़का राजमोरल बनता है। राजमोरल मंत्री की नियुक्ति करता है तथा वह गांव के मुख्य लोगों एवं मंत्री की सलाह से सदस्यों का चुनाव करता है। चोकीदार का चुनाव पंचायत करती है। चुनाव के बाद पचायत का अधिकारी ईश्वर के नाम पर समस्त प्रभावशाली लोगों के समक्ष शपथ ग्रहण करता है। ग्राम पंचायत मुख्यतया निम्नलिखित विषयों से सम्बन्धित झगड़ों को निपटाने का कार्य करती है :

1. मारपीट
2. जमीन के मामले
3. प्रेम से सम्बन्धित मामले
4. सामाजिक नियमों एवं परम्पराओं के उल्लंघन के मामले।[7]

कोल आदिवासी

मध्य भारत में कोल आदिवासी समाज में भी जातीय पंचायत की व्यवस्था देखने को मिलती है। इस समाज में ग्रामप्रमुख होता है, परन्तु न्याय कार्य अन्ततः पंचायत में निहित होता है। इस समाज में पंच को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। इसके निर्णय की अवहेलना संभव नहीं होती। यहां पंच का तात्पर्य पांच व्यक्ति से न होकर ग्राम समुदाय के सभी योग्य एवं प्रभावशाली व्यक्तियों के समूह से है। यह एक प्रकार की ग्राम-सभा होती है जिसका प्रधान गांव का परम्परागत मुखिया होता है। निर्णय सबकी राय से किया जाता है। इस समाज में सामाजिक बहिष्कार दबाव का प्रमुख अस्त्र है।

कोल जन जाति-पंचायत में अनेक प्रकार के विवादों को निपटाया जाता है। कोल पंचायत द्वारा निपटाये जाने वाले विवादों को इस रूप में व्यक्त कर सकते हैं :—

1. इतर जाति के साथ भोजन एवं शराब पीने की शिकायतों पर विचार करना।
2. कोल जाति द्वारा अमान्य यौन-सम्बन्ध।
3. विवाह सम्बन्धी विवाद जिसमें इससे सम्बन्धित लेन-देन भी शामिल है।
4. तलाक एवं बच्चों के सम्बन्ध में।

5. पारिवारिक विवाद।

6. कर्ज एवं मारपीट।

7. पशु से सम्बन्धित विवाद।

8. कोल जाति में असामाजिक घोषित कार्य करना।

9. सम्पत्ति सम्बन्धी विवाद।[8]

इस आदिम जाति में न्यायव्यवस्था अधिक मजबूत देखने में आती है। न्याय कार्यक्षेत्र भी व्यापक है। मात्र सामाजिक क्षेत्र तक सीमित न होकर आर्थिक क्षेत्र को भी इनकी जाति पंचायत से प्रभावित करती है।

बिंझवार

मध्य प्रदेश में बिंझवार नाम की एक आदिम जाति है। यह आदिम जाति छत्तीसगढ़ क्षेत्र में पायी जाती है। बिंझवार जाति के लोग छत्तीसगढ़ के इतिहास का ही एक अंग हैं। उनका अनेक राजाओं के साथ जो सम्बन्ध था, उसका उल्लेख उनकी दन्त-कथाओं में मिलता है।[9] इस आदिम जाति में परम्परा से किसी प्रकार की न्याय-पंचायत की व्यवस्था का उल्लेख नहीं मिलता। डा० टी०बी० नायक के अनुसार सन् 1955 तक बिंझवारों में जातीय संगठन के आधार पर कोई विशेष महासंगठन या पंचायत नाम की चीज नहीं थी। पर जब यह जाति दूसरी जातियों के द्वारा सतायी जाने लगी एवं पुलिस कर्मचारी इसे बिना अपराध परेशान करने लगे, तब 1955 में इस जाति में जागृति उत्पन्न हुई एवं इस जनजाति ने प्रथम बार पूर्ण जातीय संगठन के रूप में एक महासभा का निर्माण किया। इस महासभा में सम्पूर्ण बिंझवार जातीय क्षेत्र को दो सौ क्षेत्रों में बांटा गया। प्रत्येक क्षेत्र से तीन मुखिया चुने जाते हैं, जिन्हें गोंठिया कहा जाता है तथा प्रत्येक ग्राम या दो ग्राम समूह से दो-दो उपमुखिया चुने जाते हैं जिन्हें 'पंच' कहा जाता है।[10] गोंठिया सामान्यतया निम्नलिखित कार्यों को पूरा करता है :

1. जातीय चन्दा एकत्र करना।

2. जातीय झगड़ों का निपटारा करना।

3. पारिवारिक बंटवारे में भूमि का बंटवारा करना।

4. जाति में व्याभिचार आदि होने से रोकना।

5. महासभा द्वारा मान्य किये गये समाज सुधार सम्बन्धी नियमों की

लोगों को जानकारी कराना ।

6. चन्दा तथा दण्ड की रकम का लेखा-जोखा रखना ।

न्याय-कार्य गोंठिया तथा पंच मिलकर करते हैं । यह संस्था मात्र न्याय कार्य करके जाति कल्याण का कार्य भी सम्पन्न करती है । यदि कोई जटिल जातीय मामला गोंठिया और पंच से नहीं सुलझ पाता है तो अन्य गोंठियों की मदद से उसे सुलझाने की कोशिश की जाती है । यदि वे सब भी विफल हो जाते हैं तो जनवरी माह में होने वाली महासभा में सभी गोंठियों तथा पंचों की राय से फैसला सुनाया जाता है ।[11] इस प्रकार विझवार जाति में जातिगत पंचायत की व्यवस्था काफी मज़बूत है । ग्राम स्तर पर यह पंचायत अपनी समस्याओं एवं विवादों को सुलझाने का भरसक प्रयास करती है ।

भील

भील समाज को संगठित करने के लिये जातीय स्तर पर अनेक प्रकार के जातीय नियम हैं जिनसे उनके जीवन का व्यवहार संचालित होता है और जिनसे उन्हें सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक कार्यों में मदद मिलती है तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अधिकार एवं कर्त्तव्य का सम्यक ढंग से पालन होता है । सामाजिक व्यवहार, विवाह, मृत्यु, त्योहार आदि के बारे में निश्चित नियम हैं और यदि उन नियमों का उल्लंघन होता है तो उल्लंघन करने वाले को दण्ड का भागीदार होना पड़ता है । जीवन का प्रत्येक क्षेत्र सन्तुलित रहे, इसके लिये न्याय की समुचित व्यवस्था है । जीवन के व्यवहार को नियमित रखने के जो नियम हैं, वे भील के दैनिक कार्यकलापों में देखे जा सकते हैं ।[12]

भील जाति में, खासकर भील प्रधान गांव में, जातीय संगठन मज़बूत होता है । इस जाति में न्याय व्यवस्था में खुलापन एवं पंच निर्णय की पुरानी परम्परा है जिसमें गांव के प्रमुख लोग एकत्र होकर विवाद को सुलझाते हैं । वैसे ग्राम संगठन की दृष्टि से गांव में एक परम्परागत प्रधान होता है जिसे स्थानीय बोलचाल की भाषा में वसवो (Vasawo) कहते हैं । यह गांव का मुखिया होता है तथा गांव में परिवार या ग्राम स्तर पर होने वाले सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों में अगुआ भी होता है । विवाह, त्योहार, मृत्यु आदि में इसकी प्रमुख भूमिका होती है । न्यायकार्य में भी इसकी उपस्थिति आवश्यक होती है । सामान्यतया ग्राम-प्रमुख का पद वंशानुगत होता है ।[13]

भील समाज में गांव के मुखिया को पटेल या तडवी कहते हैं । वह हर

गांव का मुखिया होता है और इस प्रकार पंचायत की शक्तियां भी उसमें निहित होती हैं। आमतौर पर वह गांव के पंचों की राय से न्याय-कार्य करता है।[14]

इस जनजाति में पंचायत की व्यवस्था है जो जाति स्तर पर न्याय का कार्य करती है। गांव के बुजुर्ग एवं प्रमुख लोग इस पंचायत के सदस्य होते हैं। पंचायत का कोई लिखित विधान न होकर इसकी अपनी परम्परा एवं परम्परागत नियम हैं। सामान्यतया गांव के बुजुर्ग एवं प्रमुख लोग एक स्थान पर एकत्र होते हैं और विवाद को सुलझाते हैं। यह पंचायत कई प्रकार की समस्याओं एवं विवादों को सुलझाती है, जैसे—प्रेम सम्बन्ध, विवाह एवं तलाक से सम्बन्धित विवाद, पशु को लेकर उठने वाले विवाद, जबरन बेगार से सम्बन्धित विवाद आदि। विवाद को सुलझाने के लिये बुलायी गयी पंचायत में सभी उपस्थित सदस्य एक स्थान पर बैठते हैं। इस बैठक में अध्यक्ष या प्रमुख की भूमिका गांव का बुजुर्ग, गांव का अधिक समझदार-बुद्धिमान व्यक्ति या जातिगत प्रमुख वसवो (Vasawo) में से कोई एक निभाता है। यह व्यक्ति विवाद को सुलझाने में अगुआई करता है। इस बात का पूरा प्रयास किया जाता है कि निर्णय सर्वसम्मति से किया जाय। सर्वसम्मति के प्रयास में विवाद की गहराई में जाने का प्रयास किया जाता है ताकि सत्य की जानकारी हो सके। पंचायत द्वारा जो भी निर्णय लिया जाता है, उसका अच्छी तरह पालन किया जाता है। अतः जनमत एवं निर्णय का आदर करने की कठोर परम्परा इस समाज में पायी जाती है। इस बारे में टेलर ने कहा है कि इस प्रकार के आदिम समाज में समाज को नियंत्रित करने की कठोर परम्परा है तथा यहां जनमत की शक्ति काफी मजबूत है[15] अर्थात् पंचायत एक मजबूत सामाजिक संस्था है।

आदिवासी समाज में विवाह सम्बन्धी विवाद आये दिन होते रहते हैं। लोकअदालत में भी विवाह सम्बन्धी विवादों की संख्या अधिक है। विवाह की स्वतंत्रता एवं समाज में स्त्रियों का समान स्थान आदि ऐसे कारण हैं जिनसे विवाह सम्बन्धी विवाद अधिक होते हैं। विवाह सम्बन्धी कई प्रकार के विवादों को पंचायत द्वारा सुलझाया जाता है, जैसे जब अविवाहित लड़की को कोई व्यक्ति भगा ले जाये अथवा विवाह के पूर्व कोई लड़की गर्भवती हो जाये अथवा जब कोई विवाहित महिला दूसरे गांव के किसी व्यक्ति के पास चली जाय आदि।[16]

भील सत्य बोलने के अभ्यासी होते हैं। सत्य, नैतिकता एवं अपनी बात पर दृढ़ रहना उनकी विशेषता है। यही कारण है कि चोरी जैसे मामले

काफी कम आते हैं। फिर भी कई मामले ऐसे आते हैं जिनसे लोग बात को छिपाने का प्रयास करते हैं। जैसा कि लोकअदालत में भी देखने में आया, विवाह, तलाक आदि के मामले में महिलायें प्रारम्भ में सही बात स्वीकार नहीं करतीं या यदि अपनी गलती है तो उसे छिपाने का प्रयास करती हैं। यही बात कमोवेश अन्य प्रकार के विवादों पर भी लागू होती हैं।

परम्परागत भील पंचायत में सत्य को सामने लाने के लिये शपथ दिलायी जाती है। यह शपथं इस प्रकार की पायी जाती है जैसे 'यदि मैं सत्य नहीं बोलूं तो मुझे शेर खा जाय, मेरा पुत्र मर जाय, मुझे डाकन परेशान करें' आदि। इसी प्रकार वह राजा, सूर्य, अग्नि, जल आदि को साक्षी लेकर भी सत्य बोलने की शपथ लेता है।[17] इस प्रकार की शपथ लेने के बाद व्यक्ति सत्य बात कहता है। यह अपेक्षा भी रखी जाती है कि जो व्यक्ति पंच के सामने इस प्रकार की शपथ ग्रहण करेगा, वह सत्य कहेगा ही।

इस प्रकार भील जाति में (1) न्याय का विस्तार जातिगत स्तर पर सामाजिक-धार्मिक समस्याओं को सुलझाने तक है। (2) इसके साथ-साथ इसकी निर्णय-प्रक्रिया में काफी हद तक लोकतांत्रिकता है। (3) निर्णय सामान्यतया सर्वसम्मति से किया जाता है। (4) निर्णय का पालन निष्ठा-पूर्वक किया जाता है। (5) पंचायत में गांव के बुजुर्ग, समझदार एवं बुद्धि-मान् व्यक्ति भाग लेते हैं। (6) इसके नियम परम्परागत हैं (7) पंचायत का प्रमुख स्थायी न होकर प्रत्येक बैठक में प्रायः अलग-अलग होता है। यह प्रमुख गांव का प्रतिष्ठित, योग्य व्यक्ति होता है। (8) सत्य पर पहुंचने के लिये (क) शपथ दिलायी जाती है और (ख) मामले पर गहराई से विचार किया जाता है।

दुबला समाज में न्याय

अन्य आदिम जातियों की भांति दुबला समाज में भी जाति स्तर पर न्याय व्यवस्था विद्यमान है। दुबला जाति में तीन[18] स्तर की न्याय व्यवस्था पायी जाती है :

(क) राज्य कानून के अन्तर्गत गठित पंचायत।

(ख) जाति स्तर पर संगठित ग्राम या गली (फालिया) स्तर की जाति पंचायत जो उनके दैनिक विवादों को सुलझाती है।

(ग) सम्पूर्ण जातीय स्तर की जाति पंचायत। यह पंचायत जिला या उससे भी बड़े क्षेत्र की संगठित जातीय पंचायत है। इसमें सभी

प्रकार की जातीय समस्याओं को सुलझाया जाता है।

दुबला पंचायत के प्रमुख को पटेल कहा जाता है। पटेल का चुनाव गांव में रहने वाले बालिगों द्वारा किया जाता है। पटेल के चुनाव में उम्र एवं अनुभव के साथ-साथ प्रभाव को भी महत्त्व दिया जाता है। इस प्रकार गांव का प्रौढ़, अनुभवी एवं प्रभावशाली व्यक्ति पंचायत का पटेल चुना जाता है। पटेल पूरे गांव का मुखिया होता है। वह गांव की समस्याओं एवं विवादों को निपटाने में प्रमुख भूमिका निभाता है।

दुबला पंचायत का गठन एवं कार्य पद्धति—इस पंचायत का जो प्रमुख चुना जाता है, वह पूरे गांव में एक ही होता है लेकिन इसके सहयोगी के रूप में गांव के प्रत्येक फलिये (वार्ड) से एक प्रतिनिधि पंचायत में जाता है। यह प्रतिनिधि अपने वार्ड का प्रतिनिधित्व करता है। पंचायत का प्रमुख प्रतिनिधियों में से एक को अमलदार नियुक्त करता है। अमलदार की जिम्मेदारी होती है कि सभा की बैठक की सूचना सबको दे।

दुबला पंचायत गांव एवं जाति से सम्बन्धित व्यक्तिगत, पारिवारिक, वैवाहिक तथा अन्य सामाजिक विवादों को सुलझाती है। पंचायत दोषी पाये गये पक्ष के ऊपर आर्थिक दंड भी करती है। आमतौर पर विवाद एवं उसके फैसले के बारे में किसी प्रकार का लिखित विवरण रखने की परम्परा नहीं है। इसका मुख्य कारण शिक्षा का अभाव है। पिछले कुछ दिनों से इस समाज में शिक्षा का प्रचार बढ़ा है और कुछ लोगों ने लिखना-पढ़ना भी सीखा है। शिक्षित गांवों में तलाक सम्बन्धी विवादों का विवरण रखने का प्रयास किया जाता है। स्थानीय भाषा में इसे फारगती-नामा कहा जाता है।[19] इस प्रकार के फारगती-नामे में तलाक का प्रश्न एवं निर्णय लिखा जाता है। इस पर पंच एवं दोनों पक्षों—वादी एवं प्रतिवादी के हस्ताक्षर होते हैं।

आदिवासी समाज में ग्रामप्रमुख की जो भूमिका है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वह गांव का सामाजिक, राजनैतिक एवं नैतिक प्रमुख भी होता है। अफ्रीकी समाज के अध्ययन में कहा गया है कि गांव का मुखिया गांव के सामाजिक सम्बन्धों में एकरूपता स्थापित करता है। इस काम में वह न्याय कार्य का भी प्रमुख होता है। वह व्यक्ति, पारिवारिक एवं अन्य सामाजिक सम्बन्धों को सामान्य एवं शुद्ध बनाता है।[20] अफ्रीकी समाज में ग्रामप्रमुख ग्रामीण विवादों को सुलझाता है। दक्षिण अफ्रीका के 'यो' समाज का ग्रामप्रमुख गांव में अच्छे सम्बन्ध के लिये जिम्मेदार होता है, साथ ही साथ उनके विवादों को भी सुलझाता है। वह दोनों पक्षों की बातों को सुनकर न्याय देता है। इस प्रकार छोटे-छोटे ग्राम समुदाय में ग्रामप्रमुख

संरक्षक की भूमिका निभाता है ।[21]

सारांश

1. परम्परागत आदिवासी न्यायव्यवस्था के बारे में संक्षेप में विचार किया गया है । हमने देखा है कि विभिन्न आदिवासी जातियों में न्याय की व्यवस्था भिन्न-भिन्न है और प्राय: सभी आदिवासी जातियों में न्यायव्यवस्था में कई साम्य एवं भेद भी हैं । कुछ बातें सभी आदिवासियों की जातीय-न्यायिक संस्थाओं पर लागू होती हैं तो कुछ बातों में भिन्नता है । यदि एकरूपता की खोज करें तो समान बातों को इस रूप में गिना सकते हैं :

(क) पंच निर्णय ।

(ख) निर्णय में लोकतांत्रिक मूल्य को स्वीकार किया जाना ।

(ग) कुछ अपवादों को छोड़कर पंचायत-प्रमुख का वंशानुगत रूप से चुना जाना ।

(घ) परम्परा का निर्वाह ।

(ङ.) पंच-निर्णय का कठोरता से पालन करना ।

(च) अलिखित नियम ।

(छ) जादू-टोने में विश्वास ।

(ज) पंचायत का जाति तक सीमित होना ।

(झ) पंचायत का सघन कार्य-क्षेत्र विवाह, परिवार, यौन सम्बन्ध, सामाजिक (जातिगत) विवादों तक सीमित है ।

2. आदिवासी न्यायव्यवस्था का जो स्वरूप है, उससे स्पष्ट हो जाता है कि जीवन की कई समस्यायें उसकी सीमा में नहीं आती हैं । उनमें मुख्य ये हैं :

(क) महाजनों के साथ लेन-देन का मामला ।

(ख) दूसरी जातियों के साथ विवाद ।

(ग) जंगल के कर्मचारियों के साथ विवाद ।

(घ) पुलिस एवं अन्य कर्मचारियों के साथ विवाद ।

(ङ.) मारपीट के मामले ।

(च) जमीन के झगड़े आदि ।

उक्त मामले आदिवासी पंचायत द्वारा सामान्यतया नहीं निपटाये जाते हैं। इसके लिये उन्हें सरकारी अदालत में जाना पड़ता है। जातिगत पंचायत के प्रति उदासीनता के कारण यह भी देखने में आता है कि जो मामले परम्परागत रूप से जातीय पंचायत में जाते रहे हैं, वे भी अब सरकारी अदालत में जाने लगे हैं। इससे स्पष्ट है कि जातीय पंचायत का कार्य धीरे-धीरे कम होता जा रहा है।

3. आदिवासी पंचायत में दंड की जो व्यवस्था है, वह भी सामान्य से भिन्न है और उसे केवल उसी जाति के लोगों तक सीमित किया जा सकता है। जैसे आदिवासियों में डायन (witches) एवं ओझा-भगत की परम्परा है। इसमें शारीरिक कष्ट दिया जाता है। किसी व्यक्ति को, खासकर महिला को, डायन करार देने पर उसे शारीरिक कष्ट दिया जाता है।[22] कभी-कभी तो इस परिस्थिति में मौत भी हो जाती है। इसी प्रकार भूत-प्रेत के विश्वास में ओझा-भगत द्वारा कष्ट दूर करने के नाम पर दर्दनाक शारीरिक कष्ट दिया जाता है। अफ्रीका के आदिवासियों में डायन के सम्बन्ध में जो अध्ययन हुए हैं, उससे इस बात की पुष्टि होती है कि आदिम समाज में अन्धविश्वासों की जड़ें काफी गहरी हैं और प्रायः विश्व के सभी भागों में, इस समाज में, इसे देखा जा सकता है। प्रो० मार्क्स ग्लूकमैन ने अफ्रीकी समाज में डायन के भय एवं मुक्ति का अध्ययन प्रस्तुत किया है। वैसे अफ्रीकी आदिम समाज में इससे मुक्ति (anti-witchcraft movement) के लिये आन्दोलन भी चले हैं जिसका अच्छा प्रभाव पड़ा है।[23]

4. अपराधी अपना अपराध स्वीकार करे, या सत्य बात कहे, इसके लिये भी कई प्रकार के कठोर कदम उठाये जाते हैं—जैसे(क) पंच द्वारा अपराधी को गरम लोहा हाथ में लेने के लिये कहा जाता है। माना यह जाता है कि यदि वह निर्दोष है तो उसका हाथ नहीं जलेगा और दोषी होने पर जलेगा।

(ख) एक वर्तन में घी को खूब गरम किया जाता है और उसमें दो सिक्के डाले जाते हैं। अपराधी को उसमें हाथ डालकर उन्हें निकालने को कहा जाता है। माना जाता है की यदि वह निर्दोष है तो उसका हाथ नहीं जलेगा।[24] इस प्रकार की गलत मान्यताओं पर आधारित दण्ड के नियम को आज के समाज द्वारा स्वीकार नहीं किया जा सकता।

5. आदिवासी समाज में जिस प्रकार के विवादो के निपटारे की परम्परा-गत व्यवस्था मौजूद थी, वे तो लोकअदालत द्वारा निपटाये ही जाते हैं

लेकिन लोकअदालत ने अन्य विवादों को भी, यथा आदिवासियों एवं गैर आदिवासियों के आपसी विवाद, भूमि सम्बन्धी विवाद, फौजदारी कानून के अन्तर्गत आने वाले कई प्रकार के विवाद आदि सुलझाने की दिशा में प्रयास किया है। इस प्रकार उसने परम्परागत न्याय क्षेत्र का विस्तार किया है।

आदिवासी समाज की परम्परागत न्याय-व्यवस्थायें अन्धविश्वास, रूढ़ियों एवं अवैज्ञानिक गलत धारणाओं और मान्यताओं का बोल-बाला रहता था जिसके कारण निर्दोष व्यक्तियों यथा, तथाकथित डायन आदि को अमानुषिक यंत्रणायें एवं दंड भोगने पड़ते थे। लोकअदालत ने इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। उसने न केवल उनकी भ्रान्त धारणाओं को बदल कर उनके विवेक-भाव को जागृत करने का प्रयास किया है बल्कि शारीरिक दंड-प्रक्रिया को अस्वीकार करके दोषी व्यक्ति के प्रति मानवीय दृष्टिकोण अपनाये जाने की भावना सुदृढ़ की है। अन्धविश्वास या रूढ़िगत मान्यताओं के कारण किसी निर्दोष को दंड मिल जाये, यह लोकअदालत की कल्पना शक्ति के परे की बात है और इसका दर्शन लोकअदालत द्वारा दिये गये विभिन्न निर्णयों से हो सकता है।

संदर्भ

1. बी० मेलिनोवस्की, 'वन्य समाज में अपराध और प्रथा' (Crimes and Customs in Savage Society) पृष्ठ 3 म० प्र० हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल, 1971
2. उधृत, उपरोक्त, पृष्ठ 9
3. उपरोक्त पृष्ठ 10
4. स्टेफन फुच (Stephen fuchs), 'द एवोरिजनल ट्राइव्स ऑफ इंडिया,' पृष्ठ 152, मेकमिलन, नई दिल्ली, 1973
5. पी० सी० विश्वास, 'संथाल्स ऑफ द संथाल परगना,' पृष्ठ 149 अध्याय 6
6. अनिल कुमार दास, 'द मरन्स ऑफ सुन्दर वन,' पृष्ठ 227, 1963
7. हरिश्चन्द्र उप्रेती, 'भारतीय जनजातियां,' पृष्ठ 117-119, राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर—1970
8. वाल्टर जी ग्रीफियास, 'द कोल ट्राइव ऑफ सेन्ट्रल इंडिया,' पृष्ठ 48, द रायल

एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल कलकत्ता, 1946

9. डा० टी० बी० नायक, बारह भाई बिसवार, पृष्ठ 1, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1972

10. डा० टी० बी० नायक, बारह भाई बिसवार, पृ० 58, सन् 1972

11. उपरोक्त, पृष्ठ 68

12. उपरोक्त

13. डा० टी० बी० नायक, 'द भील्स: ए स्टडी,' पृष्ठ 223-27. भारतीय आदिम जाति सेवक संघ, दिल्ली, 1956

14. देखें, जी० एस० घुरिये, 'द शिड्यूल ट्राइब्स,' पृष्ठ 232

15. "The controlling forces of society are at work when among those savages, only in more rudimentary ways than among ourselves, public opinion is already a great power." E.D. Taylor, Authropology, Vol. (ii) (Thinkers Library, Watts & Co. London, 1949) page 136.

16. डा० टी० बी० नायक, उपरोक्त, पृष्ठ 53

17. उपरोक्त पृष्ठ 233

18. पी० जी० शाह, 'द दुबला ऑफ गुजरात,' पृष्ठ 46, भारतीय आदिम जाति सेवक संघ, दिल्ली 1958

19. पी० जी० शाह, उपरोक्त पृष्ठ 50

20. देखें, मार्क्स ग्लूक मैन, 'आर्डर एण्ड रिबेलियन इन ट्राइबल अफ्रीका,' पृष्ठ 151-52, द फ्री प्रेस ऑफ ग्लेनको, न्यूयार्क—1963

21. देखें, जे० सी० माइकेल, 'आर्डर एण्ड रिबेलियन इन ट्राइबल अफ्रीका,' पृष्ठ 152

22. देखें, टी० बी० नायक, उपरोक्त पृष्ठ 234-35

23. देखें, मार्क्स ग्लूकमैन, 'आर्डर एण्ड रिबेलियन इन ट्राइबल अफ्रिका,' पृष्ठ 143, द फ्री प्रेस ऑफ ग्लेनको, न्यूयार्क, 1963

24. देखें, टी० बी० नायक, उपरोक्त, पृष्ठ 234-35

4

ग्राम की सामाजिक संरचना

गांव और मुख्यालय

जिन दस गांवों को अध्ययन में शामिल किया गया है, वे सभी बड़ौदा जिले की दो तहसीलों में स्थित हैं। कुछ गांव छोटा उदयपुर तहसील के हैं तो कुछ नसवाड़ी तहसील के। विकास की दृष्टि से भी ये गांव इन्हीं दोनों प्रखण्डों से जुड़े हुए हैं। आनन्द निकेतन आश्रम, जहां लोकअदालत का केन्द्रीय कार्यालय है, लगभग मध्य में है। आश्रम से नसवाड़ी एवं छोटा उदयपुर दोनों स्थानों की दूरी प्रायः समान है। सरकारी कार्यालयों एवं आवागमन की दृष्टि से यह क्षेत्र एक समय अत्यन्त असुविधाजनक स्थिति में था लेकिन आजकल यह क्षेत्र सड़क मार्ग से जुड़ गया है। फिर भी अनेक गांवों की स्थिति इस दृष्टि से आज भी ज्यादा अच्छी नहीं मानी जा सकती। सरकारी कार्यालयों से सर्वेक्षित गांवों की दूरी नीचे लिखी तालिका में देख सकते हैं।

पंचायती राज की स्थापना के बाद ग्रामस्तर पर प्रशासन एवं विकास की एजेन्सी के रूप मे ग्राम पंचायतों की स्थापना हुई है लेकिन ग्राम पंचायत शासन की कोई विशेष अधिकार-प्राप्त इकाई नहीं है। वह प्रशासनिक व्यवस्था की सबसे निचली इकाई है जिससे ग्राम को कुछ मामूली सी सुविधायें उपलब्ध हो गई हैं और न्याय की दृष्टि से भी इसे सीमित अधिकार हैं तथा वह न्याय पंचों के माध्यम से गांव में होने वाले छोटे-छोटे विवादों को सुलझाती भी है। पंचायत कार्यालय से सभी सर्वेक्षित गांवों की दूरी 2 किलोमीटर से कम है। इसलिए इन गांवों के लोगों को पंचायती राज से सम्बन्धित सामान्य कार्यों के लिये दूर नहीं जाना पड़ता परन्तु इसके ऊपर की

तालिका संख्या—8

गांव से स्थानीय मुख्यालयों की दूरी

कि० मी०

क्र०	गांव का नाम	पुलिस	पंचायत	प्रखण्ड कार्यालय	जिला मुख्यालय
(1)	रंगपुर	17	0	30	125
(2)	मोटावांटा	16	0	29	124
(3)	खेरका	15	2	24	128
(4)	जाम्वा	13	2	26	122
(5)	—गजलावांट	17	0	30	119
(6)	कपराइली (रतनपुर)	14	1	28	143
(7)	गोयावांट	16	0	24	139
(8)	मंकोड़ी	14	0	23	129
(9)	मेखड़िया	14	2	27	123
(10)	विजली	12	2	25	121

इकाई के वारे में यह स्थिति नहीं है। विकास की प्रमुख इकाई प्रखण्ड कार्यालय है जिससे 4 गांवों की दूरी 21 से 25 किलोमीटर के बीच है और 6 गांवों की दूरी 26 से 30 किलोमीटर। पंचायती राज की मौजूदा व्यवस्था के अन्तर्गत प्रायः प्रत्येक आवश्यक कार्य के लिये प्रखण्ड कार्यालय तक जाना पड़ता है। इसलिए दूरी की दृष्टि से प्रखण्ड कार्यालय की स्थिति असुविधाजनक मान सकते हैं। गांव से इतनी दूर जाकर काम कराना इनके लिए कठिन हो जाता है और आर्थिक दृष्टि से कमजोर होने के कारण यह दूरी उनका आर्थिक बोझ बढ़ाती है। पुलिस चौकी से गांव की दूरी अपेक्षाकृत कम है। 6 गांवों से पुलिस चौकी की दूरी 11 से 15 किलोमीटर है जबकि 4 गांवों से 16 से 20 किलोमीटर के बीच। पुलिस चौकी काफी पुरानी है जबकि प्रखण्ड कार्यालय नियोजित अर्थव्यवस्था का परिणाम है। क्षेत्र में घूमने और चर्चा करने से इस बात की पुष्टि हुई कि इस क्षेत्र में आपसी झगड़ों की जो स्थिति थी, उसमें पुलिस की उपस्थिति आवश्यक मानी जाती थी। करीब दो दशक पूर्व यहां के आदिवासी छोटे-छोटे मामलों में भी लड़ाई झगड़ा कर बैठते थे और मार पीट आम बात थी। उस समय पुलिस चौकी ही प्रशासन की सबसे निकट की इकाई थी। जिला मुख्यालय

काफी दूर है। यद्यपि जिला मुख्यालय तक जाने के लिये बस की सामान्य सुविधा उपलब्ध है, फिर भी अधिक दूर होने के कारण सामान्य नागरिक अपनी आवश्यकता स्थानीय स्तर पर ही पूरा करता है और बहुत आवश्यक कार्य हाने पर ही जिला मुख्यालय तक जाता है।

आवागमन की सुविधा

अन्य सामान्य सुविधाओं के लिये गांव के लोगों को कितनी दूर जाना पड़ता है, यह जानना भी उपयोगी रहेगा। इस क्षेत्र का आर्थिक व्यवहार कुछ बाजारों तक ही सीमित है। आश्रम के आस-पास के गांवों के लिये मुख्य बाजार कवांट है। नसवाड़ी एवं छोटा उदयपुर से भी कुछ आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है। पिछले दो दशकों में सड़कों का पर्याप्त विकास हुआ है और स्थानीय सड़कें प्रायः सभी क्षेत्रों में अवस्थित हैं। गांव के लोगों की सीमित आवश्यकताओं को देखते हुए उन्हें आवागमन की दूरी कम खलती है। तालिका 9 (पृष्ठ 47) से विभिन्न उपयोगी केन्द्रों के गांव की दूरी की जानकारी उपलब्ध हो सकती है।

सुविधा की दृष्टि से चिकित्सा, तारघर एवं बिजली की सुविधा आज भी कई गांवों को उपलब्ध नहीं है। रेलवे स्टेशन भी दूर है, यद्यपि सड़क से आवागमन की सामान्य सुविधा सुलभ हो जाती है। माल की खरीद-बिक्री के लिये प्रायः सभी गांवों के लोगों को दूरस्थ बाजार में जाना पड़ता है। लोकअदालत की दूरी कुछ गांवों से कम है तो कुछ गांवों से ज्यादा। इससे स्पष्ट होता है कि लोकअदालत का कार्य क्षेत्र दूर के गांवों तक फैला हुआ है और दूरस्थ गांवों के लोग भी विवादों को सुलझाने के लिये यहां आते हैं।

भूमि और उसका वितरण

सर्वेक्षित गांवों में जमीन एवं उसके उपयोग की स्थिति से वहां की आर्थिक स्थिति का अन्दाज लगा सकते हैं। भूमि सम्बन्धी दो प्रकार के आंकड़े दिये जा रहे हैं जिनसे उस क्षेत्र की आर्थिक स्थिति का दर्शन हो सकता है— (1) गांव में कुल जमीन एवं उसका किस्म के अनुसार उपयोग, और (2) भूमि-वितरण की स्थिति। जितनी जमीन में सुविधापूर्वक खेती की जा सकती है उस पर खेती होती है और शेष भाग जंगलों के नीचे एवं बेकार रहता है। जनसंख्या की वृद्धि एवं कृषि का ज्ञान बढ़ने के साथ-साथ बंजर भूमि को भी खेती योग्य बनाने का सतत प्रयास किया जाता रहा है। सर्वेक्षित गांवों में कुल जमीन की स्थिति तालिका 10 (पृष्ठ 48) के अनुसार है।

तालिका संख्या–9

सम्पर्क एवं सुविधायें : विभिन्न स्थानों से गांव की दूरी

(दूरी, किलोमीटर में)

क्र०	गांव का नाम	सड़क	रेलवे स्टेशन	डाकघर	तारघर	बाजार	चिकित्सालय	परिवार नियोजन	आश्रम
(1)	रंगपुर	00	26	1	26	16	16	2	1
(2)	मोटावांटा	2	25	1	25	15	15	0	1
(3)	गैरका	00	28	2	28	14	12	3	1
(4)	जाम्बा	00	23	2	23	14	14	2	2
(5)	गजलावांट	1	22	0	22	16	00	7	8
(6)	कपराड्ली (रतनपुर)	8	17	7	17	14	12	12	36
(7)	गोयावांट	10	10	0	10	10	10	10	33
(8)	मंकोड़ी	2	30	2	30	13	13	2	2
(9)	मेवड़िया	00	22	2	22	15	15	2	3
(10)	बिजनी	2	29	3	29	12	12	0	3

तालिका संख्या–10

भूमि का प्रकार एवं उपयोग

क्र०	गांव का नाम	कृषि होती है	मकानों में प्रयुक्त	बंजर	कुल क्षेत्रफल एकड़ में
(1)	रंगपुर	600	15	239	854
(2)	मोटावांटा	753	20	138	911
(3)	खैरका	1000	50	92	1142
(4)	जाम्वा	800	10	205	1015
(5)	गजलावांट	195	5	00	200
(6)	कपराइली (रतनपुर)	280	10	65	345
(7)	गोयावांट	300	20	380	700
(8)	मंकोड़ी	1580	20	190	1790
(9)	मेखड़िया	652	5	00	657
(10)	विजली	332	5	10	347

अधिकांश गांवों में जितनी जमीन खेती लायक है, उस सब पर खेती होती है। बंजर भूमि की जो स्थिति है, उसमें सामान्यत: खेती होना संभव नहीं। विशेष योजना द्वारा उसे खेती योग्य बनाया जा सकता है। गजलावांट एवं मेखड़िया में तो जमीन काफी सीमित है और यहां बंजर भूमि भी नहीं है। कुछ गांवों में मकान काफी कम जमीन पर स्थित हैं।

गांव की आर्थिक स्थिति का अंदाज लगाने के लिये भूमि वितरण की स्थिति को भी देखना आवश्यक है। आदिवासी गांव में मकान के लिये जमीन सभी के पास है। लेकिन खेती की जमीन सब परिवारों के पास नहीं है। कुछ भूमिहीन परिवार भी हैं। आमतौर पर आदिवासी परिवार के पास कुछ न कुछ खेती की जमीन होती है। परन्तु फिर भी किन्हीं कारणों से कुछ परिवार भूमिहीन हो गये हैं। उनकी भूमिहीनता का कारण जानने के प्रयास में निम्न तथ्य सामने आये :—

(क) कर्ज में फंसने के कारण उनकी जमीन हाथ से निकल गयी और वे भूमिहीन की स्थिति में आ गये। जैसे विवाह, मृत्यु या अन्य कठिन

परिस्थितियों में कर्ज लेने पर जमीन दूसरे के हाथ में चली गयी।

(ख) कुछ परिवारों ने अपना मूल गांव छोड़कर दूसरे गांव में जाकर झोपड़ी बना ली। ऐसी स्थिति में नये गांव में वे भूमिहीन हो गये।

(ग) गैर आदिवासी लोग धन्धे की तलाश में आये और गांव में झोपड़ी बना ली। कुम्हार, खाती, नाई या अन्य मजदूर स्तर की जातियों के ऐसे लोग भूमिहीन की श्रेणी में स्वतः आ गये क्योंकि बाहर से आने के कारण उनके पास भूमि होना संभव नहीं था।

पृष्ठ 50 में तालिका 11 से विभिन्न गांवों में भूमि वितरण की स्थिति देखी जा सकती है।

इस क्षेत्र में भूमि वितरण की स्थिति को देखते हुए कृषि विकास की संभावना उत्साहवर्धक है। हालांकि परम्परागत कृषि-पद्धति पिछड़ी हुई एवं वर्षा पर निर्भर होने के कारण उत्पादन अत्यन्त कम है। फिर भी पिछले एक दशक में उन्नत कृषि के तरीकों के प्रसार के कारण यहां कृषि-विकास देखने में आया है। गांव के लोगों ने इस बात की पुष्टि भी की कि हमने पिछले दस वर्षों में कृषि की अच्छी पद्धति सीखी है और हमें सिचाई की सुविधा भी मिली है और इन दोनों सुविधाओं के कारण उत्पादन में दो से लेकर सात-आठ गुणा तक वृद्धि हुई है। पूरे क्षेत्र में भूमिगत (अन्डर ग्राउन्ड) पाइप लाइन देखने को मिलती है। उन्नत कृषि के प्रशिक्षण एवं सिचाई-सुविधा के विस्तार से कम जमीन में अधिक पैदावार करने का अवसर मिला है। कुछ वर्ष पूर्व गांवों में कुओं का अभाव था। लेकिन आज प्रायः सभी गांवों में सिचाई के लिये कुएं हैं। गजलावांट, रंगपुर, जाम्बा, मोटावांटा आदि गांवों में शक्तिशाली पम्पिंग सेट से गांवों के लोगों को सिचाई की सुविधा उपलब्ध कराई गई है और सिचाई की सामूहिक व्यवस्था का विकास हुआ है।

जाति और ग्रामसभा

सामाजिक व्यवस्था में जाति सबसे अधिक प्रभावी तत्व है। आदिवासी-प्रधान गांवों में अनेक आदिवासी उपजातियां हैं। इन उपजातियों की अपनी-अपनी परम्परायें हैं। इन परम्पराओं को ध्यान में रखते हुए ग्राम सभाओं ने अनेक विवादों को सुलझाया है। इन गांवों का जातीय ढांचा एवं विवाद सुलझाने की स्थिति तालिका-12 पृष्ठ 51 में दर्शाई गयी है।

इन गांवों की सामाजिक संरचना को देखते हुए यह कहना उचित होगा कि इन गांवों के मूल निवासी आदिवासी हैं। हरिजन या सवर्ण हिन्दू यहां

तालिका संख्या–11

गांव में भूमि स्वामित्व की स्थिति एवं कृषि साधन

क्र०	गांव का नाम	भूमिहीन	भूमि वितरण (परिवार संख्या)				कृषि साधन	
			5 एकड़ तक	6 से 10 एकड़ तक	11 से 20 एकड़ तक	20 एकड़ से अधिक	कुआं	पम्पिंग सेट
(1)	रंगपुर	3	54	17	5	00	12	4
(2)	मोटावांटा	1	59	56	9	00	13	6
(3)	खेरका	1	30	115	20	10	30	6
(4)	जाम्वा	1	84	10	5	00	25	7
(5)	गजलावांट	0	1	18	0	1	7	1
(6)	कपराइली (रतनपुर)	11	15	18	7	0	3	1
(7)	गोयावांट	0	89	40	14	2	11	8
(8)	मंकोड़ी	4	10	83	50	4	30	12
(9)	मेखड़िया	1	60	8	6	00	9	2
(10)	विजली	1	24	4	00	3	4	00

तालिका संख्या–12

जातीय स्थिति और ग्रामसभा द्वारा न्यायकार्य

क्र०	गांव का नाम	ग्राम सभा द्वारा निर्णित विवाद (सं०)			जाति विभाजन (पं०सं०)					
		विवाह सम्बन्धी	जमीन सम्बन्धी	अन्य	अनुसूचित जाति	आदिवासी			अन्य	योग
						राठवा	भील	नायका		
(1)	रंगपुर	5	3	4	2	65	00	10	2	79
(2)	मोटावांटा	00	00	00	4	87	17	27	00	135
(3)	गेरका	00	00	00	0	156	20	00	00	176
(4)	जाम्बा	7	3	2	0	88	00	12	00	100
(5)	गजलावांट	5	3	00	0	3	16	1	00	20
(6)	कपराइली (रतनपुर)	3	1	2	1	20	20	2	8	51
(7)	गोमाचाट	00	00	00	2	110	28	00	5	145
(8)	मंकोड़ी	13	12	00	1	120	30	00	00	151
(9)	मेनड़िया	00	00	00	0	60	00	15	00	75
(10)	बिजनी	00	00	00	0	3	00	29	00	32

बाद में आये हैं। आदिवासी जातियों में राठवा, भील एवं नायका हैं। वैसे ये सभी अदिवासी कहे जाते हैं, परन्तु ये उपजातियों में बटे हुए हैं और आपस में भेदभाव भी बरतते हैं। राठवा एवं भील अपने को उच्च मानते हैं। परन्तु यह भेदभाव उतना कठोर नहीं है जितना हिन्दू सवर्ण एवं हरिजन के बीच है। ग्राम स्तर पर सभी आदिवासी हैं और आदिवासी के नाते एक सूत्र में बंधे हुए हैं। जातीय संगठन का प्रभाव क्षेत्र, परम्परा, रीति-रिवाज एवं संस्कार तक सीमित है। विवाह, मृत्यु आदि संस्कारों में अन्तर है।

ग्रामसभा द्वारा विवादों को सुलझाने की जो स्थिति देखने में आई है उस पर से यह कहना चाहेंगे कि अभी तक यह बात जड़ नहीं पकड़ सकी या ऐसी व्यवस्था विकसित नही हो पायी है कि ग्रामस्तर पर लोकअदालत सुचारु रूप से चल सके। जो गांव उत्साही हैं उनमें तो ग्रामस्तर पर लोकअदालत का काम चलता पाया जाता है परन्तु सामान्य स्थिति में लोग आश्रम की लोकअदालत में ही जाने के अभ्यस्त हैं।

इन गांवों में लोगों का शैक्षणिक स्तर काफी गिरा हुआ है। आश्रम स्थापना के पूर्व तो इस क्षेत्र में साक्षर व्यक्ति नहीं के बराबर थे। शिक्षा का विस्तार एवं रुचि जागृत करने का श्रेय आश्रम को दिया जाना चाहिये। आरम्भ में प्रौढ़ शिक्षा का कार्यक्रम आश्रम की ओर से शुरू किया गया था। बाद मे क्षेत्र में विद्यालयों की स्थापना हुई। आज विभिन्न सर्वेक्षित गांवों में शिक्षित व्यक्तियों की संख्या इस प्रकार है :

तालिका संख्या—13

गांवों में शिक्षा का स्तर

क्रं०	गांव का नाम	अक्षरज्ञान	प्राथमिक शिक्षा	उ० प्राथमिक शिक्षा	माध्यमिक शिक्षा	कालेज शिक्षा	योग
(1)	रंगपुर	75	40	11	2	00	128
(2)	मोटाबांटा	170	125	9	3	1	308
(3)	खेरका	25	150	9	7	1	192
(4)	जाम्बा	38	35	00	0	00	73
(5)	गजलावांट	7	8	00	0	00	15
(6)	कपराइली (रतन-पुर)	25	25	00	4	00	54
(7)	गोयावांट	35	125	20	3	00	183
(8)	मंकोड़ी	30	124	26	7	00	187
(9)	मेखड़िया	7	30	00	3	00	40
(10)	बिजली	10	50	00	0	1	61

शिक्षा के प्रति गांव के लोगों की रूचि आमतौर पर कम है। ये बच्चों की पढ़ाई में रूचि नहीं दिखाते और उनके बच्चे घर के काम-काज में लगे रहते हैं। यही कारण है कि उच्च शिक्षा प्राप्त लोगों की संख्या अत्यन्त कम है। आश्रम की ओर से एक विद्यालय चलता है, जहां आस-पड़ोस के गांवों के विद्यार्थियों के लिये स्वावलम्बी शिक्षा की व्यवस्था है। इसे 'जीवनशाला'[1] नाम दिया गया है। यहां कम उम्र के बच्चे आते हैं और उन्हें सामान्य शिक्षा के साथ-साथ कृषि, तकनीकी तथा अन्य जीवनोपयोगी विषयों का शिक्षण दिया जाता है। यहां से निकले हुए विद्यार्थी घर पर जाकर अच्छी खेती करते हैं और गांव की तकनीकी आवश्यकता की भी पूर्ति करते हैं। आश्रम की जीवनशाला शिक्षा के क्षेत्र में एक आकर्षक प्रयोग है जहां स्वावलम्बी शिक्षण की प्रेरणा मिलती है।

लोकअदालत और ग्राम पंचायत

लोकअदालत और ग्राम पंचायत के बीच तनाव देखने में नहीं आया। ग्रामदानी गांव और न्याय पंचायतों के बीच भी तनाव की स्थिति नहीं है। सैद्धान्तिक दृष्टि से ग्रामदान का विचार व्यापक है और इसमें स्वशासन की भावना निहित है। इस कारण ग्रामदानी गांव के विवाद न्याय पंचायत में न जाने की स्थिति मे किसी प्रकार के तनाव की बात नहीं होती। इसी प्रकार सामान्य गांवों से भी जब विवाद न्यायपंचायत में न जाकर लोकअदालत में जाता है तो तनाव की संभावना नहीं रहती क्योंकि लोकअदालत में विवाद स्वेच्छा से लाया जाता है। लोकअदालत, ग्रामदानी गांव और न्यायपंचायत के बीच सद्भाव रखने वाले निम्न तत्व देखने में आये :

(1) कुशल नेतृत्व—श्री हरिवल्लभ परीख के नेतृत्व के कारण उक्त संस्थाओं में सद्भाव कायम रहता है।

(2) लक्ष्य की एकता—लोकअदालत, न्यायपंचायत या ग्रामदानी गांवों की समस्यायें, इन सबके लक्ष्यों में विरोधाभास नहीं हैं। हां, उनमें सैद्धान्तिक एवं कार्य पक्ष में कमी हो सकती है।

(3) जैसा ऊपर कहा गया है लोकअदालत या ग्रामदानी गांवों की ग्राम सभायें अन्य संस्थाओं (ग्राम पंचायत, न्यायपंचायत) के कार्य में हस्तक्षेप नहीं करतीं बल्कि उनके साथ सहयोगात्मक सम्बन्ध रखने का प्रयास करती हैं।

सारांश

(क) लोकअदालत गांवों में रहने वाले विभिन्न जातियों के लोगों को एक सूत्र में आबद्ध करने के लिए प्रयत्नशील रही है। आदिवासियों एवं गैर आदिवासियों—सभी को लोकअदालत में जाने एवं वहां के अनुभवों से एकता की सीख मिलती है। गांवों के लोग यह महसूस करने लगे हैं कि ग्राम-एकता कायम करने में लोकअदालत का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

(ख) विवादों को सुलझाने में जातीय पंचायत की परम्परागत बुराइयों को कम करने में लोकअदालत का प्रभाव उल्लेखनीय है। बातचीत के दौरान प्रायः सभी गांवों के लोगों ने स्वीकार किया कि उन्हें अन्धविश्वास, भूत-प्रेत एवं अन्य गलत परम्पराओं को समाप्त करने की प्रेरणा लोकअदालत से मिली है और अब भी बराबर मिल रही है।

(ग) जातीय न्याय-व्यवस्था का कार्य-क्षेत्र सीमित था और कोर्ट में जाने की प्रवृत्ति में वृद्धि होने के कारण जातीय पंचायत का महत्त्व उत्तरोत्तर कम होता जा रहा था। लोकअदालत ने इस विचार को मजबूत किया है कि स्थानीय स्तर पर विवादों को सुलझाना अधिक लाभकर है। यही कारण है कि गांवों के लोग जातीय सीमा से हटकर लोकअदालत एवं ग्राम सभाओं के माध्यम से विवादों को सुलझाने का प्रयास करने लगे हैं।

(घ) गजलावांट, रंगपुर, जाम्वा आदि गांवों के लोग इस बात का विशेष प्रयास करते पाये गये कि आसपास के गांवों के लोग भी अपने विवाद लोकअदालत के माध्यम से सुलझायें तो उनके लिए ज्यादा हितकर होगा। ऐसे अनेक उदाहरण मिले हैं जिनमें गजलावांट, रंगपुर, जाम्वा आदि गांव के लोगों ने पास के गांव के लोगों के विवाद को सुलझाने में अपनी ओर से हर संभव मदद की[2] और जो विवाद वे नहीं सुलझा सके, उन्हें लोकअदालत के सहयोग से सुलझाने का प्रयास किया।

(च) ग्रामवासियों को महाजनों, पुलिस या अन्य सरकारी कर्मचारियों एवं बड़े किसानों आदि के शोषण एवं अन्याय का मुकाबला करने की प्रेरणा लोकअदालत से मिलती है और उन्हें अपनी संगठन-शक्ति का भान करने का अवसर मिला है।[3]

संदर्भ

1. देखें, 'स्वप्न हुए साकार', पृ० सं० 7-9, सोसाइटी फार डेवलपिंग ग्रामदान, नई दिल्ली—1972 ।
2. देखें, श्री हरिवल्लभ परीख, 'क्रान्ति का अरुणोदय,' सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी 1973 ।
3. देखें, श्री हरिवल्लभ परीख की उक्त पुस्तक एवं प्रस्तुत अध्ययन का परिशिष्ट ।

5

लोकअदालत का संगठन

संगठन

लोकअदालत का विकास क्रमशः हुआ है, इस कारण इसके संगठनात्मक स्वरूप को बने-बनाये ढांचे में बिठाना सम्भव नहीं है। लोकअदालत के प्रारम्भकर्ता एवं उसमें लगे लोगों ने भी उसके संगठनात्मक स्वरूप पर कम ध्यान दिया है। प्रारम्भ में तो यह पूर्णतया विश्वास पर आधारित मौखिक न्याय व्यवस्था थी और संगठन के नाम पर प्रायः कुछ भी नहीं था। जातीय पंचायत से भिन्न होने के कारण इसमें जातीय पंचायत जैसी परम्परागत व्यवस्था का भी अभाव था। प्रारम्भ में श्री हरिवल्लभ परीख स्वयं ही सारा काम देखते थे एवं संगठन उन तक ही सीमित था। अतः संगठन के बारे में विस्तार से कुछ कहना अभी भी संभव नहीं हो पा रहा है। फिर भी अध्ययन के दौरान जो तथ्य सामने आये हैं, उन पर हम इस अध्याय में विचार करना चाहेंगे।

लोकअदालत के संगठन के सम्बन्ध में कालक्रम के अनुसार विचार करना उपयोगी होगा क्योंकि संगठन में स्पष्टता एवं मजबूती भी उसी के अनुसार देखने में आयी है। लोकअदालत के संगठन को इस क्रम में देख सकते हैं :—

1. चल लोकअदालत (Mobile Lok Adalat)
2. केन्द्रीय लोकअदालत का विकास
3. लोकअदालत का मौजूदा संगठन

जैसा कि ऊपर बताया गया है, इसके संगठनात्मक स्वरूप के बारे में निश्चित ढांचा प्रस्तुत करना संभव नहीं है और इस बारे में जानकारी का भी अभाव रहा है इसलिए इसके संगठनात्मक पक्ष पर विचार करते समय प्रत्येक अंग पर उसके तीन मुद्दों को स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे :

1. संगठन का रूप एवं पदाधिकारी
2. कार्य एवं अधिकार क्षेत्र

(1) प्रारम्भिक संगठन—चल लोकअदालत (Mobile Lok Adalat)

लोकअदालत की प्रारम्भिक अवस्था में संगठन का खास स्वरूप नहीं था। सन् 1950 से 55 तक यह कार्य व्यक्तिगत स्तर पर होता रहा। इस में लोकअदालत का कार्य अन्य कार्यों से जुड़ा हुआ था। जैसा कि पहले उल्लेख कर चुके हैं श्री हरिवल्लभ परीख इस क्षेत्र में गांधीवादी विचार के अनुसार समाज-सेवा के कार्य में लगे हुए थे और प्रारम्भिक दिनों में ही उनके सामने मुख्य सवाल यहां के विवादों को सुलझाने का आ गया था। उन दिनों गांव-गांव में व्यक्तिगत और पारिवारिक विवादों के साथ महाजन, पुलिस एवं अन्य कर्मचारियों के सम्बन्धित विवाद भी उनके सामने आते थे। क्षेत्र के लोगों की आर्थिक स्थिति सुधारने एवं उनमें पारस्परिक सौहार्द पैदा करने की दृष्टि से उन विवादों को सुलझाना जरूरी था। उपरोक्त अवधि में व्यक्तिगत एवं सामूहिक पदयात्राओं का कार्यक्रम व्यापक रूप से चला जिससे सम्पर्क एवं कार्य की भूमिका बनी। जहां जो विवाद उनके सामने स्वभावत: आये, वे उन्हें सुलझाने का प्रयास करने लगे और यही प्रयास धीरे-धीरे लोकअदालत की प्रारम्भिक भूमिका के रूप में मूर्त्तमान हो गये। इस प्रारम्भिक अवस्था के संगठन का केन्द्रबिन्दु व्यक्ति ही था।

उस समय विवाद सुलझाने में जो प्रक्रिया अपनायी जाती थी, उसको दो भागों में बांट सकते हैं :–

(क) श्री हरिवल्लभ परीख द्वारा विवाद सुलझाने की स्थिति में संगठन।

(ख) आश्रम के अन्य व्यक्तियों द्वारा पदयात्रा के दौरान विवाद सुलझाने में संगठनात्मक स्वरूप।

जिस गांव में श्री हरिवल्लभ परीख मोजूद रहते थे, वहां लोकअदालत के संगठन के केन्द्रबिन्दु वे स्वयं होते थे। इस प्रकार की चल लोकअदालत (Mobile Lok Adalat) में उन्हें एक गांव में एक से अधिक दिनों तक भी रुकना पड़ता था। समय विवाद की संख्या एवं प्रकृति (number and nature of cases) पर निर्भर करता था। इनकी उपस्थिति में संगठनात्मक स्वरूप सामान्यतया इस प्रकार रहता था—(क) अध्यक्ष

(ख) पंच (ग) उपस्थित समुदाय। विवाद प्रस्तुतकर्त्ता एवं दूसरा पक्ष अपनी बात रखता और अध्यक्ष श्री हरिवल्लभ परीख इस बारे में पूरी जानकारी प्राप्त करते। पंच की नियुक्ति भी उतनी व्यवस्थित रूप से नहीं होती थी जितनी आज होती है। सामान्यत: गांव के प्रमुख लोग पंच का काम कर देते थे और पंच की राय पर अध्यक्ष विवाद सुलझा देते थे। उपस्थित जनसमुदाय की राय भी ली जाती थी लेकिन कुल मिलाकर स्थिति यह थी कि अध्यक्ष सारा काम स्वयं की जिम्मेदारी पर करके विवादग्रस्त पक्षों में समझौता करा देता था। उस समय विवादों का किसी प्रकार का विवरण नहीं रखा जाता था और न यह संभव ही था। यही कारण है कि उन दिनों के निर्णित किये गये विवादों की प्रामाणिक जानकारी प्राप्त नहीं है।

आश्रम के अन्य व्यक्ति जब गांवों में जाते थे तो वे भी विवादों को सुलझाने का प्रयास करते थे। उनकी नीति भी विवाद सुलझाने में समझौते का मार्ग अपनाने तक ही सीमित रहती थी। संगठनात्मक दृष्टि से थोड़ी भिन्नता यह रहती थी कि यहां अध्यक्ष उतना प्रभावी नहीं होता था जितना पहली स्थिति में होता था। यहां गांव के प्रमुख को इस काम में पहल करने का प्रयास करना पड़ता था और आश्रम के कार्यकर्त्ता इस काम में मदद करते थे। यहां यह स्वीकार करना चाहिये कि इस स्थिति में सामूहिक निर्णय की प्रक्रिया अधिक मजबूत थी। ऐसे विवाद, जो उस समय नहीं सुलझ पाते थे, उन पर विचार करने के लिये आश्रम में निश्चित तारीख को उन्हें सुलझाने का प्रयास किया जाता था और तब अध्यक्ष की भूमिका पुन: उतनी ही प्रभावी एवं महत्त्वपूर्ण बन जाती थी।

लोकअदालत के प्रारम्भिक संगठनात्मक स्वरूप की प्रमुख बातों के बारे में कह सकते हैं कि (क) इस अवस्था में संगठन व्यक्ति-प्रधान था। (ख) परम्परागत जातीय पंच को खास महत्त्व प्राप्त था। (ग) सामूहिक निर्णय पर जोर दिया जाता था। (घ) विवाद सम्बन्धी लिखित विवरण का अभाव था। (ङ) अनिर्णित विवाद सुलझाने के लिये आश्रम में बैठकें होती थीं।

(2) संगठन का विकास

घूम-घूमकर विवादों को सुलझाने का यह क्रम चलता रहा और विवादों की संख्या को देखते हुए यह एक व्यापक कार्य हो गया। प्रारम्भ से ही इस बात पर बल दिया जाता रहा कि ऐसी शक्ति विकसित हो जिसके आधार पर गांव के विवाद गांव में ही सुलझाये जायं। जब आश्रम के कार्य का विस्तार हुआ और काम का ढांचा भी बदला तो विवादों को सुलझाने के लिए

आश्रम में आने वालों की संख्या भी बढ़ने लगी। स्वभावत: लोकअदालत की बैठकें गांवों के स्थान पर आश्रम में होने लगीं। इस दौरान सतत पद-यात्रा का क्रम भी कम हुआ। इन दिनों लोकअदालत सम्बन्धी व्यवस्था में एक प्रमुख परिवर्तन और भी हुआ और वह यह कि पड़ोस के लोग अपने विवाद आश्रम में लाने लगे और विवादों की संख्या बढ़ने के कारण यह आवश्यक हो गया कि लोकअदालत के काम को थोड़ा बहुत व्यवस्थित किया जाय। सन् 1955 से 65 की अवधि में लोकअदालत का केन्द्र मजबूत हुआ और संगठनात्मक स्वरूप भी थोड़ा निखरा। लेकिन फिर भी संगठन को किसी बने-बनाये ढांचे में नहीं बांधा गया, बल्कि इसका खुला रूप ही कायम रहा। लोग विवाद लाते और अध्यक्ष द्वारा उन विवादों के बारे में प्रारम्भिक जानकारी प्राप्त करके उन्हें लोकअदालत की अगली बैठक की तारीख बता दी जाती एवं निश्चित तारीख को विवाद सुलझाने का प्रयास किया जाता। इस सन्दर्भ वर्ष में संगठनात्मक स्वरूप इस प्रकार से रहा :

(क) अध्यक्ष विवादों की प्रारम्भिक जानकारी प्राप्त करके बैठक की तारीख बताता था।

(ख) विवाद सम्बन्धी सामान्य जानकारी नोट कर ली जाती थी। यह कार्य आश्रम का कोई कार्यकर्ता या अध्यक्ष स्वयं करता था।

(ग) विवाद की सुनवाई के समय प्रमुख भूमिका अध्यक्ष की होती थी। वह स्वयं दोनों पक्षों की बात सुनता था और उपस्थित लोगों की राय जानकर निर्णय देता था तथा आमतौर पर उस निर्णय को स्वीकार कर लिया जाता था।

(घ) विवाद को गांव के लोग स्वयं सुलझायें, इस दिशा में प्रयास सन् 1960 के आस-पास ही आरम्भ किया गया और सक्रिय एवं ग्रामदानी गांवों में ग्राम सभाओं की स्थापना की गयी। हर ग्राम सभा का एक अध्यक्ष होता था, जो ग्रामस्तर पर लोकअदालत की बैठक बुलाता, विवादों को सुलझाने के लिये पंच की नियुक्ति की जाती एवं पंचों की राय से ग्राम सभा द्वारा विवाद सुलझाने का प्रयास किया जाता था।

इस अवधि में लोकअदालत की स्थिति यह रही—

केन्द्रीय लोकअदालत का संगठन मजबूत हुआ—

(क) विवादों की जानकारी संक्षेप में रखे जाने की प्रक्रिया का प्रारम्भ हुआ ।

(ख) अध्यक्ष का प्रभाव अधिक मजबूत हुआ ।

(ग) ग्रामस्तर पर लोकअदालत का काम फैलना प्रारम्भ हुआ ।

(3) **मौजूदा संगठन**

इस समय लोकअदालत का दो स्तर का संगठनात्मक स्वरूप है :

केन्द्रीय लोकअदालत और

ग्राम लोकअदालत

केन्द्रीय लोकअदालत

केन्द्रीय लोकअदालत के निम्नलिखित अंग हैं :

(क) **अध्यक्ष**—केन्द्रीय लोकअदालत के स्थायी अध्यक्ष श्री हरिवल्लभ परीख हैं। प्रायः सभी बैठकों में वे उपस्थित रहते हैं। लोकअदालत की बैठकों में इनके नेतृत्व का प्रभाव देखा जा सकता है। अध्यक्ष को व्यापक अधिकार प्राप्त हैं। उनका यह प्रयास रहता है कि लोकअदालत का कार्य स्थानीय लोग स्वयं करें और यही कारण है कि वे अपने आप को मार्ग दर्शन तक ही सीमित रखने का प्रयास करते हैं। फिर भी निर्णय प्रक्रिया में इनकी भूमिका प्रमुख रहती है।[1] अध्यक्ष को निम्न कार्य करते देखा गया :

(अ) विवादों को स्पष्ट करना ।

(आ) सत्य जानकारी प्राप्त करने में सक्रिय रूप में मदद करना ।

(इ) निर्णय के समय आयी गुत्थियां सुलझाना ।

(ई) करार खत तैयार करना ।

(उ) अन्य आवश्यक मार्गदर्शन करना ।

इसके अतिरिक्त विवाद की प्रारम्भिक कार्यवाही में भी अध्यक्ष मदद करता है। आमतौर पर विवाद के रजिस्ट्रेशन के समय वह स्वयं विवाद की सामान्य जानकारी प्राप्त करता है।

(ख) **मंत्री**—लोकअदालत का एक मंत्री होता है। यह मंत्री आश्रम का स्थायी कार्यकर्त्ता होता है। अभी तक जो व्यक्ति मंत्री के रूप में कार्य करते रहे हैं, वे आश्रम के स्थानीय कार्यकर्त्ता नहीं हैं। वे गैर आदिवासी भी हैं। इस प्रकार अध्यक्ष एवं मंत्री दोनों गैर आदिवासी रहे हैं, परन्तु यहां के

लोगों का इन पर पूरा विश्वास देखा गया है।

मंत्री आमतौर पर निम्नलिखित कार्य करता है :—

(अ) विवाद का रजिस्ट्रेशन।

(आ) विवाद की सामान्य जानकारी प्राप्त कर उसे लिखना।

(इ) पत्र-व्यवहार।

(ई) लोकअदालत के कार्यालय को देखना।

(उ) बैठक के समय विवाद को प्रस्तुत करना तथा कार्य में अध्यक्ष की मदद करना।

इसके अतिरिक्त मंत्री अध्यक्ष की अनुपस्थिति में लोकअदालत की अन्य कार्यवाही भी देखता है।[2] जैसा कि डा० उपेन्द्र बक्षी ने कहा है, "अध्यक्ष की अनुपस्थिति में वह लोकअदालत में आये कुछ विवादों को सुलझाता है"। लेकिन हम यहां यह भी कहना चाहेंगे कि अध्यक्ष की अनुपस्थित में लोकअदालत के काम में लोग कठिनाई महसूस करते हैं।

मंत्री आश्रम का कार्यकर्ता होने के कारण उसका आर्थिक भार आश्रम पर होता है। कार्यालय सम्बन्धी अन्य खर्च भी आश्रम वहन करता है। लोकअदालत में किसी प्रकार की फीस नहीं है। संगठन एवं व्यवस्था सम्बन्धी सभी खर्च आश्रम ही उठाता है।

(ग) जूरी —विवाद को सुलझाने में जूरी की भूमिका प्रमुख है। जूरी की व्यवस्था 1966 से प्रारम्भ हुई। इस व्यवस्था के विकास के पीछे मूल भावना यह रही कि स्थानीय लोग स्वयं इस काम को करें ताकि इनसे कार्य में स्थायित्व आये। वर्तमान व्यवस्था में प्रत्येक विवाद के लिये अलग-अलग जूरी नियुक्त किये जाते है। दोनों पक्षों की ओर से जूरी के लिये नाम मांगे जाते हैं और सभा की राय से अध्यक्ष द्वारा जूरी की नियुक्ति की जाती है।

जूरी का मुख्य कार्य विवाद के विविध पक्षों पर विचार करके निर्णय देना है। जूरी की संख्या आमतौर पर चार—दोनों पक्षों से दो-दो होती है। जूरी सभा से अलग जाकर दोनों पक्षों की बात सुनते हैं और पारस्परिक विचार-विमर्श करके अपना निर्णय देते हैं। विवाद सुलझाने के बाद करारखत पर जूरी के हस्ताक्षर होते हैं। करारखत पर उनके अतिरिक्त दोनों पक्षों एवं अध्यक्ष के भी हस्ताक्षर होते हैं। जूरी की नैतिक जिम्मेदारी यह भी देखी गयी कि वह इस बात का भी प्रयास करें कि दोनों पक्ष केवल निर्णय को

स्वीकार ही नहीं करें बल्कि उस पर अमल भी करें।

जूरी को किसी प्रकार का आनरेरियम नहीं दिया जाता। यह पद पूर्णतया आनरेरी है। जूरी की योग्यता के बारे में कोई खास नियम नहीं है पर वह स्वस्थ मन एवं मस्तिष्क रखने वाला जिम्मेदार नागरिक हो, इस बात का ध्यान अवश्य रखा जाता है।

कार्यालय में उपलब्ध रजिस्टरों एवं फाइलों आदि से जो जानकारी, आंकड़े एवं सामग्री प्राप्त हो सकी, उसके आधार पर यह कहना चाहेंगे कि पहले विवाद सम्बन्धी नाम-मात्र की जानकारी रखी जाती थी। यह नहीं कहा जा सकता कि अब भी कार्यालय पूर्णत: व्यवस्थित है और सभी विवरण पर्याप्त मात्रा में एवं सन्तोषजनक ढंग से रखे जाते हैं। कार्यालय पक्ष तो इतना कमजोर देखने में आया कि निर्णित विवादों के पूरे करारखत भी प्राप्त नहीं हो सके। पिछले चार वर्षों के उपलब्ध करारखतों की स्थिति नीचे की तालिका में देख सकते हैं :

तालिका संख्या–14

विवाद की सुनवाई एवं करारखत की स्थिति

वर्ष	लोकअदालत की बैठकों की संख्या	सुनवाई हेतु प्रस्तुत विवाद (संख्या)	प्राप्त करारखत (संख्या)	प्राप्त करारखतों का प्रतिशत
1972	13	577	33	5—72
1973*	15	574	21	3—66
1974	17	340	39	11—47
1975 (नवम्बर तक)	15	324	57	17—59

* करारखतों की पूरी फाइल नहीं प्राप्त हो सकी।

उपरोक्त तालिका के आधार पर यह तो कह सकते हैं कि पहले से अधिक संख्या में करारखत रखे जाते हैं और लोकअदालत की बैठकों की संख्या के बारे में भी जानकारी मिलती है। लेकिन जो विवाद निर्णयार्थ प्रस्तुत किये गये और जिनके करारखत मौजूद हैं, उनमें काफी फर्क है। इस फर्क के बारे में निम्न बातें सामने आयीं :

(क) कार्यालय व्यवस्थित न होने के कारण पूरे करारखत नहीं रखे जा सके।

कई विवादों के निर्णय लिखित रूप में न किये जाकर मौखिक रूप से ही दे दिये गये। जैसे पति-पत्नी के बीच मतभेद के मामलों में दोनों पक्ष की सहमति हो जाने पर निर्णय में लेने-देने सम्बन्धी खास बात न होने पर दोनों पक्ष गुड़ वितरण के बाद आगे से प्रेम पूर्वक रहने की प्रतिज्ञा करके घर चले जाते पाये गये। इस प्रकार के सामान्य विवादों के निर्णय के करारखत नहीं रखे गये। इसी प्रकार लेन-देन सम्बन्धी सामान्य विवाद भी मौखिक रूप से ही सुलझा दिये गये उनके कोई विवरण उपलब्ध नहीं हुए।

(ख) यह भी देखने में आया कि विवाद लोकग्रदालत में पंजीकृत कराया गया परन्तु एक पक्ष के नहीं उपस्थित होने या अन्य कारणों से उसका निर्णय लोकग्रदालत में न होकर ग्राम स्तर पर या आपसी समझौते द्वारा हो गया। इस स्थिति में भी करारखत नहीं रखा जाता। इन्हीं कारणों से करारखतों की संख्या काफी कम है। करारखत की उक्त परिस्थिति के कारण जानकारी-प्राप्ति की यह कठिनाई भी आयी कि इससे यह स्पष्ट नहीं हो सका कि लोक-ग्रदालत की बैठक में प्रस्तुत विवादो में से वास्तव में कितने विवादों का निर्णय हुआ। सन् 1971 की फाइल में यह स्पष्ट जिक्र है कि इस वर्ष कुल 17 बैठकें हुई जिसमें 98 विवादों का निर्णय हुआ परन्तु उक्त फाइल मे भी केवल 35 करारखत मौजूद मिले। शेष निर्णयों के करारखत नहीं प्राप्त हो सके।

(ग) उक्त तथ्यों के आधार पर हम यह कहना चाहेंगे कि लोकग्रदालत के संगठन पक्ष को अधिक मजबूत करने की आवश्यकता है ताकि विवाद एवं उसके निर्णय सम्बन्धी पूरी जानकारी उपलब्ध रह सके।

(घ) सभा—लोकग्रदालत की बैठक के समय उपस्थित जन समुदाय सभा का रूप ग्रहण कर लेते हैं। यह खुली ग्रदालत है इस कारण सभा में उपस्थिति के लिये किसी प्रकार का बन्धन नहीं है। सभा का हर सदस्य निर्णय में मदद करने का अधिकार रखता है और सभा में उपस्थित सदस्यों में से ही जूरी भी नियुक्त होते हैं।

(च) कागजात—लोकग्रदालत कार्यालय मे नीचे लिखा विवरण रखा जाता है :—

(अ) रजिस्ट्रेशन रजिस्टर

(आ) विवाद-विवरण फाइल

(इ) करारखत फाइल

(ई) पत्र-व्यवहार फाइल

(उ) रजिस्ट्रेशन फार्म

(ऊ) प्रतिवादी के लिये निमंत्रण पत्र

ग्राम लोकअदालत

(क) लोकअदालत के कार्य को स्थायित्व देने की दृष्टि से यह आवश्यक है कि उसे ग्राम स्तर पर विकसित किया जाय और हर गांव में 'स्वनिर्णय' की क्षमता का विकास हो। लोकअदालत किसी प्रकार का प्रतिद्वन्द्वी संगठन नहीं है।

ग्रामस्तर पर लोकअदालत के संगठनात्मक स्वरूप का विकास अभी प्रारम्भिक स्थिति में देखने को मिलता है। इस संगठन में भी एक अध्यक्ष होता है जो ग्राम लोकअदालत की बैठक की अध्यक्षता करता है। आमतौर पर ग्राम का प्रमुख व्यक्ति जो ग्रामसभा का भी अध्यक्ष होता है, इसका अध्यक्ष होता है और वह विवादों को सुलझाने में हर संभव मदद करता है।

(ख) मंत्री—ग्रामसभा का मंत्री ग्राम लोकअदालतका काम देखता है। विवाद से संबंधित कागजात रखने की जिम्मेदारी उसकी होती है।

(ग) पंच—विवाद को सुलझाने के लिये उसी प्रकार पंच नियुक्ति की व्यवस्था होती है जैसी कि केन्द्रीय लोकअदालत में है। कई ग्राम सभाओं में स्थायी पंचों की भी व्यवस्था है जो विवाद सुलझाने में मदद करते हैं। पंचों का कार्य विवाद के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त करके निर्णय देना एवं उसकी पूर्ति का प्रयास करना होता है।

(घ). सभा—गांव के सभी बालिग स्त्री-पुरुष ग्राम सभा के सदस्य होते हैं। ग्राम स्तर की सभा प्राय: वे ही कार्य करती है जो कि केन्द्रीय लोकअदालत की सभा करती है।

विवाद का केन्द्रीय लोकअदालत में भेजा जाना

यदि ग्राम लोकअदालत में विवाद नहीं सुलझ पाता तो (अ) ग्राम लोकअदालत अपनी ओर से विवाद को केन्द्रीय लोकअदालत में भेज देती है या (आ) वादी-प्रतिवादी में से कोई एक या दोनों ही स्वयं विवाद को केन्द्रीय लोकअदालत में ले जाते हैं।

सारांश

(क) केन्द्रीय लोकअदालत आनन्द निकेतन आश्रम में चलती है।

(ख) केन्द्रीय लोकअदालत का प्रमुख अध्यक्ष होता है। अध्यक्ष सामान्यतया मार्गदर्शन का काम करता है और विवाद सुलझाने में इसकी प्रमुख भूमिका होती है। सत्य तक पहुंचने एवं गुत्थियों को सुलझाने में भी इसकी प्रमुख भूमिका रहती है।

(ग) एक मंत्री होता है जो अध्यक्ष की मदद करता है। मंत्री कार्यालय को संभालने के साथ-साथ विवाद सम्बन्धी जानकारी भी रखता है।

(घ) विवादों को सुलझाने के लिये प्रत्येक विवाद के लिये जूरी की नियुक्ति होती है। वादी-प्रतिवादी द्वारा दिये गये नामों में से चार व्यक्तियों को, अध्यक्ष सभा की सहमति से जूरी नियुक्त करता है। जूरी दोनों पक्षों की राय से, विवाद सुलझाने का प्रयास करता है एवं अपना निर्णय देता है। सभा में उपस्थित कोई भी संतुलित मानस का व्यक्ति जूरी के रूप में काम कर सकता है।

(च) लोकअदालत में काम करने वाले सभी व्यक्ति आनरेरी रूप में काम करते हैं। अध्यक्ष एवं मंत्री का आर्थिक संबन्ध आश्रम से रहता है।

(छ) ग्राम लोकअदालत का विकास करके लोकअदालत के कार्य को स्थायित्व देने एवं उसे विकेन्द्रित करने का प्रयास किया जा रहा है। ग्राम लोकअदालत में अध्यक्ष, मंत्री एवं पंचगण इस काम को संभालते हैं। कार्यपद्धति केन्द्रीय लोकअदालत से मिलती जुलती है।

(ज) लोकअदालत के संगठन का कोई बना बनाया ढांचा नहीं है। इसका विकास क्रमशः हुआ है और इस प्रकार इसमे परम्परा का प्रमुख स्थान है।

(झ) लोकअदालत को तभी स्थायित्व प्राप्त हो सकता है जब कि उसका संस्थात्मक ढांचा मजबूत हो। मौजूदा संगठनात्मक ढांचे को देखते हुए यह स्थिति देखने में आयी कि संगठन में एक व्यक्ति के नेतृत्व का प्रभुत्व है। इस बात की पुष्टि साक्षात्कार के दौरान भी हुई। ग्रामस्तर पर सुलझाये जाने वाले विवादों की संख्या को देखने पर भी यह बात प्रगट होती है, हालांकि उत्तरदाताओं ने यह संभावना व्यक्त की है कि मौजूदा अध्यक्ष की अनुपस्थिति में भी लोकअदालत सफलतापूर्वक चल सकेगी, परन्तु यह संभावना ही है—वस्तुस्थिति

नहीं। इन बातों पर विचार करने पर संगठनात्मक पक्ष पर एक व्यक्ति के नेतृत्व के कारण इसके संस्थात्मक स्वरूप के विकास में कमी देखने को मिलती है। यह कमी इसके संगठनात्मक स्थायित्व के बारे में भी शंका को जन्म देती है।

संदर्भ

1. देखें, निर्णय प्रक्रिया का अध्याय।
2. डा० उपेन्द्र बख्शी, 'लोक अदालत एट रंगपुर; ए प्रिलिमिनरी स्टडी'—1974।

6

लोक अदालत की कार्य पद्धति

प्राचीन समाज में विवाद सीमित थे और विवादों का फैसला आमतौर पर ग्रामस्तर पर होता था। लेकिन आज विवादों का दायरा काफी व्यापक हो गया है और उनके समाधान के लिये बने कानूनों की संख्या भी बहुत अधिक हो गई है कानून और विवाद की इस गुत्थी को सुलझाना आम आदमी के बस की बात नहीं है। इसके लिये वकील-व्यवस्था का प्रारम्भ और विस्तार हुआ है और मौजूदा न्याय व्यवस्था में विवाद को सुलझाने में वकीलों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। लोकअदालत में स्थिति बिलकुल भिन्न है। यहां प्रत्यक्ष विचार-विनिमय और सरल निर्णय-प्रक्रिया होने के कारण मध्यस्थ की भूमिका नगण्य होती है।

सामान्यतया व्यक्ति इस बात का प्रयास करता है कि विवाद न हो। विवाद हो ही नहीं, यह उत्तम स्थिति है, परन्तु यदि वह हो जाय तो श्रेयस्कर यही है कि विवाद इस प्रकार सुलझाया जाय कि विवादग्रस्त पक्षों के पारस्परिक सम्बन्ध में वह स्थिति बनी रह जाय जैसी विवाद न होने या प्रारम्भ होने की स्थिति में थी। लोकअदालत विवाद सुलझाने में ऐसी प्रक्रिया अपनाने का प्रयास करती है जिससे पारस्परिक सम्बन्धों में तनाव की स्थिति न रहे और सम्बन्ध सुधर जावें।

वर्तमान न्यायालय कानूनी दृष्टि से न्याय देता है परन्तु लोकअदालत न्याय का सामाजिक पक्ष भी प्रस्तुत करती है। न्यायालय का कार्य मात्र दोषी व्यक्ति का दोष सिद्ध करना एवं उसे दंड देना ही नहीं होना चाहिये बल्कि उसके साथ दो बातें और भी जुड़ी हैं: (क) वह आगे इस प्रकार का कार्य न करे एवं उसका सुधार हो और (ख) पारस्परिक सम्बन्धों में सुधार हो, क्यों कि विवाद का प्रभाव स्व (self) के साथ-साथ समाज (society)

पर भी पड़ता है और इस प्रकार विवाद से सामाजिक परिवेश भी प्रभावित होता है। इसलिए न्याय-प्राप्ति के बाद विवाद का प्रभाव दोनों स्तर पर समाप्त हो सके, इसका लोक अदालत की कार्य-पद्धति में विशेष महत्त्व है। इन बातों को मूर्त रूप देने की न्याय-प्रक्रिया की खोज करने का प्रयास लोक अदालत करती है।

विवाद होने के क्रम में अनेक स्थितियां होती हैं। कोई भी विवाद यकायक नहीं होता बल्कि उसके पीछे लम्बे समय से चला आ रहा मतभेद होता है। हम आमतौर पर देखते हैं कि विवाद का प्रारम्भ छोटी-छोटी बातों को लेकर होता है और समय आता है जब विवाद को न्यायालय में प्रस्तुत करना पड़ता है। जैसे महाजन सम्बन्धी विवाद का प्रारम्भ गलत हिसाब या लेन-देन में देर होने या इन्कार करने से होता है। पारिवारिक एवं विवाह सम्बन्धी विवाद का प्रारम्भ तो अक्सर छोटी-छोटी बातों को लेकर ही होता है। लोकअदालत के अवलोकन से इस बात की पुष्टि हुई कि पारिवारिक विवादों का प्रारम्भ पति-पत्नी के बीच मारपीट, भोजन न देना, ससुराल न आ पाना, यौन सम्बन्ध में विषमता आदि से होना पाया गया है और यह सब एकाएक न होकर धीरे-धीरे होता है। पारिवारिक विवाद सामान्यतया दो से चार वर्षों में इस स्थिति में पहुंचता पाया गया कि वह अदालत में जाय। कौन सा विवाद कितने समय में अदालत में जाता है, यह पारिवारिक सम्बन्ध एवं सहिष्णुता पर निर्भर करता है।[1]

लोकअदालत में आने की प्रेरणा

किसी व्यक्ति को लोकअदालत में आने की प्रेरणा क्यों होती है, इस सम्बन्ध में सर्वेक्षित गांवों से आये विवादों के बारे में जानकारी प्राप्त करने, लोगों से बातचीत एवं लोकअदालत की बैठक का अवलोकन करने के बाद निम्न तथ्य सामने आये हैं :

(क) स्वयं की जानकारी—इस क्षेत्र के करीब एक सौ गांवों में लोक-अदालत का प्रभाव है। इन गांवों के बहुसंख्यक निवासियों को आमतौर पर यह जानकारी है कि लोकअदालत में विवादों को सुलझाया जाता है और यही जानकारी लोगों को लोकअदालत में आने की प्रेरणा देती है।

(ख) जानकारी के साथ विश्वास जुड़ने से लोकअदालत में आने की प्रेरणा मजबूत होती है। जिन लोगों का लोकअदालत के नेतृत्व एवं न्याय देने की क्षमता में विश्वास है, वे सहज ही विवादों को

सुलझाने के लिये यहां आते हैं लेकिन कुछ लोग ऐसे भी हैं जिन्हें लोकअदालत की जानकारी तो है परन्तु जो विश्वास की कमी के कारण यहां आने से कतराते हैं। ऐसे उदाहरण भी देखने में आये कि लोगों ने जानकारी होते हुए भी लोकअदालत में आने में देरी की और विवाद को बढ़ाते रहे। यह स्थिति विवाह एवं पारिवारिक विवादों में अधिक पायी गई है। विश्वास का प्रश्न एक अन्य बात से भी जुड़ा हुआ है। कभी-कभी ऐसा भी देखने में आया है कि एक पक्ष लोकअदालत में नहीं आना चाहता या आने में देर करता है। आमतौर पर लोग लोकअदालत में आने से इन्कार नहीं करते, पर विलम्ब करते हैं। ऐसा करने के पीछे सत्य से बचने का प्रयास करने की भावना जुड़ी होती है। कुल मिलाकर जानकारी एवं विश्वास के कारण लोग लोकअदालत में विवाद लाते हैं।

(ग) किसी के द्वारा जानकारी दिया जाना—जिन लोगों को लोकअदालत की जानकारी नहीं है, वे किसी व्यक्ति द्वारा जानकारी देने पर यहां आते हैं। इस प्रकार की जानकारी देने वालों में मुख्य ये हैं :—

(i) नाते-रिश्ते के लोग जिनका विवाद लोकअदालत ने सुलझाया हो।

(ii) ऐसे लोग जिन्होंने लोकअदालत की बैठकों में भाग लिया हो या उसके अधिवेशन देखे हों।

(iii) लोकअदालत के कार्यकर्त्ताओं द्वारा जिनका क्षेत्र की जनता से आर्थिक एवं सामाजिक कार्यक्रमों के कारण निकट का सम्पर्क है।

(iv) कभी-कभी महत्त्व के प्रश्न सुलझाने से भी लोकअदालत सम्बन्धी जानकारी का विस्तार होता है; यथा—किसी गांव के भूमि सम्बन्धी मामलों के निपटारे में सरकारी अधिकारियों के पूर्व निर्णयों को बदलने के प्रयास आदि।

सर्वेक्षण के दौरान एक से अधिक विवाद ऐसे भी देखने में आये जिनमें विवाद-प्रस्तुतकर्त्ताओं को लोकअदालत के बारे में पहले से जानकारी नहीं थी और किसी अन्य की सलाह पर वे यहां आये। ऐसे लोग आमतौर पर दूर होते हैं। सर्वेक्षण के दौरान गुजरात एवं मध्य प्रदेश की सीमा के ऐसे गांवों से भी ऐसे लोग आते पाये गये जो लोकअदालत-केन्द्र से करीब पचास

मील दूर पड़ते थे। एक पक्ष के आने पर दूसरे पक्ष को बुलाने में थोड़ा अधिक प्रयास तो करना ही पड़ता है। इस प्रकार लोकअदालत का कार्य क्षेत्र भी क्रमशः व्यापक होता जाता है।

(घ) ग्रामसभा द्वारा भेजा जाना—लोकअदालत के सघन क्षेत्र में ग्राम सभाओं द्वारा अनिर्णीत विवाद लोकअदालत में भेजे जाने की प्रवृत्ति रही है। जिन गांवों की ग्रामसभायें सक्रिय हैं, वहां विवाद पहले ग्रामसभा के पास जाता है और ग्रामसभा उसे सुलझाने का प्रयास करती है। लेकिन ग्रामसभा में विवाद न सुलझने पर या ग्रामसभा द्वारा यह महसूस किया जाने पर कि विवाद को केन्द्रीय लोकअदालत में भेजना ठीक रहेगा, उसे लोकअदालत के माध्यम से सुलझाने का प्रयास किया जाता है।

(ङ) ग्रामदानी गांवों द्वारा गैर ग्रामदानी गांवों की समस्या में दिलचस्पी ली जाती है और कई बार उन्होंने गैर ग्रामदानी गांवों के निवासियों को अपनी समस्यायें लोकअदालत के समक्ष प्रस्तुत करने एवं उसके माध्यम से उन्हें हल कराने की प्रेरणा दी।

निर्णय प्रक्रिया

लोकअदालत में आये विवादों की कार्यवाही एवं निर्णय-प्रक्रिया की अनेक स्थितियां होती हैं। विवाद के लोकअदालत में आने एवं निर्णय होने के बीच होने वाली प्रक्रिया को प्रो० उपेन्द्र बक्षी[2] ने तीन मुख्य भागों में विभाजित किया है :

(क) विवाद सुलझाने की दृष्टि से की जाने वाली प्रारम्भिक कार्यवाही।

(ख) ऐसी प्रक्रिया जिसके माध्यम से विवाद को अच्छी तरह समझा जा सके और उसकी गहराई में जाया जा सके।

(ग) निर्णय-प्रक्रिया जिसके द्वारा न्याय प्राप्त होता है।

चूंकि लोकअदालत की कार्य पद्धति का विकास स्वाभाविक रूप से और क्रमिक ढंग से हुआ है, इसलिए इसमें तकनीकी कमियां हो सकती हैं। यह स्वीकार करना चाहिये कि यहां मौजूदा न्यायपद्धति की निर्णय-प्रकिया का अनुकरण नहीं किया जाता। यहां की निर्णय-प्रक्रिया अपने ढंग की है और इस 'अपने ढंग' का विकास स्वभावतः अनुभव तथा आवश्यकता के आधार पर हुआ है। इसमें कोई वने वनाये नियमों या सिद्धान्तों का उपयोग नहीं

किया गया है। लोकअदालत के अध्ययन के बाद हम यह कहना चाहेंगे कि निर्णय के समय मोटे तौर पर नीचे लिखी बातों को ध्यान में रखा जाता है और निर्णय की प्रक्रिया भी इन्हीं बातों के आधार पर विकसित हुई है :

(क) लोकअदालत में विवाद के प्रवेश (रजिस्ट्रेशन) में सरलता रहे और विवाद प्रस्तुतकर्त्ता को रजिस्ट्रेशन में कम से कम उलझाव हो।

(ख) विवाद निपटाने में स्थानीय लोगों का प्रमुख स्थान रहे।

(ग) निर्णय-प्रक्रिया सरल हो।

(घ) किसी पक्ष को किसी प्रकार का भय न हो।

(ङ) विशेष आर्थिक बोझ विवादग्रस्त पक्षों पर न पड़े।

(च) तथ्यों के आधार पर न्याय दिया जाये और निर्णय देने में तत्परता बरती जाये।

लोकअदालत की बैठकों का अवलोकन करने से इसकी निर्णय पद्धति की जानकारी मिलती है। लोकअदालत की प्रक्रिया को नीचे लिखी स्थितियों (stages) में देख सकते हैं।

(1) विवाद का प्रस्तुतीकरण एवं पंजीयन

सामान्यतया विवाद प्रस्तुत करने वाला व्यक्ति लोकअदालत के मंत्री (secretary) से विवाद के बारे में चर्चा करता है लेकिन यदि अध्यक्ष उपस्थित होते हैं, तो वे स्वयं विवाद को सुनते हैं। अध्यक्ष की अनुपस्थिति में लोकअदालत का मंत्री विवाद को सुनकर उसका रजिस्ट्रेशन कर लेता है। विवाद के रजिस्ट्रेशन में नीचे लिखी जानकारी रजिस्टर में नोट की जाती है :

(अ) दिनांक।

(आ) वादी का नाम एवं गांव।

(इ) प्रतिवादी का नाम एवं गांव।

(ई) विवाद का प्रकार।

(उ) अन्य विशेष नोट।

प्रस्तुत विवाद को रजिस्टर में नोट करने की व्यवस्था पहले नहीं थी। प्रारम्भिक जानकारी एक स्थान पर मिल जाय, इस दृष्टि से उपरोक्त जान-

कारी 1970 से रखी जाने लगी है लेकिन अभी भी यह व्यवस्था व्यवस्थित नहीं मानी जा सकती। रजिस्ट्रेशन की कार्यवाही को देखते हुए यह कहना चाहेंगे कि कार्य नौकरशाही के ढंग का न हो कर आपसी सद्भाव के रूप में होता है। इस बात की पुष्टि यहां के काम का ढंग देखकर की जा सकती है। उदाहरण के लिए विवाद कभी भी प्रस्तुत किया जा सकता है और कई बार रात्रि में भी विवाद का रजिस्ट्रेशन कर लिया गया है। जिस समय विवाद प्रस्तुत होता है, प्रायः रजिस्ट्रेशन का काम भी उसी समय होता है।

विवाद का पंजीयन (रजिस्ट्रेशन) सुनवाई के क्रम की प्रथम कार्यवाही है। इसके करीब 15 से 30 दिनों के बीच लोकअदालत की बैठक में विवाद की सुनवाई प्रायः हो जाती है। प्रथम सुनवाई में लगभग इतना समय तो लगता ही है। यदि एक पक्ष किन्हीं कारणों से उपस्थित न हो सका तो उसके लिये दूसरी तारीख दी जाती है। यदि लोक अदालत की अगली बैठक की तारीख निश्चित नहीं होती तो विवाद प्रस्तुतकर्त्ता को तारीख लेने के लिए पुनः बुला लिया जाता है और उसी तारीख पर उपस्थित होने के लिए प्रतिवादी को आमंत्रण पत्र भेज दिया जाता है। इस बात की जानकारी भी प्राप्त की जाती है कि दूसरा पक्ष क्यों नहीं उपस्थित हुआ। यह प्रयास किया जाता है कि अगली बैठक में दोनों पक्ष उपस्थित हों। इस कार्य में सम्बन्धित गांव के लोग मदद करते हैं।

(2) सुनवाई की सूचना

विवाद का पंजीयन होने के बाद उसकी सुनवाई की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। यदि उस समय लोक अदालत की बैठक की तारीख निश्चित हो गयी रहती है तो सुनवाई की तारीख निश्चित कर दी जाती है। विवाद प्रस्तुत करने वाले को नीचे लिखे नमूने का पंजीयन-पत्रक दिया जाता है :

"लोकअदालत"

आनन्द निकेतन आश्रम,
पो० रंगपुर (कंवाट)
जिला बड़ोदा

तारीख.........

केस नम्बर.........

वादी.............

प्रतिवादी.........

सुनवाई की तारीख.................. दिन............

उक्त नमूने का पत्रक वादी को दिया जाता है। यह मूलतः गुजराती में होता है। दूसरे पक्ष को भी उसकी समय पर सूचना दे दी जाती है। दूसरे पक्ष को वादी-प्रतिवादी की परिस्थिति के अनुसार तीन तरह से सूचना दिये जाने की व्यवस्था है :

(क) सामान्यतः वादी के माध्यम से ही प्रतिवादी को सूचना दिलायी जाती है।

(ख) यदा-कदा डाक द्वारा सूचना भेजी जाती है।

(ग) कभी-कभी विशेष संदेशवाहक द्वारा भी भेजी जाती है।

प्रतिवादी को नीचे लिखे नमूने की सूचना भेजी जाती है :

लोकअदालत

श्री.......................गांव..........................पता.............
.......................आपका श्री...................निवासी (गांव)......
...............से..........................बारे में विवाद हुआ है। कृपया दिनांक...............(दिन)...................(वार) को इस विवाद के समाधान के लिये यहां आयें। हम इस विवाद के समाधान के लिये प्रयास करेंगे।

यह तो आप जानते ही हैं कि कोर्ट कचहरी की दौड़-धूप एवं खर्च करना हम गरीब किसानों के हित में नहीं है। इसलिये अपने साक्षियों एव मित्रों के साथ जरूर पधारियेगा।

ह० भाई (हरिवल्लभ परीख)

उपरोक्त पत्र एक प्रकार का निमंत्रण पत्र है जिसके द्वारा दूसरे पक्ष को विवाद सुलझाने के लिये आमंत्रित किया जाता है। उपरोक्त कार्यवाही इस बात का प्रमाण होती है कि लोकअदालत की कार्यवाही चालू हो गई है। लोक अदालत में आने के लिये भेजे जाने वाले निमंत्रण पत्र में इस बात का संकेत होता है कि कोर्ट-कचहरी की दौड़-धूप एवं खर्च गरीब किसानों के हित में नहीं है। पत्र से यह भी जाहिर होता है कि विवाद को आपस में सुलझाना ही हितकर होगा। लोकअदालत इस बात पर बल देती है कि वह विवाद का समाधान खोजने का प्रयास करती है। वह अपनी ओर से किसी पर कोई निर्णय थोपना नहीं चाहती। पत्र से यह भी जाहिर होता है कि कोर्ट-कचहरी में जाने की प्रवृत्ति को हतोत्साहित किया जाना चाहिये, और इसी में गांव के लोगों का हित है।

(3) सुनवाई की प्रक्रिया

विवाद की सुनवाई के समय काफी संख्या में लोग उपस्थित होते हैं। सुनवाई के समय आमतौर पर आश्रम के सदस्य भी उपस्थित होते हैं। उपस्थिति कई बातों पर निर्भर रहती है। सामान्यतया नीचे लिखी बातों के अनुसार बैठक में उपस्थिति की संख्या निर्भर करती है :

(क) उस दिन की बैठक में सुनवाई होने वाले विवादों की संख्या। जिस दिन विवादों की अधिक संख्या होती है, उस दिन उपस्थिति अधिक होना स्वाभाविक है।

(ख) विवाद का प्रकार—एक गांव के बीच, कई गावों से सम्बन्धित, पुलिस या अन्य कर्मचारियों से सम्बद्ध विवाद आदि होने पर अधिक उपस्थिति रहती है।

(ग) विवाद की प्रकृति—जमीन सम्बन्धी, कर्ज के लेन-देन, विवाह एवं परिवार सम्बन्धी, तलाक, भूत-प्रेत, मारपीट आदि।

(घ) साक्षियों की संख्या।

(ङ) विवाद से सम्बद्ध पक्ष के लोगों का आश्रम से दूर या समीप होना।

(च) विवाद में रुचि की स्थिति।

(छ) आश्रम में उपस्थिति—देश के या विदेशी मित्रों का उपस्थित रहना।

विवादों के अध्ययन के दौरान विभिन्न विवादों के निर्णय के समय जो उपस्थित रही, उसकी जानकारी नीचे की तालिका से प्राप्त हो सकती है।

तालिका संख्या–15

निर्णय के समय उपस्थिति

क्र०	निर्णय के समय उपस्थिति	विवाद संख्या	प्रतिशत
(1)	50 से 100	20	25
(2)	101 से 150	37	46—25
(3)	151 से 200	14	17—50
(4)	200 से अधिक	9	11—25
	योग	80	100—00

आमतौर पर सौ व्यक्तियों की उपस्थिति देखी जा सकती है।

सुनवाई की कार्यवाही आमतौर पर दोपहर में दो बजे प्रारम्भ होती है। पास के गांवों के लोग भोजन करके आते हैं जबकि दूर गांवों के लोग भोजन साथ में लाते हैं। सभी लोग आश्रम के मध्य स्थित महुआ के वृक्ष के नीचे बने चबूतरे पर बैठते हैं।

विवाद की सुनवाई की एक परम्परा यह भी देखने में आयी कि किसी भी बैठक में पहले उन विवादों को हाथ में लिया जाता है जो पिछली बैठक में अधूरे रह गये थे। सुनवाई के समय यह भी ध्यान रखा जाता है कि दूर गांव से आने वाले विवादों पर पहले विचार हो जाये ताकि वहां के लोग आसानी से अपने गांव उसी दिन वापस जा सकें। इसे सामान्य सुविधा का ध्यान रखा जाना कह सकते हैं।

वादी-प्रतिवादी का नाम पुकारने पर दोनों पक्ष आगे आकर आमने-सामने बैठते हैं। आमतौर पर अध्यक्ष विवाद के बारे में प्रश्न पूछना प्रारम्भ करता है। प्रश्नोत्तर काल मे विवाद के सभी पक्षों पर खुलकर विचार-विमर्श होता है। उपस्थित व्यक्तियों को भी प्रश्न पूछने का अधिकार है। इस बात का पूरा ख्याल रखा जाता है, कि एक पक्ष अपनी पूरी बात कह ले, तभी दूसरा पक्ष अपनी बात कहे। बीच में दूसरे पक्ष का हस्तक्षेप टाला जाता है।

इस प्रकार के प्रश्नोत्तर मे सभी प्रकार के तथ्य सामने आ जाते हैं। सुनवाई के दौरान नीचे लिखी बातें देखने में आयीं।

(क) व्यापक प्रश्नोत्तर के दौरान उपस्थित लोगों को गलती का अन्दाज लग जाता है।

(ख) दोषी व्यक्ति अपना दोष जनसमूह के सामने नहीं छिपा पाता है।

(ग) विवाद के बारे में पूरी जानकारी मिल जाती है।

(घ) दोषी व्यक्ति द्वारा अपना दोष स्वीकार किये जाने की मनःस्थिति का निर्माण हो जाता है।

इस प्रकार की सामूहिक सुनवाई की प्रक्रिया परम्परागत न्याय व्यवस्था में एक नया प्रयोग है। परम्परागत न्याय व्यवस्था में ग्राम मुखिया के स्थान एवं महत्त्व को देखते हुए सामूहिक सुनवाई (collective hearing) का स्थान नाम-मात्र का ही रहता था। डा० उपेन्द्र बक्षी[3] ने भी स्वीकार किया है कि लोक अदालत में तुलनात्मक दृष्टि से सामूहिक सुनवाई अधिक व्यवस्थित ढंग से होती है।

(4) विवाद की चर्चा को समेटना

प्रस्तुत विवाद के सम्बन्ध में दोनों पक्षों को पूरी वात सुनने एवं उपस्थित समुदाय की राय जानने के वाद लोक अदालत के अध्यक्ष प्रस्तुत विवाद को समेटते है। वे दोनों पक्षों की वातों को संक्षेप में अभिव्यंक्त करते हैं और उपस्थित लोगों का मन्तव्य भी जान लेते हैं। अध्यक्ष द्वारा प्रस्तुतीकरण का उद्देश्य मात्र विवाद को स्पष्ट करना ही नहीं है वल्कि इससे विवाद को एक दिशा भी मिलती है। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत अध्यक्ष विवाद के विभिन्न मुद्दों के सन्दर्भ में सामाजिक एवं व्यक्तिगत व्यवहार की कमियों को दूर करने की वात भी वताते रहते हैं। जैसे यदि तलाक का विवाद है तो उसकी सामाजिक अच्छाइयों और वुराइयों को स्पष्ट किया जाता है। साथ ही साथ उसके कानूनी पक्ष की भी जानकारी दे दी जाती है।

(5) पक्षकारों की नियुक्ति

इसके वाद अध्यक्ष के निर्देश से विवाद के वारे में निर्णय देने के लिये दोनों पक्षों की ओर से दो-दो प्रतिनिधियों के नाम सुझाये जाते हैं। प्रतिनिधियों की नामजदगी में इस वात का ख्याल रखा जाता है कि (1) वे प्रत्यक्ष रूप से विवाद से सम्वद्ध न हों। (2) किसी पक्ष के रिश्तेदार न हों। उपस्थित व्यक्तियों में से कोई भी पक्षकार जूरी के रूप में चुना जा है। सामान्यतया आश्रम का कार्यकर्त्ता एवं वाहर के दर्शक पक्षकार नहीं वनते हैं।

विवाद को सुलझाने के लिये पक्षकारों की नियुक्ति परम्परागत न्याय व्यवस्था के सन्दर्भ में नयी चीज है। उपस्थित जन समुदाय में से कोई भी व्यक्ति (उपरोक्त वातों को ध्यान में रखते हुए) पक्षकार वन सकता है, यह इस न्याय व्यवस्था की मुख्य वात है। यह एक व्यक्ति के स्थान पर सामूहिक न्याय पद्धति को स्वीकार करने की दिशा में प्रयास है। श्री हरिवल्लभ परीख का यह मानना है कि लोक अदालत व्यक्तिपरक न रहे। इसी वात को ध्यान में रखकर 1966 से पक्षकारों की नियुक्ति की जाने लगी। पक्षकारों की नियुक्ति में उन सामान्य वातों का भी ख्याल रखा जाता है जो विवाद को समझने के लिये आवश्यक होती हैं जैसे पक्षकार सामान्यतया वुद्धियुक्त हों, समझदार हों, वयस्क हों, आदि, आदि।

(6) पक्षकारों को पंच के रूप में घोषित किया जाना

दोनों पक्षों के पक्षकार अध्यक्ष के सामने उपस्थित होते हैं। अध्यक्ष यह घोषणा करता है कि ये पक्षकार अव पंच के रूप में विवाद के वारे में निर्णय

देंगे। उन्हें यह भी बताया जाता है कि अब वे (पक्षकार) किसी पक्ष से सम्बन्धित न होकर "पंच परमेश्वर" की भूमिका में विवाद पर विचार करेंगे। अब वे लोकअदालत से सम्बद्ध हैं और अदालत उनसे यह अपेक्षा रखती है कि वे निष्पक्ष होकर न्याय करेंगे। इस प्रकार के निर्देश के साथ उन्हें पच के रूप में कार्य करने को कहा जाता है। अब इन्हें (पक्षकारों को) पंच या जूरी के नाम से सम्बोधित किया जाता है। अलग-अलग विवादों के लिये अलग-अलग पंच नियुक्त किये जाते हैं।

निर्णय की पंच-प्रक्रिया लोकअदालत की निर्णय प्रक्रिया को आसान बनाती है। यहां एक बात यह सामने आती है कि दोनों पक्षों द्वारा पक्षकारों का चयन पंचों से नैतिकता की अपेक्षा को बढ़ा देता है। यह पक्षकार अपने पक्ष द्वारा मनोनीत होते हैं, इस कारण पूर्ण तटस्थता की कठिनाई यदा-कदा सामने आ सकती है। परन्तु यह बात दोनों पक्षों पर ही लागू होती है। सामान्यतः पंचगण विचार-विमर्श से ऐसे निष्कर्ष पर ही पहुंचते हैं जो दोनों पक्षों को स्वीकार्य हो। यह सही है कि ऐसे अवसर भी आये हैं जब पंच अपनी उचित भूमिका नहीं निभा पाता और इससे निर्णय में कठिनाई आ जाती है। एक विवाद की सुनवाई के समय हमने स्वयं देखा कि एक पंच अपने को निष्पक्ष न रख सका और एकपक्षीय निर्णय लिये जाने के लिए अड़ने लग गया। इस स्थिति में पंचों द्वारा कोई निर्णय नहीं लिया जा सका और विवाद पुनः अदालत के सम्मुख आ गया। पंचों कि बात अदालत ने सुनी। बातचीत के दौरान यह सिद्ध हो गया कि वह पंच एक पक्षीय बात कह रहा है। उस समय सभा में करीब 200 व्यक्ति उपस्थित थे। उस पंच की एक पक्षीय बात को सभा ने अस्वीकार किया और महत्त्वपूर्ण बात तो यह रही कि उक्त पंच ने भी अपनी भूल स्वीकार कर ली और कह दिया कि उसने पंच की भूमिका उचित ढंग से नहीं निभाई है और इसलिए उसे पंच के दायित्व से अलग कर दिया जाये। इस प्रकार हम देखते हैं कि निर्णय-प्रक्रिया में निष्पक्ष रह कर निर्णय देना लोक अदालत की एक विशेषता है।

(7) पंच निर्णय की घोषणा

पंचों द्वारा विचार-विमर्श के बाद, उनके निर्णय की जानकारी सभा को दी जाती है। आमतौर पर पंच निर्णय सर्वानुमति से किया जाता है। यदि पंच किसी निर्णय पर नहीं पहुंच पाते और मतभेद बना रहता है तो उस मतभेद की जानकारी सभा को दे दी जाती है। इस स्थिति में प्रायः तीन बातें होती पायी गयीं (1) निर्णय को अगली बैठक के लिये रोक दिया गया। (2) सभा के साथ विचार-विमर्श कर निर्णय पर पहुंचा गया।

(3) अध्यक्ष के ऊपर निर्णय का भार सौंपा गया।

जिस समय एक विवाद पर पंच-निर्णय की प्रक्रिया चलती है, उस समय दूसरे विवाद की अन्य प्रारम्भिक प्रक्रियायें भी चलती रहती हैं। इस प्रकार एक समय में एक से अधिक विवादों की निर्णय प्रक्रिया चलती रहती है।

पंच-निर्णय में कितना समय लगता है, इसकी सही जानकारी देना संभव नहीं है। हमने यह पाया की एक विवाद पर विचार करने में पंचों को प्राय: आधे घन्टे से लेकर 2 घन्टे तक का समय लग जाता है।

पंच-निर्णय में मत-स्वातंत्र्य की बात साफतौर पर देखने में आयी। हर व्यक्ति अपनी बात को खुलकर रखता है। सभी पंच अपनी बात निर्भीकता से प्रस्तुत करते पाये गये। इस स्थिति में निर्णय पर पहुंचने के लिए यदाकदा पहल करने की भी आवश्यकता होती है। सामान्यतया ऐसे अवसरों पर भाई सभी की बातों को सुनते हैं एवं निर्णय पर पहुंचने में मदद करते हैं। इस परिस्थिति को देखते हुए एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता होती है जो प्रभावशाली हो और आवश्यकता पड़ने पर सामूहिक निर्णय-प्रक्रिया को सही दिशा प्रदान करता रहे।

किसी भी विवाद का समाधान खोजते समय पंचों की दृष्टि तथ्यों एवं मामले की वास्तविकता पर केन्द्रित रहती है सामुदायिक निर्णय प्रक्रिया से स्वभावत: ही विवाद की असलियत सामने आ जाती है और इसलिए विवाद का निर्णय तथ्यात्मक (rational) आधार पर किया जाता है, किसी भावनात्मक आधार पर नहीं।

तथ्यों का पता लगाने में निम्न प्रक्रियायें सहायक होती हैं :

(क) सम्बन्धित पक्षों द्वारा अपने पक्ष समर्थन के लिये प्रस्तुत तथ्य।
(ख) प्रश्नोत्तर द्वारा तथ्यों की खोज का प्रयास।
(ग) सभा में उपस्थित लोगों की निजी जानकारी।
(घ) वादी-प्रतिवादी के समर्थकों से प्राप्त जानकारी।
(ङ) यदा-कदा तथ्य प्राप्त करने के लिये अपनाये गये भावनात्मक उपाय—यथा शपथ दिलाकर तथ्यों की जानकारी हासिल करना आदि।

लोक अदालत में निर्णय में निम्न मानदंडों का ध्यान रखा जाता है :

(अ) नैतिकता का रक्षण एवं पोषण।
(आ) राज्य के कानूनों का अवलम्बन एवं अनुपालन।

(ङ) विवाद से सम्बन्धित पक्षों की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थिति को दृष्टिगत रखते हुए दण्ड या जुर्माने का निर्धारण।

(8) निर्णय की पुष्टि

पंच निर्णय के बाद सभा को निर्णय की जानकारी दी जाती है। विवाद के निर्णय की जानकारी सभा को देने के बाद सभा मे इसकी पुष्टि भी करा ली जाती है। सभा से पूछा जाता है कि क्या पंचों के निर्णय से आप सब सन्तुष्ट हैं? यदि आवश्यकता होती है तो अध्यक्ष द्वारा निर्णय का स्पष्टीकरण भी किया जाता है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, सभा से विचार-विमर्श इस निर्णय-प्रक्रिया का प्रमुख अंग है।

निर्णय की स्वीकृति को अंतिम रूप देने के लिये "महात्मा गांधी की जय" का उद्घोष किया जाता है।

(9) करारखत का लेखाबद्ध किया जाना एवं उस पर हस्ताक्षर

निर्णय को लिखित रूप देने के लिये करारखत तैयार किया जाता है। करारखत में निर्णय को लिखित रूप प्रदान करने के साथ जिस पक्ष को दोषी पाया जाता है, उसका भी संक्षेप में उल्लेख किया जाता है। इसमें निर्णय, दंड, समझौते आदि का उल्लेख भी होता है। कई विवादों में तो करारखत एक प्रकार के समझौता-पत्र के रूप में रहता है। जैसे तलाक सम्बन्धी विवादों में यदि आपसी मेलजोल हो गया या किसी प्रकार का दंड नहीं दिया गया और दोनों ने भविष्य में प्रेम से रहने का निर्णय किया तो ऐसे विवाद में करारखत में समझौते की शर्तें भी लिखी जाती हैं।

इस करारखत पर वादी-प्रतिवादी दोनों के हस्ताक्षर या अंगूठा निशान होता है। इसके अतिरिक्त पंचों एवं अध्यक्ष के हस्ताक्षर भी होते हैं।

(10) गुड़-वितरण

करारखत लिखा जाने के बाद विवाद के निर्णय की अन्तिम प्रक्रिया गुड़-वितरण की होती है। सभा में उपस्थित सभी व्यक्तियों को गुड़ वितरित किया जाता है। गुड़-वितरण से निर्णय की पुष्टि अन्तिम रूप से होती है। गुड़ की रकम आमतौर पर दोनों पक्षों द्वारा बराबर दी जाती है।

गुड़ की रकम कितनी होगी, यह कई बातों पर निर्भर होता है, जैसे व्यक्ति की सामर्थ्य विवाद की स्थिति, दण्ड की मात्रा आदि। गुड़ का वितरण कौन करेगा, इसका भी कोई निश्चित नियम नहीं है। आश्रम का सदस्य या कोई भी अन्य व्यक्ति गुड़ वितरण करता हुआ पाया गया।

गुड़-वितरण प्रतीकात्मक क्रिया है। सामुदायिक व्यवस्था में इस प्रकार की परम्परा का खास महत्त्व होता है। समस्या का समाधान होने पर पूरा समाज खुशी व्यक्त करता है और इस उपलक्ष में मुंह मीठा करना एक अच्छी परम्परा है। परम्परागत आदिवासी समाज में इसी परम्परा का एक रूप शराब पीना पाया जाता है। आदिवासी समाज में, खासकर भीलों में विवाद के निपटारे के बाद शराब पीने की परम्परा का जिक्र प्रो. टी. बी. नायक ने भी किया है। उनके अनुसार भील समाज में मुखिया द्वारा शराब पीने-पिलाने के बाद यह घोषणा की जाती है कि अब किसी प्रकार का झगड़ा शेष नहीं रहा है और भविष्य में आप झगड़ा नहीं करेंगे और मित्र के रूप में रहेंगे।[4] लोक अदालत ने गुड़-वितरण की परम्परा विकसित करके पुरानी परम्परा को शुद्ध बनाया है। इसमें पुरानी परम्परा में शुद्धता आने के साथ-साथ निर्णय की स्वीकृति की भावना कायम रहती है। गुड़-वितरण के प्रश्न पर किसी प्रकार का मतभेद देखने में नहीं आया। गुजरात में पूर्ण शराब बंदी होने तथा आश्रम द्वारा शराबबंदी के पक्ष में वातावरण बनाने के कारण शराब के स्थान पर गुड़-वितरण की परम्परा का स्वागत भी किया गया है।[5]

लोक अदालत तुलनात्मक दृष्टि से कम खर्चीली है। गुड़-वितरण का नाममात्र का खर्च प्रायः सभी विवादों में होता है। गुड़ के अतिरिक्त जो अन्य खर्च होता है, उसका विवरण देना संभव नहीं है और एक दृष्टि से यह ठीक भी है क्योंकि इसके अतिरिक्त विवाद पर प्रायः अन्य प्रकार का नकद व्यय होता नहीं पाया गया। नजदीक के गांवों के सभी लोग भोजन करके आते हैं या शाम को घर जाकर भोजन कर लेते हैं। पास-पड़ोस के लोग पैदल ही आते जाते हैं। अतः यहां के लोगों की दृष्टि में लोकअदालत में कोई खर्च नहीं होता है।

कुछ विवादों में दण्ड अवश्य दिया जाता है। दण्ड की मात्रा लोकअदालत के निर्णय के दौरान निश्चित की जाती है। विभिन्न प्रकार के विवादों में दण्ड की मात्रा भिन्न-भिन्न होती है। तलाक सम्बन्धी-विवादों में आम तौर पर किसी एक पक्ष को ही दण्ड देते हुए पाया गया। इसी प्रकार मार-पीट, लेन-देन सम्बन्धी विवादों में भी एक ही पक्ष को दण्ड देते हुए पाया गया।

विभिन्न विवादों में दिये गये दण्ड एवं गुड़-वितरण में हुए खर्च के तथ्यात्मक आंकड़े निम्न प्रकार हैं :

तालिका संख्या–16

लोकअदालत में खर्च एवं दण्ड संख्या–80

क्र०	गुड़ पर खर्च (रुपये में)	संख्या	वादी-प्रतिवादी दण्ड की मात्रा (रुपये में)					
			51-100	101-150	151-200	201-250	300 से अधिक	योग
(1)	1 से 10	48	1	3	00	2	6	12
(2)	11 से 20	13						
(3)	21 से 30	14						
(4)	31 से 40	00						
(5)	41 से 50	3						

कुल सर्वेक्षित 80 वादी-प्रतिवादियों में से केवल 12 वादी-प्रतिवादियों को ही दण्ड दिया गया है। तीन सौ से अधिक रुपये के दण्ड वाले विवादों की संख्या अधिक है। उक्त अंकों को देखने से यह बात स्पष्ट होती है कि उन विवादों की संख्या कम है जिनमें दण्ड दिया गया है। आमतौर पर समझौता किया जाता है। इससे यह भी साफ होता है कि लोकअदालत अधिक आर्थिक दण्ड दिये जाने के पक्ष में भी नहीं है। ऐसा एक भी उदाहरण देखने में नहीं आया जिसमें शारीरिक दण्ड दिया गया हो। गुड़-वितरण पर हुआ खर्च भी कम है। सामान्यतया अधिकतर मामलों में 5 से 15 रुपये तक का खर्च होता पाया गया। दो विवाद ऐसे भी पाये गये जिसमें गुड़-वितरण नहीं किया गया। ये विवाद प्रारम्भिक वर्षों के थे।

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि लोक अदालत की कार्य पद्धति वैधानिक न्यायालयों की कार्य-पद्धति की तुलना में अपेक्षाकृत कम खर्चीली, सहज एवं सरल प्रतीत होती है। यदि वैधानिक न्यायालयों की कार्य पद्धति में भी उपरोक्त अध्ययन के आधार पर कुछ सुधार किये जा सकें तो जन साधारण को शीघ्र एवं सस्ता न्याय प्राप्त करने में सहूलियत हो सकती है।

सारांश

(1) न्याय-प्राप्ति की प्रक्रिया इस प्रकार की हो जिसमें विवाद से सम्बद्ध

पक्ष के समक्ष कम से कम कठिनाई आये, इसका प्रयास लोकअदालत में किया जाता है। मौजूदा न्यायालयों में कानूनी उलझनें एवं न्यायिक प्रक्रिया की जटिलता के कारण सामान्य जन, खास कर गांव के लोग, काफी कठिनाई महसूस करते हैं। यही कारण है कि न्याय-कार्य में वकील की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो गयी है। लोकअदालत विवाद को स्थानीय स्तर पर सामुदायिक प्रक्रिया के आधार पर सुलझाने का प्रयास करता है। प्रक्रिया में इस बात का प्रयास रहता है कि विवाद सुलझने एवं न्याय प्राप्ति के बाद व्यक्ति (self) एवं समाज (society) दोनों स्तर पर ही विवाद का तनावात्मक प्रभाव समाप्त हो और विवाद के पहले जैसा वातावरण एवं सम्बन्ध स्थापित था, वैसा ही वातावरण एवं सम्बन्ध पुनः कायम हो।

(2) लोक अदालत की कार्य पद्धति का विकास स्वाभाविक रूप से हुआ है, इस कारण इसका बना बनाया नियम नहीं है। सामान्यतौर पर इसकी कार्य पद्धति में नीचे लिखी बातों को ध्यान में रखा जाता है—

(1) विवाद के प्रवेश (रजिस्ट्रेशन) में सरलता और कम से कम उलझाव।

(2) विवाद का निर्णय तथ्यों के आधार पर विवादग्रस्त पक्षों की सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए स्थानीय स्तर पर हो।

(3) निर्णय में जन भागीदारी (सामुदायिक तत्व)।

(4) प्रक्रिया सरल हो।

(5) भय एवं दबाव न हो।

(6) आर्थिक बोझ न पड़े।

(7) सस्ता एवं शीघ्र न्याय मिले।

(8) पश्चाताप एवं हृदय परिवर्तन शारीरिक दण्ड का स्थान ग्रहण करे और दण्ड में मानवीय पहलुओं का प्रमुख स्थान रहे।

(3) उपरोक्त बातें लोकअदालत ने सैद्धान्तिक रूप में स्वीकार कर रखी हैं। सिद्धान्त एवं व्यवहार की दूरी न रहे, इस बात का प्रयास करने के बावजूद व्यवहार में प्रक्रिया सम्बन्धी कुछ कठिनाइयां देखने

में आयीं। लोकअदालत का संस्थात्मक ढांचा मजबूत न होने के कारण दूर गांव के लोगों को विवाद सुलझाने के लिए केन्द्रीय लोक-अदालत में आना पड़ता है, क्योंकि ग्राम-स्तर पर इसका संगठन अभी भी कमजोर है। यही कारण है कि कभी-कभी लोकअदालत की बैठक की तारीख प्राप्त करने में वादी-प्रतिवादी को कठिनाई होती है। यह कठिनाई अध्यक्ष की व्यस्तता के कारण भी हो सकती है। यह स्थिति एक व्यक्ति के लोकअदालत पर अधिक प्रभाव के कारण भी उत्पन्न हुई मानी जा सकती है।

(4) लोकअदालत की प्रक्रिया में अध्यक्ष, मंत्री, पंच एवं सभा का महत्त्व-पूर्ण स्थान होता है। उक्त संगठनात्मक इकाइयों द्वारा न्याय-कार्य किया जाता है। अध्यक्ष इस बात का प्रयास करता है कि निर्णय पंच द्वारा सभा की सहमति से किया जाय। पंचों को इस बात की छूट रहती है कि वे भी खुलकर अपनी राय व्यक्त करें। अभिव्यक्ति की इस स्वतंत्रता का प्रभाव यह भी पड़ता देखा गया कि यदाकदा विवाद के निर्णय में कठिनाई होती है और मामले की सुनवाई अगली बैठक के लिए स्थगित हो जाती है। यह भी देखने में आया कि कई बार पंचों की राय में काफी भिन्नता रही या कभी-कभी पंच तटस्थता की भूमिका का निर्वाह न कर सके।

(5) सामान्यतौर पर कार्य-पद्धति में दो प्रकार की कमियां और देखने में आयीं : (1) संगठनात्मक, (2) प्रक्रियात्मक। संगठन में अध्यक्ष के प्रभाव एवं महत्त्वपूर्ण भूमिका के कारण इसकी अन्य इकाइयों (मंत्री, पंच, सभा) की भूमिका कभी-कभी गौण हो जाती है। यह प्रश्न लोक-अदालत के संस्थात्मक स्वरूप से भी जुड़ा हुआ है जो इसके स्थायित्व के प्रति शंका प्रकट करता है। प्रक्रिया सम्बन्धी कमियों में मुख्य बात सामुदायिक निर्णय की प्रक्रिया के स्पष्ट चित्र का अभाव है। अभी तक लोकअदालत यह स्वरूप विकसित नहीं कर पायी है जिसमें सामुदायिक निर्णय की प्रक्रिया सहज में चल सके। पंचों को एक राय होने की कठिनाई, व्यक्तिगत स्वार्थ से मुक्ति, सभा द्वारा विवाद के बारे में शीघ्र निर्णय पर पहुंचने की कठिनाई आदि भी यदा-कदा सामने आती रहती है।

संदर्भ

1. श्री हरिवल्लभ परीख के साथ चर्चा के आधार पर।
2. प्रो० उपेन्द्र बक्षी एवं डा० एल०एम० सिंघवी, लोक अदालत एट रंगपुर : ए प्रीलिमिनरी स्टडी, दिल्ली विश्वविद्याय, दिल्ली,1974।
3. "The element of public participation in the traditional system of informal dispute handling was thus comparatively minimal." Dr. Upendra Baxi (*ibid.*) page 20, Delhi University, Delhi, 1974.
4. देखें, टी०वी० नायक, उपरोक्त, पृष्ठ 230।
5. The drinking ceremony follows the headman's address. "Now you need not quarrel any further. You will now drink together and from now you are friends."

7

निर्णय की पूर्ति

पूर्ति की समस्या

लोक अदालत की निर्णय प्रक्रिया पूरी होने के बाद निर्णय की पूर्ति का प्रश्न आता है। जैसा कि हमने देखा है लोकअदालत में स्वेच्छा से निर्णय स्वीकार किया जाता है। इस कारण निर्णय की पूर्ति में खास कठिनाई नहीं आती। सामान्यतया लोग निर्णय के बाद इस पर अमल करते ही है। हां, कई कारणों से एवं मानवीय गुण-दोष सीमा को स्वीकार करते हुए निर्णय की पूर्ति में यदाकदा कठिनाइयां भी आ जाती है।

साक्षात्कार के दौरान लोकअदालत के निर्णय के बाद इसकी पूर्ति की दृष्टि से कुछ बातें इस रूप में देखने में आयीं—

(1) किसी विवाद में दोनों पक्षों की पूर्ण संतुष्टि न होने पर या किसी एक पक्ष के मन में शंका रहने पर निर्णय की पूर्ति में कठिनाई आती है।
(2) कई ऐसे विवाद होते हैं जो व्यक्ति के स्वभाव, पारिवारिक राग-द्वेष एवं स्वार्थ से प्रेरित होते हैं जैसे, प्रेम-सम्बन्ध, तलाक की उलझी हुई परिस्थिति आदि। इस स्थिति में निर्णय होने पर भी दोनों पक्षों का मन साफ नहीं हो पाता है।
(3) एक पक्ष का मन बदलने या किसी के बहकावे में आकर सरकारी न्यायालय में जाने के कारण भी निर्णय की पूर्ति नहीं हो पाती है।
(4) ऐसे मौके भी देखने में आये जिनमें निर्णय की पूर्ति के लिये कुछ समय दिया जाता है। इस दौरान पैसा न जुटा पाने या मंशा बदल जाने पर भी निर्णय-पूर्ति में बाधा आती है।

उपरोक्त परिस्थितियों में लोकअदालत के सम्मुख निर्णय की पूर्ति की

समस्या आती है। लोकअदालत के पास दण्ड शक्ति का अभाव है। इस कारण उसका निर्णय-पूर्ति का तरीका भिन्न है। सरकारी न्यायालयों के निर्णय की पूर्ति में पुलिस मददगार होती है और निर्णय-पूर्ति (यदि आगे अपील नहीं की तो) में कोर्ट के आदेश का प्रमुख स्थान होता है। इस आदेश के पालन में पुलिस के सहयोग से न्यायाधीशगण स्वयं भी निर्णय की पूति के लिए निर्णय न मानने वाले को जेल भेज देते हैं अथवा उसकी सम्पत्ति नीलाम करने की आज्ञा जारी कर देते हैं जबकि लोकअदालत के पास ऐसी कोई शक्ति एवं व्यवस्था नहीं है। साथ ही लोकअदालत इस प्रकार की व्यवस्था में विश्वास भी नहीं रखती।

लोकअदालत ने विभिन्न प्रकार के विवादों में जो निर्णय दिये हैं उन्हें समेट कर देखें तो स्थिति अधिक साफ होगी। विभिन्न विवादों में जिस प्रकार के निर्णय दिये गये, उन्हें संक्षेप में नीचे लिखे रूप में विभाजित कर सकते हैं :

(क) नकद दण्ड दिया जाना।

(ख) लेन-देन के मामलों में हिसाब को समझ कर उसे स्पष्ट करना और जो भी लेना-देना हो, उसकी पूर्ति कराना।

(ग) जमीन के प्रश्न पर जमीन वापस दिलाना और इस मद में यदि कोई लेन-देन जुड़ा हुआ हो तो उसकी पूर्ति करना।

(घ) तलाक सम्बन्धी ऐसे विवादों में जिनमें किसी के पूर्व सम्बन्ध पहले से कायम हुये पाये जायें, पुनर्विवाह की औपचारिक रस्म पूरी किये जाने की अनुमति।

(ड.) तलाक सम्बन्धी विवाद में तलाक दिलाना।

(च) पारिवारिक कलह में समझौता एवं प्रेम का वातावरण कायम करने का प्रयास करना।

(छ) ऐसे निर्णय जिनमें स्थायी नुकसान की पूर्ति की व्यवस्था की गई हो। जैसे शारीरिक क्षति के एक विवाद में इस प्रकार निर्णय की पूर्ति होती पायी गयी कि दोषी व्यक्ति द्वारा उस समय तक पीड़ित परिवार की खेती की व्यवस्था की जायेगी जब तक कि पीड़ित व्यक्ति का लड़का खेती करने लायक न हो जाय।

पूर्ति की प्रक्रिया

निर्णय के उपरोक्त प्रकारों की पूर्ति सामान्यतया स्वेच्छा से होती पायी गयी। यह बात भी देखने में आयी कि वादी-प्रतिवादी दोनों ही प्राय: निर्णय की पूर्ति के लिये तत्पर रहते हैं। विवाह, तलाक, पारिवारिक कलह आदि के मामलों में तो निर्णय की पूर्ति तुरन्त भी होती पायी गयी। प्रत्यक्ष अवलोकन एवं साक्षात्कार के दौरान प्राप्त जानकारी के आधार पर निर्णय की पूर्ति की नीचे लिखी स्थितियां देखने में आयीं :

(1) नकद दण्ड की स्थिति में दंडित व्यक्ति उसी समय अपने पास से दण्ड की रकम का भुगतान कर देता है।

(2) कुछ लोग उसी समय किसी अन्य व्यक्ति से लेकर भी दण्ड की राशि का भुगतान कर देते हैं।

(3) कई निर्णयों में कराररखत में दण्ड देने की तारीख नियत कर दी जाती है और उस तारीख तक वह दण्ड की रकम दे देता है। नकद दण्ड न दिये जाने पर अन्य जो भी निर्देश दिये गये हों, उनकी पूर्ति कर देता है।

(4) कराररखतों में इस बात का उल्लेख भी पाया गया है कि निर्णय की पूर्ति न होने पर आगे क्या कार्यवाई होगी या कितना अतिरिक्त दण्ड दिया जायगा।

(5) ऐसे विवादों की संख्या अधिक है जिनमें समझौते के रूप में निर्णय दिया गया है। समझौता-प्रधान विवादों में तलाक, वैवाहिक उलझनें, पारिवारिक कलह आदि मुख्य हैं। व्यक्तिगत वाद-विवाद या सामान्य मारपीट सम्बन्धी झगड़े भी इसी श्रेणी में आते हैं। इस प्रकार के विवादों से सम्बन्धित निर्णय की पूर्ति तत्काल होती पायी गयी यथा—

(क) तलाक की घोषणा एवं सम्बन्ध विच्छेद की बात दोनों पक्षों द्वारा स्वीकार कर अलग हो जाना। महिला आमतौर पर अपने परिवार द्वारा दिया गया कड़ा खोल कर पिता के घर चली जाती है।

(ख) यदि किसी से प्रेम सम्बन्ध है और तैयारी है तो तलाक के साथ-साथ विवाह की रकम भी पूरी कर दी जाती है।

(ग) पारिवारिक कलह एवं अन्य विवादों में इस घोषणा के साथ

निर्णय की पूर्ति मान ली जाती है कि "अब दोनों पक्ष प्रेम से रहेंगे।"

निर्णय से सन्तुष्टि

निर्णय की पूर्ति के साथ इस बात पर विचार करना भी उपयोगी होगा कि विवाद से सैकड़ों पक्षों को निर्णय से किस सीमा तक सन्तुष्टि हुई है। वादी-प्रतिवादी से साक्षात्कार के दौरान जो तथ्य सामने आये हैं उसके आधार पर निर्णय से सन्तुष्टि एवं विवाद की मौजूदा स्थिति की जानकारी प्राप्त की जा सकती है :—

तालिका संख्या—17

निर्णय से सन्तुष्टि एवं विवादों की मौजूदा स्थिति

क्र०	विवाद की मौजूदा स्थिति	संतोष की स्थिति				योग
		पूर्ण संतोष	सामान्य संतोष	कम संतोष	उत्तर न देने वाले	
1.	विवाद सुलझ गया	47	21	6	6	80
2.	कुछ तनाव है	50	24	6	0	80
3.	सामान्य स्थिति	47	19	6	8	80

वादी-प्रतिवादी से साक्षात्कार के आधार पर हम यह कहने की स्थिति में हैं कि 47 उत्तरदाताओं की राय में उन्हें लोकअदालत के निर्णय से पूर्ण सन्तोष है और उनका विवाद सुलझ गया है एवं आज भी सुलझा हुआ है। ऐसे उत्तरदाता, जो यह जानते हैं कि विवाद सुलझ गया है उनमें से 21 की सन्तुष्टि की स्थिति सामान्य है जबकि 6 लोग कम सन्तुष्ट रहे हैं परन्तु वे भी यह स्वीकार करते हैं कि उनका विवाद सुलझा हुआ है। उत्तरदाताओं में से 50 ने माना है कि कुछ तनाव शेष रह गया है परन्तु फिर भी वे निर्णय से सन्तुष्ट हैं। तनाव की बात कहने वालों में से 24 को सामान्य सन्तोष है जबकि 5 को कम सन्तोष। विवाद की मौजूदा स्थिति में सामान्य स्थिति प्रकट करने वालों में 47 को निर्णय से पूर्ण सन्तोष है, 19 को सामान्य सन्तोष और 6 को कम सन्तोष। निर्णय से संतुष्टि का स्तर

एवं विवाद की मौजूदा स्थिति से लोकग्रदालत के निर्णय की पूर्ति का एक चित्र स्पष्ट होता है।

निर्णय से पूर्ण सन्तोष एवं सामान्य सन्तोष व्यक्त करने वालों की संख्या ज्यादा है जबकि कम सन्तोष व्यक्त करने वालों की संख्या बहुत कम है! इससे इस बात की भी पुष्टि होती है कि लोकग्रदालत के निर्णय से प्राय: दोनों पक्षों को सन्तोष होता है। यदि किन्हीं कारणों से ग्राज कुछ तनाव शेष है तो भी उससे लोकग्रदालत की न्यायप्रियता में कमी नहीं ग्राती है। लोक ग्रदालत ने जो न्याय दिया, वह ग्रपने स्थान पर ठीक है ग्रौर उसमे बहुसंख्यक लोगों को पूर्ण तथा सामान्य सन्तोष है। निर्णय के बाद नयी घटनाग्रों के कारण तनाव पुन: पैदा हो सकता है। यह भी संभव नहीं है कि दोनों पक्षों को पूर्ण संतुष्टि मिले ही या भविष्य में तनाव नहीं ग्रायेगा, इसकी गारन्टी लोकग्रदालत दे। यह तो व्यक्ति के भावी व्यवहार एवं सद्भाव पर भी निर्भर करता है।

जैसा कि हमने ऊपर देखा, ग्रामतौर पर लोकग्रदालत के निर्णय की पूर्ति स्वेच्छा से होती है। इस बात की पुष्टि उक्त तालिका से भी होती है। यदि निर्णय से सन्तोष है तो उस पर ग्रमल करना ग्रासान हो जाता है। लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं कि सभी निर्णयों की पूर्ति सहज में हो जाती है। कई ऐसे ग्रवसर भी देखने में ग्राये जिनमें निर्णय की पूर्ति में कठिनाई ग्राती है। जिन कारणों से निर्णय की पूर्ति में कठिनाई ग्राती देखी गयी, उसे इस रूप में गिना सकते हैं :

(क) एक पक्ष को ग्रसन्तोष होना।

(ख) दोनों पक्ष को पूर्ण सन्तोष नहीं होना।

(ग) निर्णय के समय कुछ बातों की ग्रस्पष्टता रह जाना या दोनों पक्षों का मन साफ न होना।

(घ) स्वार्थ।

(ङ) किसी के बहकावे मे ग्रा जाना।

लोकग्रदालत के निर्णय की पूर्ति न होने पर लोकग्रदालत क्या करती है? जैसा कि ऊपर कहा गया है, लोकग्रदालत के निर्णय की पूर्ति विभिन्न प्रकार के विवादों में ग्रलग-ग्रलग ढंग से होती है। यदि किसी विवाद में एक पक्ष निर्णय की पूर्ति नहीं करता है, तो सामान्यतया तीन स्थितियां होती हैं :

(1) करारखत में उल्लिखित दण्ड दिया जाता है। अधिकांश करारखतों में इस बात का उल्लेख होता है कि निर्णय की पूर्ति न होने पर क्या किया जाय ?

(2) निर्णय की पूर्ति न होने पर विवाद पुनः लोकअदालत में आता है और उस पर विचार किया जाता है।

(3) निर्णय में शामिल पंच (जूरी) निर्णय की पूर्ति के लिये प्रयास करते हैं।

सारांश

(1) वादी-प्रतिवादी द्वारा लोकअदालत का निर्णय स्वेच्छा से स्वीकार किये जाने के कारण उस निर्णय की पूर्ति में विशेष कठिनाई देखने में नहीं आयी। फिर भी मानवीय स्वभाव की भिन्नता एवं खास परिस्थितिवश यदाकदा निर्णय की पूर्ति में कठिनाई आती है। विवाद के निर्णय में जो दण्ड का प्रावधान रहता है, उसे मूर्तरूप देने की प्रक्रिया में ही निर्णय की पूर्ति न होने पर की जाने वाली कार्यवाही का उल्लेख करारखत में रहता है। अतः यदि किसी निर्णय की पूर्ति नहीं होती है तो करारखत में उल्लिखित कार्यवाही की जाती है या विवाद पुनः लोकअदालत में लाया जाता है।

(2) यह बात साफतौर पर देखने में आयी कि निर्णय की पूर्ति कराने के लिए पंचगण भी सक्रिय रहते हैं। पंच इस बात का प्रयास करते पाये गये कि जो निर्णय हुआ है, उसका पालन हो। यह भी देखने में आया कि विवाद से सम्बद्ध पक्ष स्वयं भी विवाद सुलझाने को उत्सुक रहते हैं, इस कारण एक बार निर्णय स्वीकार करने के बाद उसे क्रियान्वित करने का ध्यान रखते हैं।

(3) स्वैच्छिक स्वीकृति के कारण आमतौर पर निर्णय के प्रति वादी-प्रतिवादी को सामान्यतः सन्तोष रहता है। लोकअदालत में जिस प्रक्रिया से निर्णय होता है, उसमें अधिकतम सन्तुष्टि की गुंजाइश रहती है। फिर भी यह संभव नहीं कि सभी विवादों में दोनों पक्षों को समान या पूर्ण संतुष्टि प्राप्त हो। संतुष्टि की तीन स्थितियां देखने में आयीं : (क) पूर्ण सन्तोष (ख) सामान्य सन्तोष और (ग) कम सन्तोष। इसके साथ-साथ विवाद सुलझने की स्थिति भी सभी विवादों में एक-सी नहीं पायी गयी। विवाद के निर्णय के बाद उसकी मौजूदा स्थिति (सुलझाव की स्थिति) के तीन स्वरूप सामने आये—(अ) कुछ लोगों का विवाद पूर्णतया सुलझ

जाता है। (आ) कुछ लोग निर्णय के बाद भी आपसी सम्बन्धों में तनाव महसूस करते हैं और इस प्रकार उनके मन में गांठ बनी रहती है। (इ) ऐसे लोग भी हैं जो यह मानते हैं कि सामान्य स्थिति कायम तो हो गई है फिर भी कतिपय कारणों से कुछ उलझनें बनी हुई हैं। पर साथ ही वे यह विचार भी व्यक्त करते हैं कि फिलहाल कोई समस्या नहीं है।

(4) निर्णय की पूर्ति न होने की स्थिति में लोकग्रदालत के पास ऐसी एजेन्सी नहीं है जिससे निर्णय-पूर्ति में आने वाली कठिनाई को दूर किया जाय। पंच एक सीमा तक यह प्रयास करते है कि निर्णय की पूर्ति हो, लेकिन निर्णय की पूर्ति करना काफी हद तक दोनों पक्षों की इच्छा पर ही निर्भर करता है। ऐसी व्यवस्था विकसित किये जाने की आवश्यकता है जो निर्णय की पूर्ति की स्थिति को देखे और निर्णय-पूर्ति न होने पर पूर्ति हेतु आगे कार्य-वाही करे। ऐसे मामले भी देखने में आये जिसमें करारनामे पर हस्ताक्षर के बावजूद एक पक्ष के मन बदलने या अन्य कारणों से उसकी पूर्ति नहीं हो पाती है। ऐसी स्थिति में विवाद उस समय तक उलझा रह जाता है जब तक कि वह पुनः लोकग्रदालत में नहीं आये और पुनः निर्णय होकर उसकी पूर्ति न हो जाय।

8

निर्णय की प्रतिक्रिया और आस्था

लोकअदालत के निर्णय का समाज के जिन वर्गों पर प्रभाव पड़ता है, उनकी प्रतिक्रिया जानने पर जो तथ्य सामने आये, उन पर इस अध्याय में विचार किया गया है। यहां लोकअदालत से प्रभावित नीचे लिखे पक्षों की प्रतिक्रिया जानने का प्रयास किया गया है :

1. वादी एवं प्रतिवादी की प्रतिक्रिया।
2. विवाद से अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े हुए लोगों यथा वादी-प्रतिवादी के निकटस्थ मित्रों एवं सम्बन्धियों की प्रतिक्रिया।
3. सामान्य लोगों की प्रतिक्रिया।

जो लोग लोकअदालत में आकर अपना विवाद सुलझाने का प्रयास करते हैं, लोकअदालत के निर्णय के बारे में उनकी प्रतिक्रिया का एक चित्र पिछले अध्याय में भी देखने को मिल सकता है। बातचीत के दौरान प्रायः सभी लोगों ने यह राय व्यक्त की कि लोकअदालत में न्याय मिलता है, इस कारण वहां विवाद ले जाते हैं। यह आवश्यक नहीं कि विवाद का निर्णय हमारे पक्ष में ही आये। तथ्यों के आधार पर न्याय देने की दिशा में प्रयत्नशील लोकअदालत यहां के लोगों को सस्ता, सरल एवं सुलभ न्याय प्रस्तुत करती है और दोनों पक्षों की आर्थिक-सामाजिक परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए ऐसा समाधान खोजती है, जिससे दोनों पक्षों को अधिकाधिक सन्तोष हो और जनसाधारण के हृदय में नैतिकता, सच्चाई एवं मानवीयता और सहृदयता के गुणों का संचार हो।

विवाद लाने में आने वाली कठिनाइयां जानने का भी प्रयास किया गया।

जो बातें सामने आयीं वे कठिनाइयों को स्पष्ट करने में मददगार हो सकती हैं। उत्तरदाताओं से तीन प्रश्न किये गये थे :

(1) क्या लोकअदालत में कार्य पद्धति की कठिनाई महसूस होती है ?

(2) क्या लोकअदालत में आने या निर्णय लेने में आर्थिक कठिनाई सामने आती है ?

(3) क्या एक व्यक्ति के नेतृत्व के कारण कोई कठिनाई दृष्टिगोचर होती है ?

उक्त प्रश्नों के उत्तर में वादी-प्रतिवादियों ने जो बात कही, उसे इस तालिका में देख सकते हैं :

तालिका संख्या–18

विवाद से सम्बन्धित पक्षों की कठिनाइयां

संख्या–80

क्र०	क्या नीचे लिखी कठिनाइयां हैं ?		उत्तरदाता संख्या	प्रतिशत
1.	कार्य पद्धति की	) हां	2	2—50
		) नहीं	78	97—50
2.	आर्थिक	) हां	00	0—00
		) नहीं	80	100—00
3.	एक व्यक्ति के नेतृत्व	) हां	1	1—25
		) नहीं	79	98—75

इससे स्पष्ट हो जाता है कि कठिनाइयों से सहमति व्यक्त करने वालों की संख्या प्राय: नगण्य है और जहां तक आर्थिक कठिनाई का ताल्लुक है, लोक-अदालत में आने वालों के समक्ष कोई आर्थिक कठिनाई नहीं आती। इस बात की पुष्टि लोकअदालत के निर्णयों में हुए व्यय की जानकारी से भी मिलती है। यहां की कार्यपद्धति सरल एवं सबके समझने लायक है। निर्णय की स्वीकृति के पक्ष में एक कारण यह भी रहा है कि अधिकांश लोगों का लोकअदालत के अध्यक्ष के नेतृत्व में विश्वास है और प्राय: सभी उत्तर-

दाताओं ने उनके प्रति आस्था व्यक्त की है। अध्यक्ष विवाद को सुलझाने में भेद-भाव नहीं करता और दोनों पक्षों को सही राय देता है, यह बात भी प्रायः सभी ने स्वीकार की है। केवल एक उत्तरदाता ने ही उनके नेतृत्व में शंका व्यक्त की है लेकिन वह भी लोकअदालत की उपादेयता के प्रति शंकालु नहीं है।

लोकअदालत के निर्णय की प्रतिक्रिया जानने के लिये सामान्य साक्षात्कार वाले उत्तरदाताओं के माध्यम से जो तथ्य सामने आये हैं, उनसे इस बारे में यथार्थ जानकारी प्राप्त होती है। लोकअदालत की बैठक में गांव का सामान्य व्यक्ति शामिल होता है और जिस व्यक्ति का विवाद होता है, उसके नाते-रिश्तेदार एवं मित्रगण भी बैठक में शामिल होते हैं।[1] लोकअदालत की बैठक में भाग लेने वालों को चार श्रेणियों में विभाजित किया है : (i) दर्शक, (ii) वादी-प्रतिवादी, (iii) पक्ष-विपक्ष में गवाही देने वाले, और (iv) जूरी (पंच)। उत्तरदाताओं में से कितने व्यक्तियों ने किस रूप में भाग लिया, इसकी जानकारी प्राप्त करने के बाद निर्णय की प्रतिक्रिया के बारे में इन उत्तरदाताओं की राय जानना अधिक उपयुक्त रहेगा। (तालिका संख्या-19, पृष्ठ 95)।

लोकअदालत से प्रभावित गांवों में किये गये साक्षात्कार (सामान्य साक्षात्कार) में यह पाया गया कि अधिकांश उत्तरदाताओं ने किसी न किसी रूप में लोकअदालत की कार्यवाही में भाग लिया है। जबकि ऐसे गांव या कस्बों के लोगों ने (विशेष साक्षात्कार) जहां लोकअदालत का प्रभाव कम है, लोकअदालत की कार्यवाही में बहुत कम भाग लिया है। कार्यवाही में भाग लेने वालों और भाग न लेने वालों की प्रतिक्रिया भिन्न-भिन्न हैं। सामान्य साक्षात्कार वाले 99.54 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया कि उन्होंने दर्शक के रूप में भाग लिया है, लेकिन विशेष साक्षात्कारियों में से एक भी उत्तरदाता ने वाद-विवाद, पक्ष-विपक्ष या जूरी के रूप में भाग नहीं लिया। इससे यह कह सकते हैं कि विशेष साक्षात्कारियों का (जो कि सामान्यतया बुद्धिजीवी एवं बाजार, कस्बों के निवासी हैं) लोकअदालत से निकट का सम्बन्ध नहीं है ये लोग लोक-अदालत के निर्णयों एवं कार्यों से भी विशेष परिचित नहीं हैं और इसी लिए इनकी प्रतिक्रिया भी स्पष्ट रूप से सामने नहीं आयी है।

लोकअदालत के बारे में प्रतिक्रिया जानने की दृष्टि से पूछे गये प्रश्नों के उत्तर में जो बातें सामने आयीं, उसे लोकअदालत में आस्था के कारणों के रूप में तालिक संख्या-20, पृष्ठ 97 में देख सकते हैं।

सामान्य और विशेष साक्षात्कार के उत्तरदाताओं की प्रतिक्रिया में

तालिका संख्या–19

लोकअदालत की कार्यवाहियों में भाग लेने का स्वरूप

सं०	किस रूप में भाग लिया ?	सामान्य साक्षात्कार संख्या 435						विशेष साक्षात्कार संख्या 31			
		उत्तर न देने वाले		भाग लेने वालों की		भाग न लेने वाले		भाग लेने वाले		भाग नहीं लेने वाले	
		सं०	प्रतिशत	सं०	प्रतिशत	सं०	प्रतिशत	सं०	प्रतिशत	सं०	प्रतिशत
1.	दर्शक	0	0	433	99.54	2	0.46	8	25.81	23	74.19
2.	सामान्य वाद-विवाद	19	4.37	238	54.71	178	40.92	0	0.00	31	100.00
3.	पक्ष-विपक्ष	4	.92	343	78.85	88	20.23	0	0.00	31	100.00
4.	जूरी (पंच)	23	5.29	163	37.47	249	57.24	0	0.00	31	100.00

भिन्नता साफतौर पर देखी जा सकती है। निर्णय के बारे में अपनी राय जाहिर करते हुए सामान्य उत्तरदाताओं में से 91.25 प्रतिशत ने यह मत व्यक्त किया कि लोकअदालत के निर्णय में न्याय मिलता है और न्याय मिलने के कारण ही उन्हें लोकअदालत के प्रति आस्था भी है। विशेष उत्तरदाताओं में से 64.52 प्रतिशत ने न्याय मिलने की बात स्वीकार की और 6.45 प्रतिशत ने कोई उत्तर नहीं दिया। उनके मन्तव्य से यह जाहिर होता है कि विशेष उत्तरदाताओं का लोकअदालत से सीधा सम्बन्ध एवं अनुभव नहीं होने पर भी उनका यह मानना है कि वहां न्याय मिलता है। लेकिन इनमें से कुछ (29.03) ने यह बात स्वीकार नहीं की कि वहां न्याय मिलता है। विशेष साक्षात्कार के उत्तरदाताओं ने अन्य प्रश्नों के सन्दर्भ में भी अपनी असहमति व्यक्त की है। कार्य पद्धति की सरलता, आश्रम का कार्य और ग्राम-दान-विचार का प्रभाव आदि प्रश्नों के उत्तर में इन्होंने सामान्य साक्षात्कार के उत्तरदाताओं से भिन्न मत व्यक्त किया है। कुछ लोगों ने समान मत भी व्यक्त किया है। भिन्न मत व्यक्त करने वालों से प्रतिप्रश्न करने पर स्पष्ट उत्तर नहीं प्राप्त हो सके। यहां यह ध्यान रखना चाहिये कि ये विशेष उत्तरदाता ऐसे हैं जिनका लोकअदालत से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। इनमें से कुछ लोग स्थानीय पूर्वाग्रह से ग्रस्त भी हो सकते हैं यथा वकील, सरकारी कर्मचारी आदि। ये लोकअदालत के बारे में स्पष्ट राय नहीं रखते। इन लोगों से असहमति के कारण जानने का भी प्रयास किया गया लेकिन खास जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी। बातचीत के दौरान जो बातें सामने आयीं उस पर से कुछ बातें इस रूप में क्रमबद्ध की जा सकती हैं :

(1) विशेष उत्तरदाताओं की राय में लोकअदालत आदिवासी, अशिक्षित एवं पिछड़े क्षेत्र में ही एक हद तक सफल हो सकती है। उनकी धारणा है कि ऐसी संस्था विकसित समाज की गुत्थियों एवं मानसिक उलझाव को हल करने में सक्षम नहीं हो सकती।

(2) इनमें से कुछ लोग किन्हीं व्यक्तिगत कारणों से भी लोकअदालत के बारे में अनुकूल राय नहीं रखते।

(3) लोकअदालत की सरल व्यवस्था मौजूदा पेचीदा कानूनी मुद्दों के साथ कैसे मेल खा सकती है, यह उनके मन में स्पष्ट नहीं है।

(4) लोकअदालत की सरल, सीधी सुलभ एवं खुली न्याय पद्धति का कोर्ट के नियमों, कानूनों एवं वकील आदि व्यवस्था आदि के साथ कैसे मेल बैठे, यह उनके दिमाग में साफ नहीं है और कानून

तालिका संख्या–20

लोक अदालत में आस्था के कारण

क्र०	आस्था के कारण	सामान्य साक्षात्कार संख्या 435				विशेष साक्षात्कार संख्या 31					
		सहमति		असहमति		सहमति		असहमति		उत्तर नहीं दिया	
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
1.	न्याय मिलना	400	91.15	35	8.05	20	64.52	9	29.03	2	6.45
2.	कार्य पद्धति की सरलता	339	77.93	96	22.07	8	25.81	21	67.74	2	6.45
3.	माध्यम का कार्य	16	3.68	419	96.32	16	51.61	13	41.94	2	6.45
4.	प्रामाणिक विचार	225	51.72	210	48.28	1	3.22	28	90.33	2	6.45
5.	जाति संगठन	6	1.38	429	98.62	2	6.45	27	87.10	2	6.45

एवं व्यवस्था का प्रश्न सामने आने पर लोकअदालत जैसी व्यवस्था में अधिकार एवं कार्य-क्षेत्र जैसे प्रश्न भी इनके दिमाग को उलझन में डाल देते हैं ।

उक्त कारणों से बुद्धि एवं कानून की उलझनों में उलझा व्यक्ति लोक-अदालत के बारे में स्पष्ट राय रखने में कठिनाई महसूस करता हुआ ही पाया जाता है । फिर भी विशेष उत्तरदाताओं ने जो उत्तर दिये हैं, उनमें लोक-अदालत के अस्तित्व एवं उपादेयता को एक सीमा तक तो स्वीकार किया ही है ।

संक्षेप में, उत्तरदाताओं द्वारा व्यक्त भाव निम्न प्रकार क्रम बद्ध किये जा सकते हैं—

(1) निर्णय के बारे में वादी-प्रतिवादी की सामान्य प्रतिक्रिया यह देखने में आयी कि दोनों पक्ष यह स्वीकार करते हैं कि यहां न्याय मिलता है । न्याय भले ही उनके पक्ष में नहीं जाये, पर न्याय मिलता है, यह विश्वास मौजूद है ।

(2) वादी-प्रतिवादी के निकटस्थ लोग, नाते-रिश्तेदार भी यह स्वीकार करते हैं कि लोकअदालत के निर्णय में सही न्याय निहित रहता है । यद्यपि कई ऐसे उदाहरण भी देखते में आये हैं जिसमें कोई पक्ष जूरी की नियुक्ति में इस बात का ध्यान रखता है कि वह उसका पक्ष ले । परन्तु खुली निर्णय-प्रक्रिया के कारण इस प्रकार की स्वार्थ वृत्ति चलने की गुंजाइश बहुत कम रहती है ।

(3) सामान्य उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया की लोकअदालत की निर्णय-प्रक्रिया को देखते हुए तथ्यों के आधार पर सही न्याय मिलने का विश्वास मजबूत होता है । इन लोगों (सामान्य साक्षात्कार) में से अधिकांश ने लोकअदालत की कार्यवाही में किसी न किसी रूप में भाग लिया है ।

(4) विशेष साक्षात्कार वाले उत्तरदाताओं ने लोकअदालत के निर्णय के प्रति एक सीमा तक शंका व्यक्त की है । उनका लोकअदालत के साथ प्रत्यक्ष या निकट का सम्बन्ध न होने के कारण उसके निर्णय के बारे में शंकायें हैं । उन शंकाओं के होते हुए भी उनके द्वारा लोक-अदालत की स्वीकृति एवं उसकी उपादेयता को स्वीकार किया गया है ।

(5) लोकअदालत का कार्य क्षेत्र आदिवासी समाज तक सीमित होने के कारण गैर आदिवासी क्षेत्र के लोगों के मन में इसकी सफलता के प्रति शंका है। उनके मन में यह बात भी है कि शायद गैर आदिवासी समाज में ऐसी व्यवस्था उतनी सफल न हो सके जितनी आदिवासी समाज में हो रही है। गैर आदिवासी समाज में वह कितनी सफल होगी, उसकी क्या प्रक्रिया होगी, यह प्रश्न अभी अनुत्तरित है।

(6) लोकअदालत द्वारा दिये गये निर्णयों के बारे में वादी-प्रतिवादी किस सीमा तक सन्तुष्ट होते हैं, उसका एक प्रमाण यह है कि हमने जिन विवादों एवं उन पर लोकअदालत द्वारा दिये गये निर्णयों का अध्ययन किया है, उनमें एक भी ऐसा निर्णय सामने नहीं आया जिसको उन्होंने अंगीकार नहीं किया हो और जिससे असन्तुष्ट होकर निर्णय के विरुद्ध सरकारी न्यायालय की शरण ली हो। उसका दूसरा प्रमाण यह है कि हमने जिन 80 वादी-प्रतिवादियों के मामलों का (67 विवादों का) बारीकी से अध्ययन किया है, उनमें 9 ऐसे विवाद भी सामने आये हैं जो पहले वैधानिक न्यायालयों के समक्ष न्याय-प्राप्ति हेतु प्रस्तुत किये गये थे और जिन पर वादी-प्रतिवादी का काफी रुपया और साल-दो साल का समय बरबाद हो गया था किन्तु फिर भी जिन पर वैधानिक न्यायालयों से निर्णय नहीं मिल सका और जिनका लोकअदालत ने एक-दो पेशियों के बाद ही दोनों पक्षों को सन्तोषप्रद निर्णय देकर समाधान कर दिया और पारस्परिक कटुता एवं तनाव से मुक्ति दिलाकर दोनों पक्षों को एक दूसरे का शुभेच्छु और हितचिन्तक बना दिया लेकिन लोकअदालत के निर्णय के विरुद्ध सरकारी अदालत का द्वार खटखटाये जाने से सम्बन्धित विवाद इनमें से एक भी देखने में नहीं आया।

संदर्भ

1. अध्याय सात भी देखें।

9

लोक अदालत और सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन

सामाजिक परिस्थिति

जैसा कि प्रारम्भ में कहा गया है, लोकअदालत मात्र न्यायिक संस्था नहीं है बल्कि यह न्याय के साथ-साथ-साथ समाज के अन्य अवयवकों को प्रभावित करने वाली समाजसेवी संस्था भी है। समाज-रचना में आयी गलत रूढ़ियों, परम्पराओं और असामाजिक व्यवहार को परिष्कृत करने का प्रयास करना भी लोकअदालत का एक प्रमुख कार्य है। विवाद के निर्णय की प्रक्रिया के दौरान अध्यक्ष द्वारा किया गया मार्ग दर्शन इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। विभिन्न चर्चाओं के दौरान एवं लोकअदालत की कार्यवाही देखने से जो जानकारी मिली है, उसके आधार पर कहना चाहेंगे कि लोक-अदालत सामाजिक परिवर्तन में मददगार है और इससे समाज को एक नयी दिशा मिली है एवं नये मूल्य प्रतिष्ठापित हुए हैं। सामाजिक परिवर्तन की जो प्रक्रिया पिछले कई दशकों से सम्पूर्ण समाज में चल रही है, उसका प्रभाव इस क्षेत्र में भी पड़ा है। इस परिवर्तन में शहरीकरण, यातायात की सुविधा, संचार-साधनों का विकास, चल-चित्र, शिक्षा आदि सामाजिक परिवर्तन से प्रभावी तत्व इस क्षेत्र में भी समान रूप से प्रभावी हैं। लेकिन लोकअदालत एवं आश्रम की प्रवृत्तियों में परिवर्तन की प्रक्रिया को अधिक सजीव एवं गतिशील पाया गया। प्रस्तुत अध्याय में यह विचार करने का प्रयास किया गया है है कि लोकअदालत न्याय-कार्य के अलावा इस क्षेत्र के सामाजिक और आर्थिक जीवन को किस सीमा तक प्रभावित करती है। साथ ही साथ यह देखने का

प्रयास भी किया गया है कि इस क्षेत्र के लोग इस बात को किस सीमा तक स्वीकार करते हैं कि लोकअदालत सस्ता एवं सरल न्याय उपलब्ध करने के साथ-साथ उनके जीवन के सामाजिक-आर्थिक पक्ष को भी प्रभावित करती है।

आदिवासी समाज में परम्परागत रूढ़ियां अन्य समाज से अधिक पायी जाती हैं।[1] इनके सामाजिक जीवन का बड़ा भाग जातीय धर्म पर आधारित होता है। रोज के जीवन में इसका प्रभाव सहज में देख सकते हैं। विभिन्न आदिवासी समाजों में एक सी रूढ़ियां एवं परम्परा न होते हुए भी सामाजिक जीवन में इनकी जकड़न प्रायः समान रूप से देख सकते हैं। भूत-प्रेत, डायन, गाते का मेला, विवाह, मृत्यु की परम्परायें इनके जीवन को कठोरता से प्रभावित किया करती हैं।[2]

आदिवासी-प्रधान क्षेत्र को, अनेक अच्छी सांस्कृतिक परम्पराओं के बावजूद एक सीमा तक कई गलत एवं अमानुषिक परम्पराओं एवं आर्थिक पिछड़ेपन का शिकार मान सकते हैं। जैसे भूत-प्रेत की मान्यता यहां इतनी गहरी जड़ें जमाये हुये है कि कठिन से कठिन बीमारी में भी ओझा एवं भगत को बुलाकर उसे ठीक कराने का असफल प्रयास करते हुए बहु-संख्यक आदिवासियों को देखा जा सकता है। अंध विश्वास इस सीमा तक पाया गया है कि किसी महिला को डायन करार देने पर गांव के लोगों ने बिना सोचे-समझे अमानुषिक अत्याचार करके उसका जीना दूभर कर दिया और कुछ मामलों में तो गांव के लोगों ने उस महिला की इस सीमा तक पीटाई की कि वह एक प्रकार से मृत्यु की स्थिति तक ही पहुंच गयी। ओझा के कहने पर गांव के लोगों ने यह मान लिया था कि उक्त महिला डायन हो गयी है और गांव के लोगों को खा जाती है। इसी प्रकार के अनेक अन्य प्रकार के अन्ध विश्वास भी देखे जा सकते हैं।

विवाह एवं परिवार की अस्थिरता इस क्षेत्र में आम बात है। अन्य आदिवासी क्षेत्रों की भांति यहां भी विवाह एवं तलाक में सहजता पायी जाती है। इससे महिलाओं की सुदृढ़ स्थिति का भी अंदाज लगता है।[3] कई स्थितियों में तलाक व्यक्ति की गलत आदतों एवं गैर व्यक्ति के साथ सम्बन्ध के कारण भी होते पाये गये हैं। गरासिया आदिवासी समाज में तो तलाक इतना आसान पाया गया कि नाम मात्र की रकम देकर तलाक स्वीकार कर लिया जाता है।[1] लोकअदालत में आये विवादों की संख्या से भी इस बात की पुष्टि होती है कि इस क्षेत्र में तलाक एवं विवाह सम्बन्धी विवादों की संख्या सबसे अधिक है। भील, राठवा तथा नायका में तलाक सम्बन्धी परम्परायें प्रायः एक-सी पायी गयी हैं। लोकअदालत के अध्यक्ष एवं अन्य लोगों ने स्वीकार

किया कि करीब दो दशक पूर्व इस क्षेत्र में तलाक की जो स्थिति थी और पारिवारिक ढांचा जितना अस्थिर था, उतना अब नहीं है। अब तलाकों की संख्या कम हुई है और पारिवारिक स्थिरता आयी है। पहले तलाक की प्रवृत्ति इतनी अधिक बढ़ी हुई थी छोटे-छोटे प्रश्नों पर विवाह-विच्छेद हो जाया करता था। लोकअदालत की मान्यता है कि पारिवारिक अस्थिरता श्रेयस्कर नहीं है और जहां तक सम्भव हो, इसे रोका जाना चाहिये। लेकिन इसका यह अर्थ भी नहीं है कि वह तलाक को बन्द करने की नीति की पोषक है। वह सामान्यतया ठोस कारण होने पर ही तलाक स्वीकार करती है। आदिवासी समाज की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थिति को देखते हुए पारिवारिक अस्थिरता के कारण कई कठिनाइयां होती पायी गयीं, जैसे (1) बच्चों की देख-भाल की (2) तलाक होने पर लेन-देन के कारण पड़ने वाला आर्थिक भार और (3) सम्पत्ति का बंटवारा आदि।

सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन के क्षेत्र में लोकअदालत ने जीवन के कई पक्षों को प्रभावित किया है। परिवर्तन के इन पक्षों को इस रूप में विभाजित करना चाहेंगे—

(1) संस्थात्मक—विवाह, जाति, परिवार आदि संस्थाओं के बारे में विचार-परिवर्तन।

(2) मूल्यात्मक—स्त्रियों एवं सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्ग के सम्बन्ध में नये मूल्यों की स्थापना, अपराध की स्वैच्छिक स्वीकृति, प्रायश्चित, हृदय-परिवर्तन आदि भावनात्मक मूल्यों का विकास और नैतिकता सम्बन्धी मूल्यों की प्रतिष्ठा।

(3) आचरणात्मक—स्त्रियों के प्रति व्यवहार में सुधार, आदिवासी एवं गैर आदिवासी के आपसी व्यवहार के नये मानदंड और महाजन के साथ व्यवहार आदि में परिवर्तन।

(5) सांस्कृतिक—परम्परागत सांस्कृतिक मूल्यों में जैसे भूत-प्रेत, डायन, भगत आदि सम्बन्धी धारणाओं में परिवर्तन।

(4) आर्थिक परिवर्तन—उन्नत कृषि तरीकों का प्रचलन, सिचाई-साधनों का विस्तार, आर्थिक विवादों का निपटारा और आर्थिक शोषण की समाप्ति।

सामाजिक प्रभाव

लोकअदालत से प्रभावित गांवों के उत्तरदाताओं में से शत प्रतिशत की

राय है कि तलाक सम्बन्धी विवादों की जो स्थिति पहले थी, उसमें परिवर्तन आया है और विवादों की सख्या कम हुई है। यह भी स्वीकार किया गया कि लोकअदालत से सम्पर्क बढ़ने के साथ-साथ यह धारणा भी मजबूत हुई है कि क्षणिक आवेश में आकर बिना किसी खास कारण के तलाक देना ठीक नहीं है और स्थायी पारिवारिक जीवन बिताने का प्रयास किया जाना चाहिये।

आर्थिक परिस्थितियों में परिवर्तन का भी सामाजिक जीवन पर प्रभाव पड़ता पाया गया। खेती में रोजगार का क्षेत्र बढ़ने और अधिक मात्रा में काम मिलने आदि के कारण पारिवारिक स्थायित्व में बढ़ोत्तरी हुई है। यहां यह भी स्वीकार करना चाहिये कि गैर आदिवासी हिन्दू समाज में पारिवारिक स्थायित्व सम्बन्धी जो स्थिति है, उसका प्रभाव भी इन पर पड़ा है और गैर आदिवासी समाज से सम्पर्क बढ़ने से उनकी व्यवस्था को अच्छा मानने की भावना भी मजबूत हुई है। विशेष साक्षात्कार वाले उत्तरदाताओं में से भी 83-87 प्रतिशत यह मानते हैं कि तलाक एवं विवाह सम्बन्धी विवादों में कमी लाने में लोकअदालत मददगार हुयी है।

पारिवारिक तनाव सम्बन्धी विवादों में भी कमी होने में लोकअदालत का प्रभाव एक कारण है। उसका यह अनवरत प्रयास रहा है कि विवादों की संख्या घटे और विवाद उठें भी तो उन्हें स्थानीय स्तर पर ही सुलझा लिया जाय। पारिवारिक तनाव की कमी के बारे में भी सामान्य एवं विशेष दोनों प्रकार के उत्तरदाता प्रायः वही राय रखते हैं जो तलाक एवं विवाह के सम्बन्ध में है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है पहले आदिवासी समाज में हर संकट भगत-ओझा को याद करना आम बात थी लेकिन लोकअदालत से सम्पर्क के बाद के समय में इसमें अन्य प्रभावों का भी कुछ कारण हो सकता है। अनेक गलत मान्यताओं पर से उनका विश्वास हटा है। ऐसा तो नहीं कह सकते कि यहां के लोगों ने भूत-प्रेत पर विश्वास करना छोड़ दिया है पर हां, विश्वास पहले से कम अवश्य हुआ है। भूत-प्रेत में विश्वास का प्रश्न व्यक्ति की भावना के साथ जुड़ा होने के कारण इस बारे में निश्चित आंकड़े प्रस्तुत करना संभव नहीं। इतना ही कहना उचित होगा कि भगत एवं ओझा आदि का जो प्रभाव पहले था, वह अब नहीं रहा है।

इसी से जुड़ा हुआ प्रश्न अन्य अन्ध विश्वासों का भी है। अन्ध विश्वास काफी कम हुये हैं, यह सहज में देखा जा सकता है। अध्ययन के दौरान एक विवाद ऐसा भी आया जिसमें एक महिला को डायन करार दिया गया था।

तालिका संख्या—21

उत्तरदाताओं की राय में लोकअदालत का सामाजिक प्रभाव

क्रं०	प्रभाव का प्रकार	सामान्य साक्षात्कार संख्या 435				विशेष साक्षात्कार संख्या 31			
		सहमति		असहमति		सहमति		असहमति	
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
1.	विवाह एवं तलाक सम्बन्धी विवाद में कमी	435	100—00	00	00—00	26	83—87	5	16—13
2.	पारिवारिक तनाव में कमी	435	100—00	00	00—00	25	80—65	6	19—35
3.	भूत-प्रेत में विश्वास में कमी	398	91—49	37	8—51	15	48—39	16	51—61
4.	अन्ध विश्वास में कमी	433	99—34	2	0—66	31	100—00	0	0—00
5.	जातिगत एकता आयी है	74	17—01	361	82—99	29	93—55	2	6—45
6.	छुआछूत में कमी आयी है	434	99—77	1	0—33	31	100—00	0	0—00

डायन करार देने वाले व्यक्ति का कहना था कि उक्त महिला ने उसके पिता को खा लिया अर्थात् मार दिया है। उस व्यक्ति के साथ कुछ अन्य लोगों ने भी उसे डायन बताया। महिला ने ग्राम सभा में शिकायत की। ग्राम सभा ने निर्णय दिया कि डायन कहने वाला पुरुष दोषी है और डायन कहना ठीक नहीं है क्योंकि कोई महिला किसी को कैसे खा सकती है ? कुछ दिन चुप रहने के बाद उस व्यक्ति ने उस महिला को पुनः डायन कहना प्रारम्भ कर दिया। विवाद फिर लोकअदालत में आया। इस पर विचार किया गया और सबने उस व्यक्ति को दोषी करार दिया एवं उसे अपनी मान्यतायें बदलने की सलाह दी। उस व्यक्ति ने भी अपनी गलती स्वीकार करली। शायद उसके मन में भी यह बात बैठ गयी कि कोई महिला डायन नहीं हो सकती।[5] ऊपर दी गई तालिका से भी यह तथ्य सामने आता है कि अन्ध विश्वासों में कमी आयी है।

आपसी सद्भाव बढ़ाने के लिये आवश्यक है कि गांव में रहने वाली विविध जातियों के बीच जाति-भेद के कारण भेद-भाव न हो। विविध जातीय ग्राम में राजनैतिक चेतना में वृद्धि होने के कारण जाति स्तर पर पारस्परिक सम्बन्धों में अक्सर कटुता पायी जाती है। यह क्षेत्र भी इसका अपवाद नहीं है। आदिवासी-प्रधान गांवों में भी गैर आदिवासी पाये जाते हैं और यदि केवल आदिवासी भी हैं तो भी आदिवासी उपजातियां पायी जाती हैं। उत्तरदाताओं का मानना है कि गांव की विभिन्न जातियों में एकता का भाव बढ़ाने में लोकअदालत मददगार हुई है। लोकअदालत का कार्य एवं प्रभाव-क्षेत्र दो प्रकार का देखने में आया। एक तो ऐसे ग्रामदानी गांव हैं जहां ग्राम सभा है और जहां के लोग लोकअदालत के कार्य एवं आश्रम के साथ सक्रिय रूप से जुड़े हैं। इस प्रकार के गांवों में आश्रम की ओर से आर्थिक कार्यक्रम भी चलते पाये गये। इन गांवों के लोगों ने स्वीकार किया कि लोक-अदालत एवं आश्रम के कारण जातीय सद्भाव बढ़ा है। दूर के गांवों या कम प्रभावित गांवों का लोकअदालत या आश्रम से इतना सम्बन्ध नहीं जुड़ सका है कि वह विभिन्न जातियों के बीच एकता लाने में मददगार हो सके। इन गांवों के विवाद लोकअदालत में कम जाते हैं फिर भी जो विवाद आते हैं, उन्हें सुलझाने का काम लोकअदालत करती है और उन गांवों में भी जाति-गत एकता के दर्शन होने लगे हैं। विशेष साक्षात्कार वाले उत्तरदाताओं का भी विश्वास है कि लोकअदालत के कारण जातीय एकता बढ़ी है।

छुआछूत के सम्बन्ध में सामान्य एवं विशेष दोनों प्रकार के उत्तरदाताओं की राय प्रायः एकसी है कि लोकअदालत के कारण छुआछूत में कमी आयी

है। यह कमी गांवों में घूमने और लोगों के घरों में जाने पर साफतौर पर देखने में आयी।

आर्थिक प्रभाव

सामान्य एवं विशेष दोनों प्रकार के उत्तरदाताओं ने लोकअदालत के आर्थिक प्रभाव को स्वीकार किया है। लोकअदालत में आये विवादों को देखने से यह बात स्पष्ट होती है कि इसका लोगों के आर्थिक जीवन पर प्रभाव पड़ता है। लोकअदालत ने लेन-देन सम्बन्धी जो विवाद सुलझाये हैं उनके कारण सम्बन्धित लोगों की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है। लोकअदालत का आर्थिक प्रभाव दो रूपों में पड़ता पाया गया :

(क) लोकअदालत के निर्णयों का आर्थिक प्रभाव।

(ख) आश्रम के कारण आर्थिक स्थिति में सुधार और उसका प्रभाव।

सम्बद्ध तालिका (तालिका संख्या-22) से प्रभाव की जानकारी मिलती है। भूमि सम्बन्धी विवादों के सुलझाने से लोगों को राहत प्राप्त हुई है। सभी सामान्य उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया है कि भूमि सम्बन्धी विवादों में कमी आयी है। विशेष साक्षात्कार वाले उत्तरदाताओं की राय में भिन्नता देखने को मिलती है। पर सामान्य एवं विशेष दोनों ही प्रकार के उत्तरदाताओं के उत्तर से यह तो सिद्ध होता ही है कि भूमि सम्बन्धी विवादों में दो प्रकार का परिवर्तन आया है : (1) जो विवाद होता है और लोक-अदालत में आता है उसका फैसला आसानी से लोकअदालत में हो जाता है; और (2) भूमि सम्बन्धी विवाद कम से कम हों, इसका प्रयास भी हुआ है। देखने में आया है कि भूमि सम्बन्धी विवादों में महाजन एवं किसानों के आपसी विवाद ज्यादा होते थे। गैर आदिवासी किसानों एवं महाजनों के साथ होने वाले भूमि सम्बन्धी विवाद शोषण से जुड़े हुये थे। ये लोग आदि-वासियों की जमीन हड़पने के प्रयास करते रहते थे। लेकिन आश्रम के कार्य एवं लोकअदालत की न्याय-पद्धति ने इस परिस्थिति को बदला है। अब महाजनों या गैर आदिवासी किसानों में भूमि सम्बन्धी विवाद कायम रखने की प्रवृत्ति कम हुई है और विवादों की संख्या में भी कमी आयी है। इसमें लोकअदालत की प्रमुख भूमिका रही है।

तालिका में यह स्वीकार किया गया है कि कृषि-विकास के कारण रोजगार में वृद्धि हुई है। यहां यह स्पष्ट करना चाहेंगे कि यद्यपि लोकअदालत के प्रत्यक्ष कार्यों से रोजगार में किसी प्रकार की वृद्धि नहीं हुई है लेकिन लोकअदालत में आने के कारण लोगों का आश्रम से सम्पर्क बढ़ा, और उन्हें

तालिका संख्या—22

उत्तरदाताओं की राय में लोकअदालत का आर्थिक प्रभाव

क्रं०	प्रभाव का प्रकार	सामान्य साक्षात्कार संख्या 435				विशेष साक्षात्कार संख्या 31			
		सहमति		असहमति		सहमति		असहमति	
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
(1)	भूमि सम्बन्धी विवाद में कमी	435	100—00	00	00—00	18	58—06	13	41—94
(2)	आश्रम के प्रयास से रोजगार में वृद्धि	354	81—38	81	18—62	10	32—26	21	67—74
(3)	कृषि का विकास हुआ	420	96—55	15	3—45	25	80—65	6	19—35
(4)	महाजन के शोषण में कमी	435	100—00	00	00—00	22	70—97	9	29—03
(5)	महाजन का पहले से सही हिसाब रखना	432	99—31	3	0—69	11	35—48	20	64—52
(6)	जंगल के अधिकारियों के शोषण में कमी	435	100—00	00	00—00	21	67—75	10	32—26

आश्रम में चल रहे उन्नत कृषि के प्रयासों को देखने का मौका मिला। उससे उनको कई प्रकार के आर्थिक लाभ उठाने के लिये प्रोत्साहन मिला, जैसे भूमि-सुधार द्वारा, कृषि की सुधरी पद्धति के प्रयोग द्वारा और नयी तकनीक अपनाने के द्वारा। रोजगार में वृद्धि को दो सन्दर्भों में देखा जा सकता है। एक तो गांव में ही सिंचाई की सुविधा बढ़ने, आधुनिक कृषि-पद्धति अपनाने एवं भूमि-सुधार के कारण पहले से अधिक लोगों को रोजगार मिला। दूसरे, आश्रम से सम्पर्क बढ़ने के कारण गांव में या गांव से बाहर भी काम का क्षेत्र बढ़ा। जीवनशाला के जरिये आश्रम में दिये जाने वाले तकनीकी ज्ञान के कारण भी इस क्षेत्र में रोजगार बढ़ा है। इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से इसे लोकअदालत का आर्थिक प्रभाव माना जा सकता है। यहां यह स्वीकार करना चाहिये कि चूंकि आश्रम और इस प्रकार लोकअदालत का भी सघन कार्यक्षेत्र आदिवासी प्रधान गांवों तक ही फैला हुआ है इसलिए गैर आदिवासी गांवों में अपेक्षाकृत कम काम हुआ है। यही कारण है कि लोकअदालत का आर्थिक प्रभाव उन गांवों के निवासियों पर उस सीमा तक नहीं पड़ा है। इसे आश्रम एवं लोकअदालत के कार्य की सीमा भी मान सकते हैं।

आर्थिक प्रभाव-क्षेत्र को थोड़ा गहराई से देखने पर जो तथ्य सामने आये हैं, उस पर से यह कहा जा सकता है कि लोकअदालत का तीन अन्य रूपों में भी आर्थिक प्रभाव पड़ा है—यथा (1) महाजन के शोषण में कमी। (2) महाजन द्वारा पहले से अधिक सही हिसाब रखा जाना। (3) जंगल के अधिकारियों द्वारा शोषण में कमी।

यहां भी सामान्य एवं विशेष उत्तरदाताओं के उत्तर में भिन्नता है। भिन्नता का एक बड़ा कारण संभवतः यह है कि विशेष उत्तरदाता इस प्रकार के शोषण के स्वयं भुक्तभोगी नहीं रहे हैं। शायद इसी कारण उन्हें यह प्रभाव सामान्य उत्तरदाताओं (जो प्रत्यक्ष रूप से जुड़े हुये हैं) से कम स्पष्ट दिखलाई देता है। लेकिन फिर भी यह तो किसी भी हद तक नहीं कह सकते कि विशेष उत्तरदाताओं ने इन प्रभावों को अस्वीकार किया है।

आदिवासी समाज महाजन के शोषण से बुरी तरह पीड़ित था। एक सीमा तक वह आज भी इस शोषण से पीड़ित है। लेकिन लोकअदालत एवं आश्रम के कार्यों ने इस पीड़ा को कम किया है और ऐसा वातावरण बनाया है जिससे एक ओर तो महाजनों के साथ उनका सद्भाव बढ़ा है और महाजनों ने पहले से अधिक सही हिसाब रखना शुरू कर दिया है और दूसरी ओर लेन-देन सम्बन्धी विवादों का फैसला लोकअदालत में होने के कारण महाजन

वर्ग के मन में भय कायम हुआ है। भय इस बात का कि गलत काम करने, गलत हिसाब रखने और परेशान करने पर उन्हें लोकअदालत में जाना पड़ेगा और वहां उनके विपक्ष में निर्णय होगा। सद्भाव इस कारण बढ़ा कि लोकअदालत एवं आश्रम दोनों ही सम्पूर्ण समाज में सद्भाव कायम करने के लिए प्रयत्नशील हैं और दोनों ही महाजन एवं आदिवासी सभी को मेहनत की कमाई एवं इज्जत की रोटी खाने की प्रेरणा देते रहते हैं। लोकअदालत में आने-जाने और अध्यक्ष की शिक्षा-प्रधान बातें सुन-सुन कर महाजन वर्ग भी प्रभावित हुआ है। यही कारण है कि अनेक महाजनों ने लोकअदालत के समक्ष अपनी गलती स्वीकार की है और सही हिसाब रखने एवं आदि-वासियों को परेशान न करने का निर्णय भी किया है। कंवाट, नसवाडी, कोसिन्द्रा आदि बाजारों के अनेक महाजनों ने अपना व्यवहार एक सीमा तक बदला है और विशेप उत्तरदाताओं तक के बड़े भाग ने यह बात स्वीकार की है।

इस क्षेत्र में सरकारी कर्मचारियों, खासकर, जंगल के कर्मचारियों के दुर्व्यवहार की शिकायतें बराबर देखने में आयीं। जंगल में रहनों वालों का जीवन जंगल में प्राप्त होने वाली वस्तुओं पर काफी हद तक निर्भर रहता है। लोगों से बातचीत के दौरान सुनने में आया कि आश्रम की स्थापना के पूर्व इस क्षेत्र में या जिन क्षेत्रों में आश्रम का प्रभाव नहीं है, वहां, जंगल के कर्मचारियों द्वारा आदिवासियों को परेशान किये जाने की घटनायें अधिक होती थीं लेकिन अब जागृति एवं आत्मविश्वास बढ़ने के कारण यहां के लोगों में हिम्मत आयी है और सरकारी कर्मचारियों द्वारा परेशान किये जाने की प्रवृत्ति भी कम हुई है इसमें लोकअदालत का महत्त्वपूर्ण योगदान है। लोक-अदालत ने ऐसे कई विवादों को सुलझाया है जिसमें जंगल के अधिकारियों द्वारा आदिवासियों के साथ अत्याचार किये जाने की शिकायत थी।[6] इन विवादों में कर्मचारियों ने अपनी गलती स्वीकार करली और एक विवाद में तो ली गयी रकम भी वापस करदी। यही स्थिति पुलिस के साथ क्षेत्र के लोगों के आपसी सम्बन्ध के बारे में भी है। पुलिस द्वारा परेशान किये जाने की घटनायें पहले यहां आम बात थी, लेकिन लोकअदालत के कारण अब उस स्थिति में सुधार हुआ है एवं कर्मचारियों का अत्याचार कम होने के साथ-साथ आपसी सद्भाव भी बढ़ा है।

कमजोर वर्ग और लोकअदालत

यह प्रश्न सहज में सामने आता है कि समाज के कमजोर वर्ग को लोक-अदालत किस सीमा तक प्रभावित करती है? इस प्रश्न के उत्तर में यही

कहा जाना चाहिये कि लोकअदालत की पूरी कार्य-प्रक्रिया ही ऐसी है जिससे समाज का कमजोर वर्ग प्रभावित होता है। न्यायिक या अन्य कार्यों का प्रभाव समाज के कमजोर वर्ग पर ही अधिक देखने में आया। इस क्षेत्र में कमजोर सामाजिक-आर्थिक स्थिति के लोगों का आधिक्य होने के कारण यह स्वाभाविक भी है। आश्रम एवं लोकअदालत के कार्य की दृष्टि भी यही रही है कि समाज के कमजोर वर्ग को मदद मिले।

क्या तलाक एवं विवाह सम्बन्धी विवादों का अधिक संख्या में आना समाज में स्त्रियों के स्थान का दिग्दर्शक है ? और क्या भूमि या लेन-देन सम्बन्धी विवादों की संख्या भूमि-व्यवस्था की खामियों का परिणाम है ? इन प्रश्नों का उत्तर एक अंश में ऊपर के अध्ययन से प्राप्त होता है। इस क्षेत्र में समाज में स्त्रियों का स्थान महत्त्वपूर्ण है। तलाक, पुनर्विवाह आदि के विवादों का अधिक संख्या में आना स्त्रियों की मजबूत स्थिति का परिचायक है। यह देखने में आया है कि स्त्रियां लोकअदालत की बैठकों में खुलकर भाग लेती हैं और अपनी बात निःसंकोच भाव से सभा के सामने रखती हैं। ऐसा भी देखने में आया जब स्त्रियां स्वयं पुरज़ोर शब्दों में तलाक की मांग करती हैं। पारिवारिक तनाव की स्थिति में स्त्री अपने पिता के घर जाती है और स्वयं माता, पिता या अन्य किसी नाते-रिश्तेदार के साथ लोकअदालत में आकर अपनी बात कहती है और न्याय प्राप्त करती है। ये बातें समाज में स्त्रियों की सुदृढ़ स्थिति को व्यक्त करती हैं। लेकिन कई परिस्थितियों में स्त्रियां कमजोर भी पायी गयीं यथा अनेक घटनाओं में स्त्रियों को सताये जाने और मारे-पीटे जाने के तथ्य सामने आये हैं। अन्ध विश्वासों के कारण किसी स्त्री को डायन घोषित करना, उसको हीन समझे जाने का मजबूत प्रमाण है। अनेक परिस्थितियों में स्त्रियों को परिवार एवं समाज में अपमान सहना पड़ता है। इन सारी बातों को देखते हुए कहना चाहेंगे कि आदिवासी समाज में भी स्त्रियों की एक सीमा तक ही सुदृढ़ स्थिति है और वे एक सीमा तक ही पुरुष की बराबरी करती हैं। लेकिन कई प्रकार के व्यवहारों में उन्हें भी उपेक्षित रहना पड़ता है। कुल मिलाकर स्त्रियों को कमजोर वर्ग मे शामिल करना उचित है। लोकअदालत उनकी स्थिति मजबूत करने एवं उन्हें समान दर्जा देने के प्रयास में विश्वास करता है। यह प्रयास लोक-अदालत की कार्यवाही के दौरान देखा जा सकता है। हम देख सकते हैं कि लोकअदालत की कार्यवाही के समय स्त्रियों को समान स्तर पर रखा जाता है। उन्हें अपनी बात कहने की पूरी छूट होती है और पूरी बात कहने की प्रेरणा दी जाती है। इसके साथ-साथ पर्दा-प्रथा समाप्त करने और शिक्षा में

रुचि लेने की प्रेरणा भी उन्हें दी जाती है ।

जमीन एवं लेन-देन सम्बन्धी विवादों का अधिक संख्या में आना यहां की परम्परागत व्यवस्था में आयी शिथिलता एवं बाहरी हस्तक्षेप का परिणाम है। जैसा कि पहले कहा गया है गैर आदिवासी समाज यहां के मूल निवासियों की जमीन हथियाने एवं उनका शोषण करने का भरसक प्रयास करता रहा है। लोकअदालत इस प्रयास को रोकने का प्रयत्न कर रही है। अतः यह स्वाभाविक है कि लोकअदालत में इस प्रकार के विवाद जायें। जमीन सम्बन्धी विवाद दो प्रकार के आते हैं—(1) आदिवासी एवं गैर आदिवासी के बीच का विवाद (2) आदिवासियों के आपसी विवाद। सरकार ने आदिवासियो की जमीन की सुरक्षा के लिये जो कानून बनाये हैं उससे गैर आदिवासियों से सम्बन्धित विवादों की संख्या में कमी आई है। परन्तु आदिवासियों में आपसी विवाद तो आज भी होते ही हैं। गांव में भूमि ही मुख्य सम्पत्ति होने के कारण इससे सम्बद्ध विवादों की संख्या अधिक होना स्वाभाविक है। यहां हमें स्वीकार करना चाहिये कि लोकअदालत समाज के सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्ग के हितों की रक्षा करके उसे न्याय देने का प्रयास करती है।

सारांश

(1) सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया सतत चलती रहती है। किसी विशेष क्षेत्रीय समाज पर सम्पूर्ण समाज के परिवर्तन की प्रक्रिया का प्रभाव पड़ता है। आधुनिक युग में शहरीकरण, यातायात के साधनों का विकास, संचार साधनों का विकास, शिक्षा का प्रसार आदि सामाजिक परिवर्तन के ऐसे कारक हैं जिन्हें सब जगह देखा जा सकता है। इस आदिवासी क्षेत्र में जो सामाजिक परिवर्तन हो रहा है, उसमें इन कारणों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है, पर इतना अवश्य है कि लोकअदालत ने इन कारणों के प्रभाव को अधिक तीव्र किया है।

(2) आदिवासी समाज में रूढ़ियों एवं अन्ध विश्वासों का अधिक प्रभाव है। भूत-प्रेत, डायन, भगत-ओझा आदि में विश्वास के कारण यहां के लोगों को अनेक प्रकार के कष्ट सहते देखा जा सकता है। लोक-अदालत के माध्यम से इन अन्धविश्वासों में कमी आयी है। वैसे इस कमी में अन्य कारणों का योगदान भी स्वीकार किया जाना चाहिए। पारिवारिक अस्थिरता, तलाक एवं पुनर्विवाह इस क्षेत्र में

आम बात है। लोकअदालत ने पारिवारिक स्थिरता लाने में मदद पहुंचायी है।

(3) सर्वेक्षण में प्राप्त तथ्यों पर से यह कहने की स्थिति है कि लोक-अदालत ने सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र में नये विचार एवं नये मूल्यों को स्वीकार करने के अनुकूल वातावरण बनाया है एवं शिक्षा में रुचि पैदा करने में भी लोकअदालत का योगदान रहा है। सांस्कृतिक परम्पराओं एवं गलत मान्यताओं के स्थान पर नई मान्यतायें स्थापित करने की दिशा में भी प्रगति हुई है। एक सीमा तक जाति, परम्परा, विवाह आदि क्षेत्रों में नये मूल्यों को स्वीकार किया जा रहा है।

(4) समाज-परिवर्तन की इस प्रक्रिया पर अन्य सामाजिक-आर्थिक कारकों का प्रभाव भी पड़ता देखा जा सकता है। लोकअदालत सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन के अनेक कारणों में एक कारक है। लेकिन यह कारक अन्य कारकों से अधिक प्रभावी है। आवश्यकता इस बात की है कि समाज-परिवर्तन की प्रक्रिया में लोकअदालत द्वारा स्थापित स्वशासन के मूल्यों को अधिक व्यापक स्वीकृति दी जाय।

(5) लोकअदालत की कार्यवाही के अवलोकन, ग्रामदानी गांवों की प्रगति की स्थिति एवं लोकअदालत और समाज-परिवर्तन की प्रक्रिया सम्बन्धी बातों पर विचार करने पर यह देखने में आया कि लोक-अदालत की प्रक्रिया एवं कार्य-पद्धति में समाज-परिवर्तन के तत्वों पर अधिक बल दिया जाता है।

संदर्भ

1. देखें, हरिशचन्द्र उप्रेती, उपरोक्त।
2. देख सकते हैं, स्टेफन फुच, पूर्व उल्लिखित पुस्तक।
3. देखें, हरिशचन्द्र उप्रेती, उपरोक्त।
4. देखें, हरिशचन्द्र उप्रेती, उपरोक्त।
5. देखें, श्री हरिवल्लभ परीख, 'क्रान्ति का अरुणोदय', एवं प्रो० उपेन्द्र बक्षी, पूर्व उल्लिखित।
6. देखें, श्री हरिवल्लभ परीख, 'क्रान्ति का अरुणोदय'।

10

न्यायालय और लोक अदालत

लोकअदालत में निर्णित विवादों के अध्ययन के दौरान जिन 67 विवादों का गहराई से अध्ययन किया गया, उनमें 9 विवाद ऐसे थे, जो लोकअदालत में लाये जाने के पूर्व निर्णयार्थ सरकारी न्यायालयों में प्रस्तुत किये जा चुके थे और काफी पैसा और समय वरवाद हो जाने के पश्चात भी जिन पर निर्णय नहीं मिल पाया था। इन 9 पक्षकारों से लोकअदालत के निर्णय से सम्बन्धित जो उत्तर प्राप्त हुए हैं, उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि उनमें से एक भी पक्षकार ऐसा नहीं था जिसे लोकअदालत के निर्णय से असन्तोष रहा हो। पांच पक्षकारों ने अपनी सम्पूर्ण तुष्टि व्यक्त की और वाकी चार ने सामान्य संतुष्टि।

ऐसे 23 विवादों का अध्ययन भी किया गया जो लोकअदालत मे निर्णयार्थ नहीं आये और जिनका निपटारा केवल सरकारी न्यायालयों में ही हुआ। विवाद प्रस्तुत कर्त्ता सभी आदिवासी हैं और उनमें भी अधिकांश अशिक्षित हैं। इसके लिए तालिका 23 इनकी जाति एवं शैक्षणिक स्तर की जानकारी की दृष्टि से प्रस्तुत की जा रही है।

समय एवं खर्च

तालिका 24 सर्वेक्षित मुकदमों मे हुए व्यय एवं समय के वारे में हमारा मार्गदर्शन कर सकती है।

तालिका संख्या-23

सरकारी न्यायालय में जाने वालों की जाति एवं शैक्षणिक स्तर

		शैक्षणिक स्तर			
क्र०	जाति	अक्षरज्ञान	कक्षा 1 से 14	प्रशिक्षित	कुल सं०
1.	राठवा संख्या)	4	1	10	15
	प्रतिशत)	(17.39)	(4.35)	(43.48)	(65.22)
2.	भील संख्या)	1	00	3	4
	प्रतिशत)	(4.35)	(0.0)	(13.04)	(17.39)
3.	नायका संख्या)	00	00	4	4
	प्रतिशत)	(0.0)	(0.0)	(17.31)	(17.39)
	योग संख्या	5	1	17	23
	प्रतिशत	21.74	4.35	73.91	100

तालिका संख्या–24

सरकारी न्यायालय में लगा समय एवं खर्च

क्र०	कुल व्यय (रुपये में)	निर्णय में लगने वाला समय (माह) 1-6	7-12	13-18	19-24	25-30	31 से अधिक	योग
1.	100/—से 200/	1	00	00	00	00	00	1
2.	201/—से 400/	1	1	00	1	00	00	3
3.	401/—से 600/	00	2	1	1	00	1	5
4.	601/—से 800/	00	00	00	00	1	00	1
5.	801/—से 1000/	00	1	00	00	00	1	2
6.	1001/—से 1200/	00	1	00	00	00	1	2
7.	1201 से अधिक	00	2	00	00	1	6	9
	योग	2	7	1	2	2	9	23

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि 23 में से 9 अर्थात् 39.12 प्रतिशत विवादों में 1200 रुपये से अधिक पैसा और 31 महीने से अधिक समय लगा

जबकि लोकअदालत में इस प्रकार के विवादों के निपटारे में किसी भी परिस्थिति में दो महीने से अधिक समय नहीं लगता। इसी प्रकार केवल 1 अर्थात 4.35 प्रतिशत विवाद ही ऐसा है जिसमें 6 महीने से कम समय और 200 रुपये तक धन व्यय हुआ जबकि लोकअदालत में वादी-प्रतिवादी के रूप में विवाद ले जाने वाले 80 उत्तरदाताओं में से 60 को लोक अदालत में केवल 10 रुपये तक का गुड़ वितरण का खर्चा हुआ है और केवल मात्र 12 उत्तरदाताओं से ही दण्ड वसूल किया है।

लोक अदालत में दिये गये दण्ड की स्थिति इस प्रकार है :

तालिका संख्या–25

लोकअदालत द्वारा दिया गया दण्ड

क्र०	दण्ड की मात्रा (रुपये में)	संख्या	प्रतिशत
1.	दण्ड नहीं	68	85.00
2.	51/—से 100/—	1	1.25
3.	101/—से 150/%	3	3.75
4.	201/—से 250/—	2	2.50
5.	301/—से अधिक	6	7.50
	योग	80	100.00

जिन 12 वादी-प्रतिवादियों को प्रस्तुत विवादों के सन्दर्भ में लोकअदालत द्वारा दण्ड दिया गया है वे विवाद, तलाक, भरण-पोषण एवं सम्पत्ति विषयक ऐसे विवाद थे जो सरकारी न्यायालयों में प्रस्तुत होते तो हजारों रुपये खर्च होने पर भी कई वर्षों तक नहीं सुलझ पाते और न्यायालयों के चक्कर काटते रहने में वादी-प्रतिवादीगण एवं उनके गवाहों, पक्षकारों एवं मित्रों-सम्बन्धियों का धन एवं समय बरबाद होता वह अलग से।

उपर्युक्त तालिका से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि लोकअदालत ने जिन 60 विवादों में 10 रुपये तक के गुड़ वितरण का खर्चा कराया है, उनमें केवल 6 ही ऐसे विवाद थे जिनमें 300 रुपये से अधिक दण्ड दिया गया है। शेष लोगों में 1 को 51 रु० से 100 रुपये तक, 3 व्यक्तियों को 100 रुपये से 250 रुपये तक और 2 को 200 से 250 रुपये तक दण्ड देने का निर्णय दिया गया है और 20 वादी-प्रतिवादियों पर अर्थात् 25 प्रतिशत लोगों पर कुछ भी

दण्ड नहीं लगाया है। मात्र गुड़-वितरण का ही खर्च कराकर उनके विवाद निपटा दिये गये हैं।

सुविधा-असुविधा

जहां तक लोकअदालत में विवाद प्रस्तुत करने वालों की सुविधा-असुविधा का ताल्लुक है, उत्तरदाताओं की यह राय रही कि लोकअदालत के समक्ष निर्णयार्थ विवाद प्रस्तुत करने में उन्हें अधिक सुविधा रहती है।

लोकअदालत म विवाद प्रस्तुत करने वाले 80 वादी-प्रतिवादी उत्तरदाताओं ने इस प्रश्न के उत्तर में लोकअदालत के समक्ष विवाद प्रस्तुत करने वालों के समक्ष कि कार्य-प्रक्रिया सम्बन्धी अथवा अन्य प्रकार की कोई कठिनाई तो नहीं आती जो उत्तर दिये उनसे यह निष्कर्ष निकलता है कि सरकारी न्यायालयों की तुलना में उनके लिये लोकअदालत अधिक अनुकूल एवं सुविधाजनक न्यायालय सिद्ध हुआ है।

80 में से केवल 2 उत्तरदाताओं (1.5 प्रतिशत) ने लोक अदालत में प्रयुक्त कार्य पद्धति के प्रति असन्तोष व्यक्त किया है जबकि 78 (97.5 प्रतिशत) को लोक-अदालत द्वारा अपनायी गयी कार्य-प्रक्रिया से पूर्ण सन्तोष है। इसी प्रकार शत प्रतिशत उत्तरदाता यह मानते हैं कि लोकअदालत में बहुत कम खर्च में न्याय मिल जाता है जबकि सरकारी न्यायालयों में जाने वाले अधिकांश वादी-प्रतिवादी खर्च की अधिकता से पीड़ित व परेशान रहते हैं। केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा नियुक्त समितियां ही नहीं स्वयं न्यायाधीशगण एवं विद्वान वकील भी इस सत्य को महसूस करते हैं और इस सम्बन्ध में अपनी अन्तर्वेदना व्यक्त करते हैं।[1]

80 उत्तरदाताओं में 79 अर्थात् 98.75 प्रतिशत ने यह स्वीकार किया है कि लोकअदालत की न्याय-प्रक्रिया लोकतंत्रवादी व्यवस्था है, जबकि सरकारी न्यायालयों में न्यायाधीशों की निजी मान्यतायें ही एक सीमा तक उनके द्वारा दिये गये निर्णयों में प्रभावशाली ढंग से कार्य करती रहती हैं।

लोकअदालत द्वारा दिये गये निर्णयों के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं की जिसमें 44 वादी और 36 प्रतिवादी शामिल हैं, जब राय मांगी गयी तो उनमें 90 प्रतिशत का उत्तर एक ही था और वह यह कि विवाद सन्तोषजनक ढंग से सुलझ गया और सामान्य स्थिति कायम हो गयी। किसी भी उत्तरदाता ने यह नहीं बताया कि लोकअदालत के निर्णय के बाद किसी प्रकार का तनाव का वातावरण शेष रहा है अथवा निर्णय से किसी प्रकार का तनावपूर्ण वातावरण बन गया है।

लोकअदालत के कार्यक्षेत्र में स्थित जिन गांवों का लोकअदालत द्वारा दिये गये निर्णयों के परिप्रेक्ष्य में सर्वेक्षण किया है उन निर्णयों के विरुद्ध किसी भी प्रभावित वादी-प्रतिवादी ने सरकारी न्यायालयों का द्वार नहीं खटखटाया। हां, ऐसे विवाद जरूर हमारी जानकारी में लाये गये जिनमें लोकअदालत के कार्यकर्त्ता कतिपय विवादास्पद मामले स्वयं ही सरकारी न्यायालयों के समक्ष ले गये और सरकारी न्यायालयों ने लोकअदालत के कार्यकर्त्ताओं के तत्विषयक निर्णयों के प्रति सहमति व्यक्त करते हुए लोकअदालत विरोधी पक्षों को सलाह दी कि वे लोकअदालत के निर्णयों को स्वीकार करके विवाद को निपटालें।[2]

न्यायालय और सामाजिक परिवर्तन

वैधानिक न्यायालयों की कार्यशैली एवं व्यवस्था का आदिवासी समाज को विकासोन्मुख करने की दिशा में कोई उल्लेखनीय प्रभाव नहीं पड़ा है। अभी भी आदिवासियों में जाति पंचों की व्यवस्था कायम है और बहुसंख्यक आदिवासी अपने सामाजिक विवाद उन्हीं के माध्यम से हल करते हैं। जाति पंच उनके सामाजिक व्यवहारों का निपटारा करते हैं। हर गांव में नायक, तड़वी, भगत, ओझा, कारभारी और प्रत्येक फलिया पंच के सभ्यों से बना हुआ जाति पंच होता है। नायक को मान दिया जाता है परन्तु अधिकतर झगड़े सामाजिक प्रसंगों पर इकट्ठी हुई समस्त जाति के सामने रखे जाते हैं और वह उनका निपटारा करती है।[3] हिन्दू वैवाहिक अधिनियम 1955 के प्रावधान भी आदिवासियों पर लागू नहीं हैं। वैधानिक न्यायालयों के समक्ष उनके अधिकांश मामले-मुकदमें पेश नहीं होते और वे एक हद तक उनके व्यापक प्रभाव से अलग रहते हैं।

हां, पिछले कुछ दशकों से कतिपय दिवानी और फोजदारी विवादों के निपटारे के लिये आदिवासियों में भी वैधानिक न्यायालयों का आश्रय लेने की प्रवृत्ति बढ़ी है। लेकिन जो भी आदिवासी न्यायालयों में अपने विवाद ले गये हैं वे उनकी लम्बी कार्यविधि, खर्चीली व्यवस्था और दीर्घ सूत्रता के कारण परेशान रहे हैं और यह महसूस करने लगे हैं कि यदि कोई वैकल्पिक न्याय-व्यवस्था उपलब्ध हो जाये जो उनके विवादों का सही ढंग से शीघ्र निपटारा कर दे तो वे अपनी पुरानी सामाजिक-व्यवस्था अक्षुण्ण रखते हुए नयी समाज व्यवस्था से लाभ उठाने में समर्थ हो सकते हैं।

यह सही है कि वैधानिक न्यायालयों के सम्पर्क में आने से उनकी निष्कपटता, सरलता एवं सत्यप्रियता पर आंच आने लग गई है और छल-कपट,

तिकड़म एवं मिथ्यात्व का सहारा लेकर अपने पक्ष में फैसला प्राप्त करने की वृत्ति उनमें भी बढ़ी है। फिर भी समाज के अन्य वर्गों की तुलना में वे न्यायालयों की मौजूदा कार्य शैली से होने वाले दुष्परिणामों से अधिक प्रभावित नहीं हो पाये हैं।

तुलनात्मक पक्ष

लोकअदालत के अस्तित्व का आधार इसका नैतिक धरातल एवं सच्चाई खोजने और जनता की कठिनाइयों का सरलता से समाधान करने की क्षमता ही है जबकि सरकारी न्यायालयों का आधार विधान, कानूनी व्यवस्था और शासन सत्ता का बल है। लोकअदालत प्रतिवादी को जो आमन्त्रण भेजती है, उसे स्वीकार करने के लिये वह बाध्य नहीं है और यदि बाध्य है तो केवल अपनी नीति-निष्ठा या क्षेत्र अथवा गांव के निवासियों के नैतिक दबाव के कारण ही है लेकिन हर प्रतिवादी को अदालत के सम्मन को कानूनन मानना पड़ता है और न माने तो उसे कानून द्वारा निर्दिष्ट दण्ड भुगतने के लिये तैयार रहना पड़ता है।

लोकअदालत के निर्णय की अपील नहीं होती, जबकि सरकारी न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध क्रमशः उच्च न्यायालयों में अपील करने का नागरिकों को अधिकार प्राप्त है। न्यायालयों की अंतिम सीढ़ी सर्वोच्च न्यायालय है और मृत्युदण्ड प्राप्त व्यक्ति को रहम के लिये राष्ट्रपति के समक्ष दया-याचिका पेश करने का भी अधिकार है। जबकि लोक अदालत के निर्णय के विरुद्ध किसी को शिकायत हो तो वह अपना मामला साधारण न्यायालय में नये सिरे से ले जा सकता है। लोक अदालत के निर्णय को सरकारी न्यायालय किसी प्रकार का महत्त्व दे तो वह उनकी स्वेच्छा पर निर्भर करता है, उसका वैधानिक आधार नहीं है। हां, लोक-अदालत की निर्णय-प्रक्रिया में यह व्यवस्था शामिल है कि वह अपनी नीचे की इकाई, जो धीरे-धीरे विकसित हो रही है—ग्राम-सभा द्वारा किये गये निर्णयों पर विचार कर लेते हैं लेकिन ऐसा मामला भी लोकअदालत में अपने ढंग से नये सिरे से ही पेश होता है, अपील के रूप में नहीं।

न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र और सुनवाई की शक्तियां विधान द्वारा प्रतिबन्धित व सीमित हैं जबकि लोक अदालत के अधिकार क्षेत्र के बारे में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। उसको कानून मे कोई अधिकार प्राप्त नहीं है जिसके अन्तर्गत वह किसी क्षेत्र विशेष के लोगों के एक अमुक सीमा तक की धन राशि या दण्ड-जुर्माना अथवा सजा के प्रावधान युक्तविवाद सुन सके। उसकी अधिकार-सीमा दोनों पक्षों की सहमति एवं सद्भावना में और क्षेत्र के

निवासियों द्वारा लोकअदालत को प्राप्त प्रतिष्ठा में निहित है जिसमें फौजदारी मामलों में हत्या का प्रयास करने तक के मामलों से लेकर दीवानी मामलों में किसी भी मूल्य की विवादग्रस्त सम्पत्ति तक के मामले शामिल हैं। लोक अदालत द्वारा दिये गये दण्ड में ऐसा दण्ड भी शामिल है जिसमें एक परिवार के मुखिया को शारीरिक क्षति पहुँचाने के आरोप में गुनहगार को 20 साल तक अथवा उसके लड़के के बालिग होने तक की अवधि के लिये पीड़ित परिवार का खेत जोतने और उसका भरण-पोषण करने का दण्ड दिया गया और इस दण्ड को सम्बन्धित व्यक्ति ने अपने प्रायश्चित के रूप में ईमानदारी से स्वीकार किया। फलस्वरूप दोनों परिवारों के सम्बन्ध सद्भावनापूर्ण बने और वह सद्भावना आज तक कायम है। निर्णय देने का उसका ढंग और उस निर्णय की क्रियान्विति के लिये खोजे गये उपाय न्यायालयों की प्रचलित आचार एवं दण्ड संहिता से किसी भी प्रकार मेल नहीं खाते।

लोकअदालत एवं न्यायालयों में आने वाले कुछ विवादों में एक सीमा तक ही साम्य है लेकिन न्यायालयों के समक्ष जहां सब तरह के विवाद कानूनी तौर पर निर्णयार्थ प्रस्तुत होते हैं, वहां लोकअदालत के कार्य क्षेत्र के निवासियों की अपने ढंग की अलग-अलग समस्यायें होने के कारण लोकअदालत के समक्ष सभी प्रकार के विवाद आते हैं। मोटे तौर पर लोक अदालत के समक्ष निम्नलिखित प्रकार के विवाद निर्णयार्थ प्रस्तुत हुए हैं :

1. हत्या का इरादा।
2. पति-पत्नी सम्बन्धी—जिनमें तलाक, भरण-पोषण, सहवास का अधिकार, दहेज, आदि के विवाद शामिल हैं।
3. भूमि सम्बन्धी—जिनमें भूमि की सीमा बंदी, सम्पत्ति के बंटवारे और पूरा का पूरा खेत लौटाये जाने के विवाद भी शामिल हैं।
4. लेन-देन सम्बन्धी—जिन में खेत या सम्पत्ति रेहन रखने से सम्बन्धित विवाद भी शामिल हैं।
5. मारपीट।
6. चोरी आदि।

उक्त प्रकार के सभी विवाद एक ही प्रकार के सरकारी न्यायालय में निर्णयार्थ प्रस्तुत नहीं किये जा सकते। वहां दीवानी एवं फौजदारी विवादों की सुनवाई मुंसिफ-मजिस्ट्रेट करते है तो राजस्व सम्बन्धी विवादों की सुनवाई राजस्व अधिकारियों द्वारा की जाती है। दीवानी एवं फौजदारी

के छोटे विवाद न्याय पंचायतों एवं न्याय पंचों द्वारा सुने जाने का कानूनी प्रावधान भी कुछ अर्से से चालू है लेकिन हर विवाद का अधिकार-क्षेत्र एवं मूल्यानुसार अथवा सजा की मात्रानुसार सुनवाई की शक्ति मर्यादित है। उसी प्रकार विभिन्न प्रकार के राजस्व अधिकारियों के सुनवाई सम्बन्धी अधिकार एवं कार्यक्षेत्र भी मर्यादित एवं सीमित हैं। सरकारी न्यायालयों द्वारा दिये गये निर्णयों में केवल मात्र कानून के रक्षण की प्रवृत्ति अधिक रहती है। सच्चाई की खोज का प्रयास कम और पारस्परिक तनाव दूर करने की दृष्टि तो और भी कम रहती है। अपनी बुद्धि एवं ज्ञान के अनुसार निर्णय देने की प्रवृत्ति अधिक, समाज पर पड़ने वाले दूरगामी प्रभावों को दृष्टिगत रखने की या समाज में प्रगतिशीलता लाने की प्रवृत्ति कम होती है, तात्कालिक प्रभाव का दृष्टिकोण अधिक। जबकि लोकअदालत के निर्णय इस उद्देश्य से किये जाते हैं कि उभय पक्ष उस निर्णय की गंभीरता को महसूस करके पारस्परिक कटुता एवं तनाव के वातावरण से मुक्त होकर अपने घर जायें, क्षेत्र में आपसी लड़ाई-झगड़े एवं विवाद न हों और लोग अधिक अच्छे पड़ोसी एवं रिश्तेदार बनकर अपना जीवन व्यतीत करें। यही कारण है कि लोकअदालत क्षेत्र में झगड़ों एवं विवादों की संख्या घटी है जबकि सरकारी न्यायालयों की कार्य-प्रणाली से विवादों एवं झगड़ों की संख्या में कमी का कोई लक्ष्य पूरा नहीं हो सकता। उनके समक्ष प्रस्तुत होने वाले विवादों एवं मामलों की संख्या तेजी से बढ़ती ही जा रही है।

सरकारी न्यायालयों में विवाद से सम्बन्धित तथ्यों की जानकारी प्राप्त करने में न्यायाधीशों को कई साल लग जाते हैं और अधिकांश विवादों में फैसला होने तक प्राय: एक से अधिक बार न्यायाधीश बदल जाते हैं। विवाद की सुनवाई का सिलसिला अबाध गति से नहीं चल पाता। उसकी एकसूत्रता टूटती रहती है और न्यायालय प्रस्तुत गवाही एवं तथ्यों के आधार पर निर्णय दे देता है। जरूरी नहीं कि जिस न्यायाधीश के सम्मुख वादी-प्रतिवादी ने अपने विवाद सम्बन्धी-तथ्य-गवाह के रूप में पेश किये हों और वकीलों ने जिरह करके ऐसे गवाहों से कोई तथ्य प्राप्त करने का प्रयास किया हो, वही न्यायाधीश उस विवाद के बारे में निर्णय भी दे। इस प्रक्रिया में हर न्यायाधीश के लिये वादी-प्रतिवादी के मुंह से विवाद सम्बन्धी तथ्य सुनना आवश्यक नहीं है।

सरकारी न्यायालयों में प्रस्तुत अधिकांश विवादों की सुनवाई जूरियों के सहयोग के बिना ही किये जाने की व्यवस्था है। जूरी की नियुक्ति बहुत कम मामलों में होती है जबकि लोकअदालत का कोई भी निर्णय एक व्यक्ति द्वारा

नहीं दिया जाता। वहां जूरी प्रणाली का अवलम्बन न्याय प्रदान करने की व्यवस्था का अनिवार्य अंग है।

सरकारी न्यायालयों में दर्शकों की कोई विशेष स्थिति नहीं होती है। उनका सुनवाई में कोई स्थान नहीं रहता, जबकि लोक अदालत के निर्णय में उनकी भी अपनी भूमिका है। वे न केवल तथ्यों के बारे में अपने विचार व्यक्त कर सकते हैं अपितु निर्णय के प्रति अपनी सहमति व्यक्त करके लोक-अदालत को नैतिक बल भी प्रदान करते हैं—लोकअदालत की प्रतिष्ठा में उत्तरोत्तर होने वाली वृद्धि में दर्शकों की भूमिका कम महत्वपूर्ण नहीं रही है।

अधिकांश सरकारी न्यायालयों में अकेला न्यायाधीश निर्णय देता है। जिन विवादों की सुनवाई खण्ड पीठों में होती है, वहां भी सर्वानुमति की बजाय राय की बहुसंख्या न्याय का प्रमुख आधार रहती है। 11 न्यायाधीशों की बेंच में 6 की राय ही निर्णय बन जाता है जबकि पांच की राय, न्याय की दृष्टि से कोई महत्व नहीं रखती।

लोकअदालत के निर्णय में निर्णायकों का दृष्टिकोण व्यापक रहता है। वे निर्णय देते समय इस बात का भी ध्यान रखते हैं कि निर्णय के फलस्वरूप आपसी तनाव एवं कटुता में कमी आये, पारिवारिक सौहार्द बढ़े, विवाद-ग्रस्त लोगों को कम खर्च में शीघ्र न्याय मिल जाये, अपनी बात निर्भय होकर कहने की प्रवृत्ति बढ़े और अन्याय के प्रतिकार के लिये उनमें संगठित शक्ति का विकास हो। जूरीगण पक्षों द्वारा नामजद व्यक्ति होने पर भी पक्षातीत रहकर कार्य करने का प्रयास करते हैं और लोक शक्ति के जागरण एवं तथ्यों से परिचित लोगों की भारी संख्या में दर्शक के रूप में उपस्थिति के कारण उन्हें तथ्यों के विपरित जाने मे जोर पड़ता है। चाहे उनके मन में जो कोई भी भाव विद्यमान रहते हों, लोक लाज के आवरण के कारण भी उन्हें अपने मनोभावों की अवहेलना करके निष्पक्ष भाव से न्याय देने को बाध्य होना पड़ता है, जबकि सरकारी न्यायालयों में मन चाहा न्याय देने से रोकने की कोई निर्द्वन्द्व व्यवस्था नहीं है।

सरकारी न्यायालयों के न्यायाधीशों के विरुद्ध प्रकट रूप में कुछ भी कहने की हिम्मत बड़ा से बड़ा वकील एवं जन प्रतिनिधि भी नहीं कर सकता क्योंकि ऐसा करने पर न्यायाधीश ऐसे व्यक्ति को अदालत की मानहानि के अपराध में दंडित कर सकते हैं लेकिन लोकअदालत के किसी भी निर्णायक (जूरीगण एवं अध्यक्ष) को यह अधिकार प्राप्त नहीं है।

लोकअदालत किसी भी विवाद पर अपना निर्णय देकर ही चुप नहीं बैठ जाती।

न्याय दिलाना भी उसके कार्यक्रम का अनिवार्य अंग है। इसीलिए उसने न्याय दिलाने के लिये सरकारी अधिकारियों से संघर्ष किया है, सत्याग्रह का सहारा लिया है, गिरफ्तारियां दी हैं, जमानतें करवाई हैं, पुलिस थाने में यातनायें सही हैं और समाचार पत्रों, राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं एवं सार्वजनिक नेताओं का सहारा लेकर लक्ष्य की ओर आगे बढ़ने का प्रयास जारी रखा है। लोक जागृति द्वारा जनसाधारण को अन्याय के विरुद्ध संगठित होने की प्रेरणा उसकी अपनी विशेषता है, जबकि सरकारी न्यायालय इस प्रकार के किसी भी उपाय का अवलम्बन नहीं कर सकते चाहे अपराधी को दण्ड मिले या न मिले।

लोक अदालत एवं ग्रामदानी गांवों की ग्राम सभायें

अब लोक अदालत एवं ग्रामसभाओं के पारस्परिक सम्बन्धों को लें। ग्रामदानी गांव लोक अदालत के संस्थापकों एवं उसके संचालकों की कृति हैं और इसलिए ग्रामदानी गांवों के समस्त बालिग लोगों से निर्मित ग्रामसभा लोक अदालत का अपना अभिन्न अंग है। अपने क्षेत्र के विवादों को तो वे निपटान का प्रयास करती ही हैं लेकिन पड़ौस के गैर-ग्रामदानी गांवों के लोगों के साथ भी यदि कोई अन्याय हो रहा लगता है तो उसके प्रतिकार के लिये भी वे प्रत्यनशील रहती हैं।

ग्रामसभाओं के निर्णय को स्वीकार नहीं किये जाने की स्थिति में ग्रामसभाएं एक पक्षकार बन कर स्वयं भी ऐसे विवाद लोक अदालत के समक्ष ले जाती हैं और लोक अदालत के निर्णय को शिरोधार्य करती हैं। कई मामले देखने में आये हैं जिसमें लोक अदालत ने न्याय के लिये सामूहिक नेतृत्व प्रदान करके ग्रामसभा या उस क्षेत्र के शोषण एवं अत्याचार के शिकार निवासियों को न्याय दिलाने का प्रयास किया है। इस प्रकार वह केवल स्वयं ही क्षेत्र की जनता को सही न्याय उपलब्ध नहीं कराती अपितु सही न्याय प्राप्त कराने में उनकी मददगार भी बनती है।

लोक अदालत एवं न्याय पंचायत.

लोक अदालत का न्याय पंचायतों से भी वैधानिक सम्बन्ध नहीं है। प्रकारान्तर से सम्बन्ध बनता भी है तो केवल यही कि न्याय पंचायतें अपने क्षेत्र में कानून के जरिये सौंपे गये अधिकारियों के भीतर छोटे-छोटे दीवानी व फौजदारी मामलों का निपटारा करती हैं जबकि लोक अदालत अधिक विस्तृत क्षेत्र में और अधिक पेचीदा एवं गंभीर प्रकार के दीवानी-फौजदारी विवादों का निपटारा करती है। न्याय पंचायत में सर्वानुमति की जगह निर्णय-प्रक्रिया में बहुमत का प्राधान्य रहता है, जबकि लोक अदालत में यथा

धक्ति विवादों का निपटारा सर्वानुमति से किया जाता है। लोकअदालत में वादी-प्रतिवादी दोनों की भावनाओं की रक्षा करते हुए उन्हें सन्तुष्ट रखने का भरसक प्रयास भी किया जाता है ताकि उभय पक्षों में पारस्परिक कटुता समाप्त हो और तनाव की स्थिति दूर हो।

लोक अदालत—विवादों की सुनवाई सम्बन्धी स्थिति

जहां तक सुनवाई के अधिकार-क्षेत्र का सम्बन्ध है, सरकारी न्यायालयों को मूल्यानुसार विवाद सुनने का अधिकार है यथा मुंसिफ 5 हजार रुपये मूल्य तक की सम्पत्ति या लेन-देन के दावे सुन सकते हैं और सिविल जज 5 से 10 हजार रुपये मूल्य तक के लेन-देन अथवा सम्पत्ति के दावे सुन सकते हैं, पर लोकअदालत किसी भी मूल्य के दावे सुन सकती है। इसी प्रकार प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट को तीन साल तक की अवधि की जेल और 5 हजार रुपये तक के जुर्माने की सजा देने का और द्वितीय श्रेणी के मजिस्ट्रेट को 1 साल तक की कैद और 1 हजार रुपये तक के जुर्माने की अधिकतम सजा देने का अधिकार है जबकि लोकअदालत किसी को सजा देना ही नहीं चाहती है। लेकिन यह सही है कि वह कैद से कहीं अधिक असरकारी ढंग की सजा भले ही दे दें जिसमें जीवन पर्यन्त या बीस साल की अवधि तक अपराधी को पीड़ित परिवार की स्वैच्छिक आधार पर मदद देने का प्रावधान रहा है। इसी प्रकार वह किसी भी सीमा तक जुर्माने की सजा दे सकती है। लेकिन उस सजा को भोगने की जवाबदेही दोषी व्यक्ति स्वयं अपने सिर पर लेता है, उस पर किसी प्रकार का कानूनी बंधन नहीं रहता। इस प्रकार लोक अदालत एक से अधिक मजिस्ट्रेट की कोर्टों के कार्यक्षेत्र के उपयुक्त विवादों को निपटा सकती है जबकि सरकारी न्यायालयों के मजिस्ट्रेट अपनी सीमा रेखा से आगे नहीं बढ़ सकते।

जहां तक न्यायपंचायतों का सम्बन्ध है उनकी कार्य सीमा तो अत्यन्त संकुचित एवं मर्यादित है। दीवानी मामलों में वे अधिक से अधिक 250 रुपये तक के मूल्य के विवादों की सुनवाई कर सकती हैं। फौजदारी मामलों में वे जिन मामलों की सुनवाई कर सकती है, उनमें 50 रुपये से अधिक दण्ड दोषी व्यक्ति को नहीं दे सकती। उन पर यह भी प्रतिबन्ध है कि वे ऐसे मामलों में विचार ही नहीं कर सकती जिनमें अपराधी को पहले किसी मामले में तीन साल या अधिक का कारावास का दण्ड दिया जा चुका हो अथवा दोषी व्यक्ति अभ्यस्त अपराधी हो अथवा दोषी व्यक्ति को पहले भी चोरी करने अथवा चोरी के माल का जानबूझकर रखने के अपराध में

पंचायत या न्याय पंचायत द्वारा दण्ड दिया जा चुका हो अथवा उस दोषी व्यक्ति से दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 109 और 110 के अधीन नेकचलनी का मुचलका लिया जा चुका हो।

लोकअदालत तथा सरकारी न्यायालय में विवाद ले जाने एवं उसकी निर्णय-प्रक्रिया में पर्याप्त अन्तर है और यही अन्तर इस क्षेत्र के ग्रामीणजन को विवाद सुलझाने के लिए लोकअदालत मे आने की प्रेरणा प्रदान करता है। सरकारी न्यायालय की कानूनी उलझनें, अधिक व्यय एवं अधिक समय लगने वाली प्रक्रिया गांव के लोगों के कष्ट को बढ़ाती है। इसके अतिरिक्त लोक-अदालत में समाज-परिवर्तन, लोकशक्ति और नैतिक मूल्यों की स्थापना का जो प्रयास रहता है वह सरकारी न्यायालय में देखने को नहीं मिलता है। तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर यह कहने की स्थिति है कि लोक-अदालत की समग्रता ग्रामीण न्यायव्यवस्था को नयी दिशा प्रदान कर सकती है और मौजूदा न्यायव्यवस्था की कठिनाइयों को कम करने में मददगार हो सकती है। आवश्यकता इस बात की है कि लोकअदालत को अधिक व्यवस्थित किया जाए एवं उसे राज्य के कानून के साथ संबद्ध करने के साथ-साथ उन कमियों को दूर किया जाय जिनके बारे में अन्तिम अध्याय में उल्लेख किया गया है।

संदर्भ

1. भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद ने जो अपने जमाने के चोटी के वकील थे, 'यंग इंडिया' के 6 अक्टूबर 1920 के अंक में लिखा था भारत में मुकदमें-बाजी बहुत महंगा मामला है। न्यायालयों की सम्पूर्ण व्यवस्था और न्याय प्रदान करने की सम्पूर्ण प्रक्रिया बहुत खर्चीली एवं व्ययसाध्य है। न्यायप्राप्ति और निर्णय की पूर्ति होने तक कभी-कभी वादी को विवादग्रस्त सम्पत्ति के मूल्य से भी अधिक धन राशि खर्च करनी पड़ जाती है।

   दूसरे चोटी के वकील श्री मोतीलाल नेहरू ने लिखा था न्याय-प्रक्रिया में लगे हुए लोगों के नैतिक धरातल में ऊपर से नीचे तक गिरावट आती जा रही है। देश में चल रही मुकदमेबाजी की कार्यशैली ही उन अधिकांश पापों के लिये जवाबदेह है जिनसे हम पीड़ित हैं—यंग इंडिया, 13 अक्टूबर 1920।

   भारत सरकार द्वारा न्याय पंचायतों के लिये गठित अध्ययन दल की रिपोर्ट में, जो अप्रैल 1962 में प्रकाशित हुई थी, पृष्ठ 35 पर उल्लिखित वाक्य का अवलोकन कीजिये—एक गांव में उत्पन्न छोटे से विवाद के निपटारे के लिये सम्बन्धित तहसील, जिला हैड क्वार्टर अथवा अन्य किसी दूरस्थ स्थान की अदालत में अपने प्रमाण में

कागजातों, गवाहों और कानूनी सलाहकारों के साथ अनिवार्य उपस्थिति और कई-कई दिन तक तारीख पेशियां बदलने के कारण वहां ठहरने की मजबूरी जितने मूल्य की धनराशि का विवाद नहीं, उसके अनुपात में कहीं अधिक खर्चा (न्याय की यह व्यवस्था निःसंदेह आदर्श नहीं कही जा सकती) हमारी अदालतें सस्ती नहीं हैं।

2. उदाहरण के लिए देखें परिशिष्ट 'ग'।

3. 'गुजरात के आदिवासी,' प्रकाशक, गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद, पृष्ठ 28।

4. देखें सम्बन्धित तालिका।

5. देखें श्री हरिवल्लभ परीख, 'क्रान्ति का अरुणोदय' पृष्ठ 1, सर्वसेवा संघ प्रकाशन, 1973।

6. देखें, संलग्न सारणी।

11

लोक जागृति और न्याय में लोकतांत्रिक मूल्यों को स्थापना

लोक अदालत लोक जागृति

प्रस्तुत अध्याय में हम निम्न बातों पर विचार करने का प्रयास करेंगे : (क) लोकअदालत के कारण लोक जागृति की स्थिति (ख) लोकअदालत में लोकतांत्रिक मूल्यों का स्थान ।

लोकअदालत के कार्यों और उसकी न्याय-प्रक्रिया के सामाजिक प्रभाव की जो स्थिति है, उसे देखते हुए यह कहना चाहेंगे कि लोकअदालत ने निश्चित तौर पर समाज में जागृति लाने में मदद की है। परम्परागत आदिवासी समाज में अत्याचार-सहन की जो प्रवृत्ति रही है, उसमें ये लोग स्वभावतः ही कष्टों को झेलने के आदी बन गये हैं। यहां के लोगों में जो जड़ता थी, उसे कम करने का प्रयास लोकअदालत ने किया है। साक्षात्कार के दौरान जो तथ्य सामने आये हैं, उसके आधार पर इस बारे में कुछ निश्चित बातें कही जा सकती हैं।

इस संदर्भ में तीन बातें उत्तरदाताओं ने स्वीकार की हैं—[1]

1. संगठित होकर अन्याय का विरोध करते हैं।
2. दोषी को दण्ड देने का प्रयास करते हैं।
3. लोक अदालत में विवाद ले जाते हैं।

यदि गांव मे किसी प्रकार का अन्याय होता है तो इसका विरोध किया जाना चाहिये, यह विचार मजबूत हुआ है और उस अन्याय का विरोध करने की

क्षमता भी पैदा हुई है। अन्याय कई प्रकार के हो सकते हैं, जैसे सरकारी कर्मचारियों का अन्याय, पुलिस का अत्याचार, महाजनों, किसानों या अन्य गैर आदिवासियों द्वारा शोषण आदि। अन्याय की दो श्रेणियां और भी मान सकते है, यथा—

1. उस प्रकार का अन्याय जिसका प्रभाव केवल व्यक्ति या परिवार पर पड़े, और,
2. ऐसा अन्याय जिसका प्रभाव कई लोगों पर या पूरे ग्रामसमाज पर पड़े। सम्पूर्ण प्रभाव क्षेत्र में दोनों प्रकार के अन्याय का विरोध करने की क्षमता विकसित हुई है। व्यक्तिगत स्तर पर आमतौर पर विवाद को ग्रामसभा या लोकअदालत में ले जाया जाता पाया गया और ऐसे विवाद या अन्याय का, जिसका सम्बन्ध पूरे ग्रामसमाज से होता है, या जिस व्यक्तिगत प्रश्न को पूरे ग्राम का प्रश्न मान लिया जाता है, पूरा ग्राम विरोध करता पाया गया।[2] इस प्रकार के अन्याय का विरोध पुलिस, जंगल के कर्मचारी आदि के संदर्भ में भी दृष्टिगोचर हुआ है। जहां सामान्य उत्तरदाताओं में से अधिकांश (97 24 प्रतिशत) ने स्वीकार किया कि अन्याय का विरोध करने की क्षमता आयी है, वहीं विशेष उत्तरदाताओं ने इस बारे में कम सहमति (29.03 प्रतिशत) प्रदान की है।

यह बात भी सामने आयी कि गांव के लोग दोषी व्यक्ति को दण्ड देने-दिलाने का पूरा प्रयास करते हैं। सहमति-असहमति की दृष्टि से यहां भी सामान्य एवं विशेष उत्तरदाताओं की स्थिति पूर्वोक्त जैसी ही है। जहां सामान्य उत्तरदाताओं में से अधिकांश ने इस बात में सहमति प्रकट की है कि दोषी व्यक्ति को दण्ड देने का प्रयास पहले से अधिक किया जाता है वहां विशेष उत्तरदाताओं ने उस सीमा तक इस तथ्य का स्वीकार नहीं किया है, यद्यपि इस बात की पुष्टि लोकअदालत में होने वाली उपस्थिति, कार्यवाही में भाग लेने की अभिरुचि एव उसके निर्णय की स्वीकृति के बारे में प्राप्त तथ्यात्मक आंकड़ों से होती है। इस प्रकार इस बारे में भी आम सहमति देखने में आयी कि अन्याय का विरोध करने में लोकअदालत की प्रमुख भूमिका रही है।

जिस गांव के लोग अधिक जागरूक हैं (जैसे गजनावांट), वहां ग्रामस्तर पर भी इस प्रकार के विवादों को सुलझाने का प्रयास किया जाता है। यह भी देखने में आया है कि पड़ोसी गांव के लोगों ने पास के गांव में हुए

तालिका संख्या–26

लोकअदालत और अन्याय के विरोध की शक्ति

क्र०	स्वरूप	सामान्य साक्षात्कार संख्या 435				विशेष साक्षात्कार—संख्या 31			
		सहमति		असहमति		सहमति		असहमति	
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
1.	संगठित होकर अन्याय का विरोध करते हैं	423	97.24	12	2.76	9	29.03	22	70.97
2.	दोषी को दण्ड देने का प्रयास करते हैं	421	96.78	14	3.22	9	29.03	22	70.97
3.	लोकअदालत में जाते हैं	429	98.62	6	1.38	24	77.42	7	22.58

अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाई एवं दोषी व्यक्ति को दण्ड देने का प्रयास किया।[3] सामान्यत: अन्याय के विरुद्ध उठाये गये प्रत्येक मामले में लोक-अदालत एवं आश्रम का सहयोग लिया गया।

अन्याय का विरोध किए जाने के कारण अन्याय में किस सीमा तक कमी हुई है, इसकी माप अंकों में करना संभव नहीं है। फिर भी जो प्रश्न पूछे गये, उनके उत्तर से यह स्पष्ट है कि पुलिस के हस्तक्षेप में कमी, कोर्ट में जाने की प्रवृत्ति में कमी, जंगल के अधिकारियों द्वारा परेशान किये जाने की घटनाओं में कमी—इनके संबंध में राय की अभिव्यक्ति यह सिद्ध करती है कि उनकी परेशानी कम हुई है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि अब यहां के लोग अत्याचार करने वाले सरकारी कर्मचारियों से पहले जितने भयभीत नहीं हैं।

नीचे लिखी चार बातों के बारे में सहमति या असहमति चाही गई थी—[4]

1. पुलिस के हस्तक्षेप में कमी आयी है।
2. कोर्ट जाने की प्रवृत्ति में कमी आयी है।
3. जंगल के कर्मचारियों की परेशानी पहले से कम हुई है।
4. सरकारी अधिकारियों के सहयोग में वृद्धि हुई है।

संबंधित तालिका (संख्या-27) से जो तथ्य सामने आये हैं, उस पर से यह स्पष्ट चित्र उभरता है कि वहां के लोगों पर बाहरी दबाव कम हुआ है। सामान्य उत्तरदाताओं में से सभी ने उक्त चारों बातों से अपनी सहमति व्यक्त की है लेकिन विशेष उत्तरदाताओं की स्थिति थोड़ी भिन्न है। उनमें से आमतौर पर 74 से 77 प्रतिशत द्वारा ही इन तथ्यों से सहमति व्यक्त की गयी है। कुछ लोगों—19.35 प्रतिशत—ने इस बारे में किसी भी प्रकार की राय जाहिर नहीं की है, पर केवल गिने-चुने लोगों ने इस बात से असहमति व्यक्त की है कि गांवों में पहले की स्थिति में परिवर्तन आया है। लेकिन असहमति व्यक्त करने वालों ने भी अपने मत के बारे में किसी प्रकार का स्पष्टीकरण नहीं दिया है। ऐसा मान सकते हैं कि अधिक निकट सम्पर्क न होने के कारण उन्हें परिवर्तन नहीं दिखाई दिया है। पूरी तालिका के विश्लेषण पर से यह कहने की स्थिति है कि ऊपर बताई चार बातों को यहां के उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया है। यह स्थिति दो बातों को और जाहिर करती है :

तालिका संख्या–27

लोकअदालत और अन्याय मुक्ति की दिशा

क्रं०	प्रभाव	सामान्य साक्षात्कार संख्या—435				विशेष साक्षात्कार संख्या 31					
		सहमति		असहमति		सहमति		असहमति		उत्तर नहीं देने वाले	
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
1.	पुलिस हस्तक्षेप में कमी	435	100.00	00	0.00	24	77.43	1	3.22	6	19.35
2.	कोर्ट जाने की प्रवृत्ति में कमी	435	100.00	00	0.00	24	77.43	1	3.22	6	19.35
3.	जंगलात के अधिकारियों की पहले से कम परेशानी	435	100.00	00	0.00	24	77.43	1	3.22	6	19.35
4.	सरकारी अधिकारियों के सहयोग में वृद्धि	435	100.00	00	0.00	23	74.20	2	6.45	6	19.35

1. लोकअदालत के कारण जिस प्रकार की जागृति एवं अन्याय का प्रतिकार करने की क्षमता का विकास हुआ है, वह लोकशक्ति के विकास एवं जन जागृति का प्रतीक है और इससे यहां के लोगों में 'स्व शक्ति' का भी विकास हुआ है।

2. गांव से सम्बन्ध रखने वाले कर्मचारियों एवं गैर आदिवासियों के द्वारा शोषण एवं अन्याय कम हुआ है। इसे अन्याय-मुक्ति का एक सफल प्रयास कह सकते हैं।

न्याय में भागीदारी

लोकअदालत की कार्य-पद्धति से सम्बन्धित अध्याय में हमने देखा कि लोक अदालत की बैठकों में काफी संख्या में लोग उपस्थित होते हैं और किसी न किसी रूप में भाग भी लेते हैं। इसलिए न्याय-व्यवस्था को लोकतांत्रिक दिशा प्रदान करने का इसे एक सफल प्रयास कह सकते हैं। न्याय-कार्य में लोकतांत्रिक मूल्य स्थापित करने का जो प्रयास लोक-अदालत में किया जाता है, उनमें मुख्य प्रभावी तत्व निम्न हैं—

1. वादी-प्रतिवादी द्वारा निःसंकोच होकर निर्णय-प्रक्रिया में भाग लेना।
2. दोनों पक्षों के गवाहों द्वारा लोक अदालत के सम्मुख तथ्यात्मक जानकारी स्वयं रखना।
3. उपस्थित लोगों को अपना मत व्यक्त करने की छूट होना।
4. मध्यस्थ (वकील) का अभाव।
5. जूरी द्वारा निर्णय।
6. स्वेच्छा से निर्णय की पुष्टि एवं स्वीकृति।
7. निर्णय की पूर्ति में जनमत का दवाव।

उक्त बातों के कारण लोकअदालत की न्याय प्रक्रिया में जिस प्रकार के लोकतांत्रिक मूल्यों का समावेश हो गया है, वैसे मूल्य सरकारी न्यायालयों में प्रतिष्ठापित नहीं हो पाये हैं। वहां दोनों पक्षों के गवाह के अतिरिक्त अन्य लोकतांत्रिक प्रक्रियायें नहीं चलतीं और न इस प्रकार का खुलापन एवं निःसंकोच होकर बात कहने की स्थिति रहती है। सरकारी न्यायालयों में प्रायः सभी कार्य वकील द्वारा किए जाते हैं। यह सही है कि पंचायतीराज-व्यवस्था के अन्तर्गत गठित न्याय पंचायतों में एक सीमा तक लोकतांत्रिक मूल्यों को

स्वीकार किया गया है लेकिन न्याय-पंचायत का अधिकार क्षेत्र सीमित होने के कारण उसकी व्यापक स्वीकृति नहीं पायी जाती। सर्वेक्षित क्षेत्र में न्याय पंचायतों द्वारा एक सीमा तक ही लोकतांत्रिक मूल्यों को स्वीकार किया गया है।

लोक-अदालत का स्थायित्व

सवाल उठता है कि ऐसे कौन से प्रभावी तत्व दृष्टिगोचर हुए हैं जिनके कारण यह समझा जाए कि लोकअदालत को स्थायित्व प्राप्त होगा ? इस सम्बन्ध में सामान्य एवं विशेष दोनों प्रकार के उत्तरदाताओं से जो प्रश्न पूछे गये थे, उनसे लोकअदालत के स्थायित्व के सम्बन्ध में निम्न तथ्य सामने आये हैं—

1. इसमें यहां लोगों का विश्वास है।
2. सस्ती एवं सस्ता न्याय प्राप्त होता है।
3. शीघ्र न्याय मिलता है।
4. लोकअदालत के कार्य एवं प्रक्रिया को ग्राम-सभाओं ने अपना लिया है।
5. इसमें कानूनी मान्यता एवं दवाव का अभाव है।
6. इसे एक सेवाभावी व्यक्ति का नेतृत्व तो प्राप्त है लेकिन इसमें निरंकुशता नहीं है।
7. लोकअदालत की ठोस व्यवस्था का धीरे-धीरे विकास होता जा रहा है।

ऊपर दी गई तालिका से उक्त बातों के बारे में सहमति या असहमति की स्थिति की जानकारी मिलती है। लोकअदालत से प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित सामान्य उत्तरदाता उपरोक्त तथ्यों से सहमत हैं और इस कारण यह आशा व्यक्त की जानी चाहिए कि लोकअदालत को स्थायित्व प्राप्त हो सकेगा।

लोकअदालत में श्री हरिवल्लभ परीख के प्रभावशाली नेतृत्व के होते हुए भी यहां के लोगों का विश्वास है कि यह कार्य उनकी अनुपस्थिति में भी चल सकता है। हांलाकि लोकअदालत की अधिकांश बैठकों में वह स्वयं उपस्थित रहते हैं और सक्रिय भाग लेते हैं, फिर भी लोगों में यह आत्मविश्वास जागृत हो रहा है कि वे उनकी अनुपस्थिति में भी लोकअदालत के कार्य का

तालिका संख्या–28

लोकअदालत के स्थायित्व के बारे में उत्तरदाताओं की राय

क्र०	स्थायित्व के कारण	सामान्य साक्षात्कार संख्या—435				विशेष साक्षात्कार संख्या—31					
		सहमति		असहमति		सहमति		असहमति		उत्तर नहीं दिया	
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
1.	विश्वास है	435	100.00	00	0.00	11	35.49	2	6.65	18	58.06
2.	सही एवं सस्ता न्याय	435	100.00	00	0 00	10	32.26	4	12.90	17	55.84
3.	शीघ्र न्याय	435	100.00	00	0.00	10	32.26	3	9.68	18	58.06
4.	ग्रामसभा द्वारा इसे अपना लेना	407	93.56	28	6.44	00	0.00	4	12.90	27	87.10
5.	कानूनी मान्यता एवं दबाव का प्रभाव	434	99.77	1	0.23	18	58.06	2	6.45	11	35.49
6.	निरंकुशता का प्रभाव	70	16.09	365	83 91	11	35.48	9	29 03	11	35.49
7.	लोकपंचायत की ठोस व्यवस्था का विकास	426	97.93	9	2.07	1	3.23	1	3.22	29	93.55

सफलतापूर्वक संचालन कर सकते हैं। लोकअदालत में किस सीमा तक स्थायित्व आया है, यह कहना अभी संभव नहीं है क्योंकि अभी तो अध्यक्ष की उपस्थिति का सर्वत्र पूरा प्रभाव पड़ता दिखाई देता है और केवल उत्तर-दाताओं के आत्मविश्वास से ही भविष्य की स्थिति का सही अन्दाज नहीं लगा सकते। वैसे तालिका में उल्लिखित कारण संख्या 1, 2, 3 तो वास्तव में लोकअदालत के प्रति लोगों की आस्था के प्रमाण हैं। स्थायित्व के प्रमुख कारण तो संख्या 4, 5 और 7 को मानना चाहिए। यदि ग्रामसभायें इस काम को अपना लेती हैं तो स्थायित्व की आशा की जानी चाहिए। परन्तु प्राप्त जानकारी के अनुसार इस दिशा में अभी तक आशाजनक सफलता नहीं मिल सकी है। सामान्यतया लोग केन्द्रीय लोकअदालत में विवाद सुलझाने के लिए आते दिखाई दिए। यदि ग्रामस्तर पर लोकअदालत को व्यापक रूप से स्वीकार किया जा सके तो यह इसके स्थायित्व की दिशा में निश्चय ही एक मजबूत कदम होगा।

उत्तरदाताओं ने इसके स्थायित्व के बारे में एक बात यह भी बतायी है कि इसमें कानून का दबाव नहीं है और इसीलिए इसके स्थायित्व प्राप्त करने की अधिक संभावनायें हैं। उनका तात्पर्य यह है कि इसे जनस्वीकृति प्राप्त है और यह स्वेच्छा पर आधारित है और यदि यहां के लोगों को इसमें विश्वास है तो इसके स्थायित्व के बारे में आशा की जा सकती है। कानून एवं दण्ड शक्ति के स्थान पर स्वेच्छा निर्णय स्वीकार किये जाने की प्रवृत्ति भी इसका संकेत है। यदि लोकअदालत में कार्य-प्रक्रिया सम्बन्धी ठोस व्यवस्था का विकास हो सके तो इससे भी इसके स्थायित्व में मदद मिलेगी। यदि विविध प्रकार के विवादों में निर्णय के मुद्दे, निर्णय-प्रक्रिया, निर्णय की पूर्ति की व्यवस्था आदि के संबंध में मजबूत ढांचा बन सके तो लोकअदालत अधिक कारगर ढंग से काम कर सकेगी। हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि पिछले एक दशक से लोकअदालत के कार्य को व्यवस्थित करने का प्रयास किया जा रहा है। इसके निर्णय की प्रक्रिया का विकास हुआ है, साथ ही साथ न्याय एवं पूर्ति का भी स्वरूप निखर रहा है। यहां यह भी स्वीकार करना चाहिए कि विशेष उत्तरदाताओं ने लोकअदालत की स्थायित्व की संभावना अपेक्षाकृत कम स्वीकार की है, जबकि सामान्य उत्तर-दाताओं का विश्वास है कि यह संस्था स्थायित्व प्राप्त करेगी।

सारांश

लोकअदालत ने न्याय-कार्य के साथ-साथ इस क्षेत्र के लोगों में आत्मविश्वास को बढ़ाया है जिससे उनमें शोषण एवं अन्याय का प्रतिकार

करने की शक्ति का विकास हुआ है। इस क्षेत्र में गैर आदिवासी समाज की ओर से आदिवासी समाज का भरपूर शोषण किया जाता रहा है, खासकर बड़े किसानों एवं महाजनों द्वारा। लोकअदालत ने ऐसे व्यक्तिगत एवं सामुदायिक विवादों को सुलझाने का प्रयास किया जिससे इस प्रकार का अन्याय एवं शोषण कम हुआ।

लोकअदालत की लोकतांत्रिक प्रक्रिया के कारण भी आदिवासियों एवं शोषक वर्ग के आपसी सम्बन्धों में भी सुधार आया है। यह सुधार अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण सर्वत्र सहज में नहीं दिखाई देता। फिर भी ऐसे महाजन एवं किसान मिले जिन्होंने लोकअदालत के निर्णय को माना और आदिवासियों की जमीन वापस की, ब्याज कम लेना प्रारम्भ किया और पुराने उलझे हुए हिसाबों को न्यायपूर्ण ढंग से सुलझाया। इस प्रकार विभिन्न सामाजिक स्तर के लोगों में दूरी कम हुई। आदिवासी समाज में आयी जागरूकता के कारण उनमें सगठन शक्ति का भी विकास हुआ है और इस कारण यहां के लोगों ने सामूहिक शक्ति प्रदर्शन के बल पर अनेक प्रश्नों को सुलझाया है।

न्याय-कार्य में सामुदायिक निर्णय-प्रक्रिया को लागू करने का प्रयास भी लोकअदालत ने किया है। लोकअदालत में सामूहिक विचार-विमर्श (public discussion) की पूरी गुंजाइश रहती है। न्याय कार्य में सामान्य जन भागीदार हों और दोनों पक्ष स्वयं न्याय-प्रक्रिया को समझकर निर्णय को स्वेच्छा से स्वीकार करें, यह प्रयास यहां किया जाता है।

निर्णय में सामुदायिक प्रक्रिया-पक्ष के अब तक के विकास पर से यह हम कहने की स्थिति में हैं कि इस बारे में अधिक प्रयास किये जाने की आवश्यकता है, क्योंकि देखने में आया है कि केन्द्रीय लोकअदालत में तो निर्णय की सामुदायिक प्रक्रिया एक सीमा तक चलती है परन्तु ग्रामस्तर पर यह अभी प्रचलित नहीं हो पायी है। इस कारण लोकअदालत के संस्थात्मक विकास में बाधा आती है और अन्त में यह प्रश्न इसके स्थायित्व से जुड़ता है। केन्द्रीय लोकअदालत में भी अभी तक एक व्यक्ति के नेतृत्व का अधिक प्रभाव है और इस कारण यहां भी निर्णय की सामुदायिक प्रक्रिया को अधिक मजबूत किए जाने की आवश्यकता है।

लोकअदालत के स्थायित्व का विश्वास उन लोगों में अधिक पाया गया जो लोकअदालत में न्याय प्राप्त कर चुके हैं या बैठकों में भाग ले चुके हैं। यह बात स्वीकार की गयी कि लोकअदालत के प्रचार एवं क्षेत्र में इसकी स्वीकृति की जो स्थिति है उसमें इसे स्थायी होना चाहिए। लोगों ने यह भी

स्वीकार किया कि अध्यक्ष (श्री हरिवल्लभ परीख) की अनुपस्थिति में लोक-अदालत चलती रहेगी। लेकिन प्रत्यक्ष अवलोकन एवं बातचीत के आधार पर हम इस निष्कर्ष पहुंचे हैं कि स्थायित्व का जो स्वरूप विकसित होना चाहिए था, उसका अभी अभाव दिखाई देता है। एक व्यक्ति के नेतृत्व की स्थिति एवं ग्राम-स्तर पर इसके विस्तार की कमी के कारण इसके स्थायित्व के लिए अधिक प्रयत्नशील एवं जागरूक रहने की आवश्यकता है।

संदर्भ

1. देखें सम्बन्धित तालिका।
2. देखें श्री हरिवल्लभ परीख, क्रान्ति का अरुणोदय, पृष्ठ 1, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, 1973।
3. देखें, श्री हरिवल्लभ परीख, क्रान्ति का अरुणोदय।
4. देखें, संलग्न तालिका।

12

उपसंहार

मानव समाज के विकास के साथ-साथ उसके सामाजिक जीवन को संगठित एवं नियंत्रित करने वाली अनेक संस्थाओं एवं व्यवस्थाओं का भी विकास हुआ। इन संस्थाओं में मुख्य हैं—विवाह, परिवार, धर्म, राज्य, आदि। ये संस्थायें सार्वभौमिक रही हैं चाहे देश एवं काल के अनुसार उनके स्वरूप में न्यूनाधिक भिन्नतायें दृष्टिगोचर होती हैं। सामुदायिक जीवन में व्यक्ति के पारस्परिक सम्बन्धों के आचरणों को नियमबद्ध करने वाली व्यवस्थाओं में न्यायिक संस्था का मुख्य स्थान रहा है और इसकी सार्वभौमिकता भी सर्वविदित है। न्याय-व्यवस्था के सचालन के लिए आदिकाल से ही मानव समाज ने न्याय के कुछ नियमो का सहारा लिया है। विभिन्न देशों की भौगोलिक परिस्थितियों और उनके फलस्वरूप विकसित सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन की भिन्नताओं के कारण नियमों में अन्तर भले ही रहा हो लेकिन आधारभूत नियमों को सभी जगह सादृश्य देखा जा सकता है। इन आधारभूत नियमों में मुख्य ये माने जा सकते है। जैसे—(क) अपराधी को दण्ड मिले, (ख) ऐसे व्यक्ति को दण्ड न मिले जो निर्दोष हो, (ग) न्यायालय के सम्मुख सब समान है, आदि। कानून एवं न्याय सामाजिक जीवन के अभिन्न अंग है। समाज में कानून का निर्माण नैतिकता के पोषण के लिए होता है और इस प्रकार दोनों का निकट का सम्बन्ध है। जिस समाज में जितनी अधिक नतिकता होगी, वहां कानून का पालन उतना ही अधिक होगा। यह देखने मे आया है कि सामान्यतया परम्परागत नियम नैतिकता की भित्ति पर आधारित रहे हैं।

किसी भी देश की न्यायिक संस्था के विकास को सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए क्योंकि उसका विकास इसी परिप्रेक्ष्य मे होता है। न्यायिक संस्था की संरचना, न्याय-प्रक्रिया, न्यायिक स्रोत एवं दण्ड

ग्रादि मे सामाजिक एवं सांस्कृतिक भिन्नता के कारण ग्रन्तर पाया जाता है।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भारतीय परम्परा एवं सामाजिक संरचना को ध्यान में रखते हुए ग्राम एवं न्याय पंचायतों को कानूनी रूप देने का भी प्रयास किया गया है। गांधीजी ने भारतीय समाज, संस्कृति एवं जन स्वभाव को ध्यान में रखते हुए पंचायतीराज का एक विचार रखा था। कुछ समाज सेवकों ने, जिनके ऊपर गांधी-विचार का प्रभाव था, ग्रामसेवा का कार्य प्रारम्भ किया। परन्तु यह कार्य पूर्णतया समाज-सेवा से सम्बन्धित था ग्रौर इसमें राज्य या कानून के हस्तक्षेप का ग्रभाव, जनसहयोग, विश्वास एवं जन स्वीकृति की भावना विद्यमान थी। समाज-सेवा के इस प्रयास में कुछ लोगों ने न्याय पक्ष को भी स्पर्श किया ग्रौर मौजूदा न्यायपद्धति की कठिनाइयों को ध्यान में रखकर गांधी-विचार के ग्रनुरूप न्यायपद्धति विकसित करने का प्रयास प्रारम्भ किया। इस प्रयास में यह ध्यान रखा गया कि यह भारतीय समाज के ग्रनुकूल हो, समाज की समस्याग्रों को सुलझाने में मददगार हो ग्रौर ग्राम्य समाज को मौजूदा न्यायव्यवस्थाकी कठिनाईयों से मुक्ति दिला सके। इसी परिप्रेक्ष्य में गांधीजी से प्रभावित होकर गांधी-विचार के प्रति निष्ठा रखने वाले युवक श्री हरिवल्लभ परीख सन् 1949-50 में समाज सेवा के काम में ग्रग्रसर हुए ग्रौर उन्होंने वड़ोदा जिला (गुजरात) स्थित छोटा उदयपुर तहसील के रंगपुर गांव में ग्राम सेवा का कार्य प्रारम्भ किया। ग्रामीण समस्याग्रों को सुलझाने एवं ग्रामस्वराज्य की स्थापना के प्रयास के दौरान वहां लोकग्रदालत संस्था का स्वतः विकास होता गया। इस लोकग्रदालत ने ग्रब तक हजारों छोटे-बड़े विवादों को सुलझाया है। इसका सघन कार्य-क्षेत्र वड़ोदा जिले की दो तहसीलों में है—(1) छोटा उदयपुर ग्रौर (2) नसवाडी। लोकग्रदालत एक ऐसी संस्था है जहां विभिन्न विवादों एवं समस्याग्रों को लोकतांत्रिक मूल्यों के ग्रनुसार स्वेच्छा एवं पंच निर्णय से सुलझाया जाता है। लोकग्रदालत राज्य के कानून से प्रतिबंधित नहीं है।

लोकग्रदालत के दो उद्देश्य दिखाई देते हैं:

1. गांव के लोगों में स्वशासन की भावना का विकास एवं उसका ग्रभ्यास कराना।
2. समाज के सभी वर्गों के लिए ऐसी सर्व सुलभ एवं सरल न्यायव्यवस्था का विकास करना जिससे उन्हें सस्ता एवं शीघ्र न्याय मिले।

लोकग्रदालत की नीचे लिखी विशेषतायें मान सकते हैं—

(क) इसकी सभी कार्यवाई खुले रूप में होती है। इसीलिए इसे ग्रोपन

कोर्ट (open court) भी कहा गया है ।

(ख) विकेन्द्रित स्वरूप—यह ग्रामस्तर पर फैल रहा है यद्यपि मौजूदा व्यवस्था में मुख्य केन्द्र एक स्थान पर है ।

(ग) न्याय-प्रक्रिया में लोकतांत्रिकता ।

(घ) निर्णय को स्वेच्छा से स्वीकार करना ।

(ङ.) राज्य के कानूनी बंधन का अभाव ।

(च) शीघ्र एवं सस्ता न्याय ।

(छ) स्वशासन का अभ्यास ।

(ज) न्याय-प्रक्रिया की सरलता एवं सहजता ।

(झ) सत्य की खोज की पूरी गुंजाइश ।

(ञ) समानता एवं सामाजिक न्याय ।

2. लोकअदालत के कार्य का फैलाव जिस क्षेत्र में है, वह आदिवासी-प्रधान है इसलिए आदिवासी संस्कृति की विशेषताओं ने भी लोकअदालत को प्रभावित किया है । इस क्षेत्र की गिरी हुई आर्थिक स्थिति, सामाजिक उपेक्षा एवं शोषण यहां के जन-जीवन को दूभर बनाते हैं । न्याय के लिए आदिवासी पंचायत इन्हें विरासत में मिली है जिसमें लोकअदालत के लिए स्वतः ही अनुकूल वातावरण उपलब्ध है । सामाजिक जीवन की विकट समस्याओं, आदिवासी समाज में व्याप्त अन्ध विश्वास और गलत एवं अमानवीय परम्पराओं ने जहां लोकअदालत के कार्य-क्षेत्र की आवश्यकता को बढ़ाया है, वहां यहां की आदिवासी संस्कृति ने इसकी मान्यता एवं प्रतिष्ठापन के अनुकूल वातावरण प्रदान किया है । क्षेत्र की भौगोलिक संरचना, आदिवासी समाज की सामाजिक व्यवस्था और परम्परायें लोकअदालत के विकास में मददगार हुई हैं ।

3. लोकअदालत के संगठन का किसी प्रकार का बना बनाया ढांचा नहीं है । आवश्यकतानुसार प्राप्त अनुभवों के आधार पर संगठन का विकास क्रमशः स्वतः ही हुआ है । इसके संगठन को काल-क्रम के अनुसार तीन वर्गों में बांट सकते हैं :

(क) चल लोकअदालत का संगठन ।

(ख) केन्द्रीय लोकअदालत का विकास एवं संगठन ।

(ग) ग्राम लोकअदालत का मौजूदा संगठन ।

प्रारम्भ में लोकअदालत का संगठन अध्यक्ष (श्री हरिवल्लभ परीख) के इर्द-गिर्द केन्द्रित था। बाद में उसे विकेन्द्रित किया गया और निर्णय-प्रक्रिया को अधिक लोकतांत्रिक किया गया। केन्द्रीय लोकअदालत के संगठन में (क) अध्यक्ष (ख) मंत्री (ग) जूरी और (घ) सभा का प्रमुख स्थान होता है। केन्द्रीय लोकअदालत में विवादों का विवरण, कराररखत, पत्र व्यवहार आदि रखा जाता है।

4. संगठन की भांति लोकअदालत की कार्य एवं निर्णय-प्रक्रिया का विकास भी क्रमशः हुआ है। प्रारम्भ में निर्णय विश्वास पर ज्यादा निर्धारित था और इस कारण निर्णय में एक व्यक्ति का अधिक महत्त्व था। कालान्तर में उसे लोकतांत्रिक बनाया गया और निर्णय में जन सहयोग (public participation) को स्थान दिया गया। मौजूदा व्यवस्था में लोकअदालत की निर्णय-प्रक्रिया का स्पष्ट स्वरूप देख सकते हैं। लोकअदालत की बैठकों के अवलोकन एवं चर्चा के बाद हमने इसकी प्रक्रिया को व्यवस्थित रूप में क्रमबद्ध एवं लेखाबद्ध करने का प्रयास किया है। इस सिलसिले में प्रथम प्रयास डा. एल. एम. सिंघवी एवं डा. उपेन्द्र बक्षी ने किया था। उक्त विद्वानों के मौलिक अध्ययन की पुष्टि करते हुए लोकअदालत की न्याय-प्रक्रिया को हम इस क्रम में प्रस्तुत करना चाहेंगे :

(1) विवाद का किसी पक्ष द्वारा लोकअदालत कार्यालय में नामांकन (Registration) करवाया जाना।

(2) सुनवाई के लिये दूसरे पक्ष को सूचना एवं तारीख दिया जाना।

(3) विवाद की सुनवाई प्रारम्भ होना।

(4) अध्यक्ष द्वारा विवाद को स्पष्ट किया जाना।

(5) दोनों पक्षों द्वारा पंच के रूप में कार्य करने के लिए अपनी ओर से दो-दो प्रतिनिधियों का नाम देना।

(6) सभा की राय लेकर अध्यक्ष द्वारा नामजद प्रतिनिधियों को जूरी (पंच) नियुक्त किया जाना।

(7) जूरी द्वारा विवाद पर विचार करना और समाधान खोजना।

(8) सभा द्वारा महात्मा गांधी का जय घोष करके निर्णय की पुष्टि।

(9) जूरी के निर्णय पर सभा द्वारा विचार और समाधान की घोषणा।

(10) करारखत का लिखा जाना।

(11) करारखत पर वादी-प्रतिवादी, जूरी एवं अध्यक्ष के हस्ताक्षर।

(12) गुड़ वितरण।

5. लोकअदालत के निर्णय को स्वेच्छा से स्वीकार किया जाता है। यही कारण है कि निर्णय की पूर्ति में ज्यादा कठिनाई नहीं होती। आमतौर पर लोकअदालत के निर्णय को तुरन्त ही क्रियान्वित कर दिया जाता है। फिर भी कभी-कभी निर्णय की पूर्ति में कठिनाई आ जाती है। यह कठिनाई एक पक्ष के असंतोष, निर्णय के समय कुछ मुद्दों के छूट जाने, व्यक्तिगत राग-द्वेष, किसी के बहकावे में आ जाने आदि कारणों से होती है। इस कठिनाई को दूर करने में पंचों की प्रमुख भूमिका होती है। पंच इस बात का प्रयास करते हैं कि निर्णय की धाराओं की पूर्ति हो। करारखत में निर्णय की पूर्ति न की जाने पर की जाने वाली कार्यवाही का भी उल्लेख होता है। यदि निर्णय की पूर्ति नहीं होती तो वह विवाद दुबारा भी लोकअदालत में आ जाता है। लोक-अदालत की कोई उच्च इकाई न होने के कारण उसके निर्णय के विरुद्ध अपील नहीं होती। हां, ग्रामसभा के निर्णय के विरुद्ध केन्द्रीय लोकअदालत में सुनवाई अवश्य होती है। निर्णय की पूर्ति की दृष्टि से लोकअदालत के प्रति विश्वास और सामाजिक दबाव का विशेष महत्त्व होता है। यह प्रश्न निर्णय के फलस्वरूप प्रतिवादी को प्राप्त सन्तोष की स्थिति से भी जुड़ा हुआ है। निर्णय के प्रति व्यापक सन्तुष्टि देखने को मिली है। इस कारण उसकी पूर्ति सम्बन्धी समस्या नहीं देखी गयी।

6. लोकअदालत के निर्णय की विभिन्न लोगों पर होने वाली प्रतिक्रिया के विषय में दो स्थितियां देखने में आयीं। जो लोग लोकअदालत के साथ निकट सम्पर्क में हैं और विवाद एवं होने वाले निर्णयों से संबद्ध हैं, उनकी प्रतिक्रिया एक प्रकार की है—ये लोग लोकअदालत की सफलता का तुलनात्मक दृष्टि से अधिक मूल्यांकन करते हैं, जबकि विशेष उत्तरदाता, जिनका लोकअदालत से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है, इसकी सफलता एवं उपयोगिता को उतना महत्त्व नहीं देते।

मोटे तौर पर लोकअदालत के निर्णय के प्रति विभिन्न प्रकार के लोगों की प्रतिक्रिया के बारे में ये बातें कही जा सकती हैं :

(क) निर्णय के बारे में वादी-प्रतिवादी की सामान्य प्रतिक्रिया यह देखने में आयी कि लोकअदालत में न्याय मिलता है। संभव है फैसला उनके पक्ष में नहीं हुआ हो, परन्तु न्याय मिलता है, उनके मन में भी यह विश्वास है।

(ख) वादी-प्रतिवादी के निकटवर्ती नाते-रिश्ते के लोग भी यह स्वीकार करते हैं कि यहां न्याय मिलता है और खुली अदालत के कारण जूरी पक्षपात नहीं कर पाता—हां, जूरीगण की राय में यदाकदा मतभेद होता है लेकिन उस स्थिति में अन्तिम निर्णय सभा या अध्यक्ष करता है और विवाद का समाधान हो जाता है।

(ग) सामान्य उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया कि लोकअदालत की निर्णय-प्रक्रिया को देखते हुए न्याय मिलने का विश्वास मजबूत होता है।

(घ) विशेष साक्षात्कार वाले उत्तरदाताओं ने लोकअदालत के निर्णय के प्रति एक सीमा तक शंका व्यक्त की है। लेकिन शंका के बावजूद लोकअदालत की उपादेयता, उसके महत्त्व एवं उसको प्राप्त सम्मान एवं मान्यता को उन्होंने भी स्वीकार किया है।

7. लोकअदालत के कार्य का एक मुख्य पक्ष सामाजिक परिवर्तन की धारा को सही दिशा देना भी रहा है। लोकअदालत का सामाजिक प्रभाव उसकी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। आदिवासी समाज के सामाजिक पिछड़ेपन, उसमें व्याप्त अशिक्षा और प्रचलित गलत परम्पराओं एवं अन्धविश्वास आदि को सही दिशा देने एवं समाप्त करने की दिशा में लोकअदालत की प्रमुख भूमिका है। लोकअदालत की कार्य-प्रक्रिया के दौरान भी लोगों को प्रर्याप्त प्रशिक्षण मिलता है। इस लोक शिक्षण का प्रभाव क्षेत्र के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन में देखने को मिलता है। शिक्षा एवं आर्थिक समृद्धि के क्षेत्र में भी कई उपलब्धियां देख सकते हैं। अन्धविश्वासों में कमी आई है, यह सभी ने स्वीकार किया है। इसके साथ-साथ आदिवासी न्याय-व्यवस्था में जनभागीदारी की भूमिका भी बनी है।

8. विवादों की संख्या में कमी

प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर हम यह कहने की स्थिति में भी हैं कि लोक-अदालत-क्षेत्र मे विवादों की संख्या में कमी की प्रवृत्ति है। तालिका संख्या-29 से इस निष्कर्ष की पुष्टि हो सकती है।

तालिका संख्या—29

लोकअदालत में आये विवादों की स्थिति

गांव	1972	1973	1974	1975 (नवम्बर तक)	योग
रंगपुर	10	13	9	10	42
मोटाबांटा	12	4	6	6	28
खैरका	21	18	15	5	59
जाम्बा	3	3	9	5	20
गजलाबांट	2	5	1	—	8
कमराहली	1	—	—	—	1
गोमाबांट	6	5	2	3	17
मंकोड़ी	7	6	9	19	41
मेघड़िया	4	—	6	7	71
बिजली	4	2	2	—	8
योग	71	56	59	55	241

उक्त तालिका से यह स्पष्ट है कि तीन गांवों को छोड़कर शेष सात गांवों में विवादों की संख्या कम हुई है। हमने इस बात की पुष्टि के लिए गांव में होने वाले विवादों की कुल संख्या एवं इन गांवों से सरकारी न्यायालय में जाने वाले विवादों की संख्या के बारे में भी जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया था। इन गावों में उक्त सन्दर्भ अवधि में सरकारी न्यायालय मे क्रमशः रंगपुर से—1, जाम्बा से—2, गजलाबांट से—1, मकोड़ी से—1 और मेघड़िया से—1 विवाद सरकारी न्यायालय में गये और अन्य गांवों से एक भी विवाद सरकारी न्यायालय में नहीं गया।

लोकअदालत मे भी पहले की अपेक्षा अब कम विवाद आते हैं, इस बात की पुष्टि भी कार्यालय मे प्राप्त तथ्यों से होती है। पिछले चार वर्षों में लोकअदालत में पंजीकृत विवादों की स्थिति इस प्रकार रही :

तालिका संख्या–30

विवादों की संख्या में कमी

वर्ष	पंजीकृत विवाद संख्या
1972	577
1973	574
1974	340
1975 (नवम्बर तक)	324

उपरोक्त दोनों तालिकाओं के आधार पर हम यह कहने की स्थिति में हैं कि लोकअदालत में आने वाले विवादों की संख्या तो कम हुई ही है, साथ ही साथ लोकअदालत में आने वाले कुल विवादों की संख्या में भी पिछले चार वर्षों में कमी हुई है। वैसे उक्त आंकड़ों के आधार पर यह तो नहीं कहना चाहेंगे कि यह संख्या बहुत उत्साहवर्धक है लेकिन विवादों की संख्या में कमी की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर अवश्य होती है। विवादों की संख्या में कमी के निम्न मुख्य कारण देखने में आये :

(क) आर्थिक विकास, खासकर कृषि के विस्तार के कारण रोज के जीवन में व्यस्तता बढ़ी है।

(ख) विवाह में स्थायित्व के कारण तलाक सम्बन्धी विवादों में कमी आयी है।

(ग) भूत-प्रेत, डायन तथा अन्य अन्ध-विश्वासों में कमी, जातीय सद्भाव में वृद्धि, शिक्षा में विकास एवं सामाजिक जागृति के कारण भी इस प्रकार के विवादों में कमी आयी है।

(घ) ग्राम-स्तर पर विवादों को सुलझाने की प्रवृत्ति बढ़ने के कारण भी विवादों की संख्या में कमी आई है।

केन्द्रीय लोकअदालत में कम विवादों के आने का एक सूक्ष्म कारण यह भी देखने में आया कि अध्यक्ष श्री हरिवल्लभ परीख के व्यस्त रहने के कारण लोकअदालत की बैठकें कम हो पाती हैं और कभी-कभी दो बैठकों के बीच

की अवधि भी लम्बी हो जाती है इसका प्रभाव विवादों की संख्या पर भी पड़ता है। सामान्यतया लोकअदालत की बैठक उसी समय होती है जबकि अध्यक्ष उपस्थित रहते हैं एवं अध्यक्ष के व्यस्त रहने पर लोगों को बैठक की तारीखें लेने में भी कठिनाई होती है।

सैद्धान्तिक योगदान

इस अध्ययन के आधार पर न्यायव्यवस्था एवं दण्ड के क्षेत्र में लोकअदालत के नीचे लिखे सैद्धान्तिक योगदान मान सकते हैं :—

(1) विवाद से सम्बन्ध पक्षों की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक परिस्थिति को दृष्टिगत रखते हुए न्याय करना—लोकअदालत किसी विवाद के बारे में निर्णय देते समय उसकी सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का भी ध्यान रखती है। एक ही प्रकार के दो विवादों के निर्णय या दण्ड में अन्तर देखा जा सकता है। यह अन्तर सम्बन्धित पक्ष की परिस्थिति-भिन्नता के कारण होता है। इसका प्रभाव सम्बन्धित पक्ष के मानस पर पड़ता है और इसका मानवीय पक्ष मजबूत होता है। यदि किसी पक्ष की आर्थिक स्थिति अत्यन्त कमजोर है तो उसे कम आर्थिक दण्ड दिया जाता है जबकि समान स्थिति में अच्छी आर्थिक स्थिति वाले पक्ष से वैसे ही मामले में अधिक आर्थिक दण्ड दिया जाता है। निर्णय देते समय उपरोक्त बातों का ध्यान रखा जाना न्याय के क्षेत्र में नया प्रयोग है। प्रचलित न्यायव्यवस्था में इन बातों का ध्यान नहीं रखा जाता है। विवाद एवं विवादी की परिस्थिति का ध्यान रखकर दण्ड का निर्धारण करना न्याय के सामाजिक एवं मानवीय पक्ष को मजबूत करने का एक प्रयास है।

(2) **सामाजिक नैतिकता को बल प्रदान करना**

लोकअदालत की निर्णय-प्रक्रिया के दौरान होने वाले शिक्षण से सामाजिक नैतिकता का विकास होता है। इसमें विभिन्न समुदायों एवं व्यक्तियों में आपसी सद्भाव बढ़ता है एवं नैतिकता के सही माप-दण्ड स्थापित होते हैं जिसका प्रभाव सामाजिक तनाव में कमी के रूप में दृष्टिगोचर होता है। न्यायालय सामाजिक नैतिकता के विकास में मददगार बने, न्याय के क्षेत्र में यह लोकअदालत का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

(3) सामाजिक परिवर्तन और लोक शिक्षण

समाज में परिवर्तन की सतत प्रक्रिया चलती रहती है। सामाजिक संस्थाओं में परिवर्तन की इस प्रक्रिया को सही दिशा देने का प्रयास लोक शिक्षण के माध्यम से लोकअदालत करती रही है। न्याय ऐसी संस्था है जहां सामाजिक व्याधियों से सम्बद्ध समस्यायें विवाद के रूप में आती हैं। मौजूदा व्यवस्था में न्यायालय इन विवादों को मात्र कानूनी एवं तकनीकी दृष्टि से सुलझाता है। लेकिन लोकअदालत विवाद के निर्णय में इस बात का ध्यान रखती है कि सामाजिक व्याधि समाप्त हो और सामाजिक परिवर्तन को सही दिशा मिले। जैसे पारिवारिक विघटन, समाज में महिलाओं का स्थान, अन्ध-विश्वास, शिक्षा आदि को सही दिशा देने का प्रयास।

(4) जनशक्ति का विकास

स्थानीय स्तर पर जनता की शक्ति का विकास हो, इसका प्रयास लोकअदालत द्वारा बराबर किया जाता रहा है। समाज में व्याप्त शोषण एवं गलत परम्पराओं को दूर करने के लिए जनशक्ति का विकास न्यायव्यवस्था में लोकअदालत का महत्त्वपूर्ण योगदान है। न्यायालय नागरिक चेतना की प्रक्रिया मजबूत करने में मददगार हो सकता है, यह लोकअदालत ने सत्याग्रहों एवं धरनों के माध्यम से प्रमाणित करने का प्रयास किया है। इस सम्बन्ध में अधिक अध्ययन एवं अनुसंधान किये जाने की आवश्यकता है।

(5) शारीरिक दण्ड से मुक्ति

अपराधी को दण्ड मिले, इस बात को स्वीकार करते हुए भी लोक-अदालत शारीरिक दण्ड में आस्था नहीं रखती। वैसे सैद्धान्तिक रूप से भी दण्डशास्त्री शारीरिक दण्ड के बारे में एक मत नहीं हैं। लोक-अदालत अपराधी को शारीरिक दण्ड न देने के साथ-साथ इस प्रकार का वातावरण निर्माण करती है जिससे अपराधी अपना अपराध स्वेच्छा से स्वीकार करे और अपनी भूल के लिए पश्चाताप अनुभव करे। पश्चाताप की इस उदात्त भावना से अपराधी का सुधार होता ही है, यह लोकअदालत की मान्यता है। यह दण्डशास्त्र के क्षेत्र में लोकअदालत का महत्त्वपूर्ण योगदान माना जा सकता है।

लोकअदालत की सीमा

(1) लोकअदालत न्याय के क्षेत्र में एक प्रयोग है, इस बात को स्वीकार करते हुए भी इसकी कुछ सीमाएं हैं। इन सीमाओं को दूर करने का प्रयास करने की आवश्यकता है ताकि उसका क्षेत्र और व्यापक हो सके। लोकअदालत की जो सीमाएं देखने में आई, उन्हें दूर करने पर उसे अन्य क्षेत्रों में भी विकसित किया जा सकता है और यह मौजूदा सरकारी न्यायव्यवस्था की कठिनाईयों को दूर करने में बड़ी सीमा तक मददगार हो सकती है।

(2) इस क्षेत्र की सांस्कृतिक विशेषता लोकअदालत के कार्य की एक सीमा निर्धारित करती पायी गयी। लोकअदालत का सघन कार्यक्षेत्र अब तक आदिवासी संस्कृति तक ही विशेष रूप से सीमित रहा है। गैर-आदिवासी समाज एवं संस्कृति में इसका फैलाव कम रहा है। अतः गैरआदिवासी समाज एवं संस्कृति वाले क्षेत्र में भी इस प्रकार के परीक्षण की आवश्यकता है। गैरआदिवासी समाज एवं संस्कृति आदिवासी समाज एवं संस्कृति से काफी हद तक भिन्न है, इस कारण वहां लोकअदालत का स्वरूप कुछ भिन्न भी हो सकता है।

(3) परिस्थिति शास्त्रीय (Ecological) दृष्टि से भी यह क्षेत्र सामान्य से भिन्न है। यहां की भौगोलिक परिस्थितियां जिस प्रकार की हैं, उसमें आर्थिक शोषण, गरीबी एवं पाश्चात्य सभ्यता से अप्रभावित जीवन पद्धति देखने को मिलती है, जबकि गैरआदिवासी एवं शहरी जीवन से प्रभावित क्षेत्र का जीवन भिन्न प्रकार है। ऐसे क्षेत्रों की सामाजिक, आर्थिक, नैतिक एवं राजनैतिक समस्यायें भी भिन्न हैं। इस परिस्थिति-भिन्नता से लोकअदालत की एक सीमा बनती है और भिन्न परिस्थितियों में इसके प्रयोग को आगे बढ़ाये जाने की आवश्यकता भी सामने आती है।

(4) जीवन की उलझनों की भिन्नता भी इसकी सीमा निर्धारित करती है। जीवन की जिस प्रकार की उलझनें सर्वेक्षित क्षेत्र में पायी जाती है वे अन्य क्षेत्रों, खास कर गैरआदिवासी क्षेत्र में, नहीं हैं। यहां का खुला जीवन, तलाक, पुनर्विवाह, स्त्रियों का स्थान, सहज एवं सरल मानवीय स्वभाव इन्हें अन्य समाजों से भिन्न करता है।

(5) ऐसा समाज जहां बहुत अधिक कानूनी उलझनें हैं और जीवन अत्यन्त गतिशील है एवं जहां व्यक्तिगत स्वार्थ का बोल-बाला रहता है, वहां

लोकअदालत किस सीमा तक सफल होगी, यह प्रश्न अभी तक अनुत्तरित है। यहां शिक्षा की कमी के कारण कानून की कम जानकारी है इसलिए अधिकांश लोग परम्परागत जीवन को स्वीकार करते हैं। शिक्षा के प्रसार से यह परिस्थिति बदल सकती है। शहर, औद्योगिक संस्कृतिक एवं गैर आदिवासी क्षेत्र की जीवन की उलझनों एवं कानूनी दाव-पेंचों को ध्यान में रखकर भी कार्य किये जाने की आवश्यकता है। लेकिन अभी तक इस दिशा में कोई खास प्रयास नहीं किया गया है। यही कारण है कि कस्बा, शहर एवं कानूनदां लोगों के मन में इस बारे में स्पष्टता नहीं है। यह स्पष्टता प्रयोग, अभ्यास एवं क्षेत्र के विस्तार से आ सकेगी।

(6) लोकअदालत की मौजूदा व्यवस्था भी इसकी सीमा दर्शाती है। इस समय लोकअदालत को विशेष व्यक्तित्व का नेतृत्व प्राप्त है जिसके कार्य के प्रति क्षेत्र के लोगों का विश्वास है और उसके प्रति भक्ति भी है। ऐसा विश्वास एवं भक्ति लोकअदालत के कार्य की एक सीमा मानी जा सकती है। हां वैसे यह प्रयास अवश्य चला है कि एक व्यक्ति के प्रति भक्ति लोकअदालत का आधार न बने और इसको एक न्यायव्यवस्था के रूप में स्वीकार किया जाय लेकिन हमें स्वीकार करना चाहिये कि अभी एक व्यक्ति के नेतृत्व का पूरा प्रभाव लोक-अदालत पर दृष्टिगोचर होता है। एक व्यक्ति के नेतृत्व के प्रभाव के कारण इसके संस्थात्मक विकास की कमी देखने में आयी। इस कमी को दूर किये बिना लोकअदालत स्थायित्व नहीं प्राप्त कर सकेगा साथ ही साथ इसका संस्थात्मक ढांचा भी मजबूत नहीं हो सकेगा।

सुझाव

(1) प्रस्तुत अध्ययन में जो बातें सामने आयी हैं, उसके आधार पर कुछ सुझाव दिये जा सकते हैं जो (क) लोकअदालत और (ख) सरकारी न्याय पद्धति दोनों के लिये उपयोगी हैं। हमारा यह मानना है कि लोकअदालत के व्यापक प्रसार के लिये इसके प्रयोग क्षेत्र को विस्तृत किया जाय। लोकअदालत जैसी व्यवस्था के लिये आवश्यक है कि अन्य क्षेत्रों में काम कर रहे अन्य निष्ठावान समाज सेवक भी अपने-अपने क्षेत्रों में इस प्रकार के प्रयोग में लगें।

(2) लोकअदालत की न्याय-पद्धति को अधिक विकसित एवं व्यवस्थित किये जाने की जरूरत है। इस दिशा में एक प्रयास तो यह किया जा

सकता है कि निर्णय-प्रक्रिया में सामूहिक निर्णय को और बढ़ावा दिया जाय। इस कार्य में मदद के लिये, यदि संभव हो तो, एक निर्णय संहिता का भी निर्माण किया जाय जिसको आधार मानकर ग्राम सभाओं द्वारा अपने-अपने क्षेत्र में विविध प्रकार के विवादों का निर्णय दिया जा सके। इससे स्थानीय नेतृत्व की मदद मिलने के साथ-साथ जूरीगण को भी निर्णय लेने में मदद मिलेगी। यह निर्णय संहिता स्थानीय समाज व्यवस्था, परम्परा, कानून एवं नैतिकता के आधार पर बनाई जा सकती है और इसमें कानूनविद् एवं समाजशास्त्रियों की भी मदद ली जा सकती है।

(3) लोकअदालत के केन्द्रीय एवं ग्रामस्तरीय दोनों कार्यालयों को अधिक व्यवस्थित किया जाय ताकि विवादों और उनके निर्णयों के बारे में और अधिक जानकारी रखी जा सके। अभी जो रेकार्ड रखे जाते हैं, वे भी पूरे तौर पर नहीं रखे जाते, ऐसा हमें महसूस हुआ है।

(4) लोकअदालत की व्यवस्था को स्थायित्व देने की दृष्टि से आवश्यक है कि इसे ग्रामस्तर पर विकेन्द्रित किया जाय और यह एक न्याय व्यवस्था के रूप में ग्रामस्तर पर स्वीकृति कर ली जाय। इस दिशा में अभी काफी प्रयास की आवश्यकता है, ताकि इसका संस्थात्मक ढांचा मजबूत हो सके।

(5) इस दृष्टि से लोकअदालत के कार्य एवं प्रक्रिया के अनुकूल सबल स्थानीय नेतृत्व विकसित किये जाने की भी आवश्यकता है। वैसे तो इस बात को सब स्वीकार करते हैं कि स्थानीय नेतृत्व विकसित हुआ है फिर भी गांव-गांव में इस कार्य के अनुरूप नेतृत्व विकसित करने की आवश्यकता कम प्रतीत नहीं होती। लोकअदालत की बैठक के दौरान स्वाभाविक रूप से इसकी कार्य-प्रक्रिया सम्बन्धी प्रशिक्षण तो मिलता है लेकिन यदि समय-समय पर स्थानीय नेतृत्व को इस काम में प्रशिक्षित करने के लिये शिविरों का आयोजन किया जाय तो वह और भी अधिक उपयोगी हो सकता है।

(6) लोकअदालत की व्यापक स्वीकृति की स्थिति को देखते हुए यह आवश्यक लगता है कि इस काम में ऐसे लोगों का भी सहयोग लेना चाहिये जो न केवल कानून के जानकार हों बल्कि जो लोकअदालत की भावना को भी भली भांति समझते हों। इससे इसका क्षेत्र विस्तृत

किये जाने में मदद मिलेगी ।

(7) लोकअदालत ने दण्ड का जिस ढंग से मानवीयकरण किया है वह अपराध एव दण्ड शास्त्र में महत्त्वपूर्ण योगदान है । इसका लाभ मौजूदा न्यायव्यवस्था को भी मिलना चाहिये । यह दो प्रकार से हो सकता है :—

(क) न्याय एवं व्यवस्था में लगे लोगों को लोकअदालत की कार्य-प्रक्रिया एवं व्यवस्था समझने के लिये यहां आना चाहिये । इस दृष्टि से न्यायव्यवस्था में लगे लोगों के लिए यहां शिविर एवं सेमिनार भी आयोजित किये जा सकते हैं और उनमें वकील, न्यायाधीश, जेल के अधिकारी-कर्मचारी एवं पुलिस अधिकारियों को आमंत्रित किया जा सकता है ।

(ख) लोकअदालत क्षेत्र को जेल की सजा भुगत रहे लोगों के लिये प्रशिक्षण केन्द्र बनाया जा सकता है । जिन कैदियों के लिए खुली जेल की व्यवस्था को स्वीकार कर लिया गया है, उन्हें यहां भेजा जाना चाहिये और खुली-जेल का एक प्रयोगात्मक केन्द्र यहां चलाया जाना चाहिये, ताकि लोकअदालत द्वारा जिस ढंग से विवादग्रस्त पक्षों के मानस को बदल कर आपसी तनाव घटाने एवं पारस्परिक सौहार्दभाव बढ़ाने के प्रयास किये गये हैं, उनकी जानकारी उन कैदियों को भी मिल सके और वे अपना भावी जीवन अधिक मधुरता एवं स्नेह भाव से बिताना सीख सकें ।

(8) लोकअदालत द्वारा दिये गये दण्ड, दोषी व्यक्ति के साथ किया जाने वाला व्यवहार, न्याय में मानवीय एवं सामाजिक मूल्यों का स्थान आदि बातों को सरकारी न्याय एवं दण्ड व्यवस्था किस रूप में और किस सीमा तक स्वीकार कर सकती है, यह भी एक विचारणीय विषय होना चाहिये । सरकारी न्यायालय विवाद के सामाजिक पक्ष को किस रूप में स्वीकार करें, यह भी विचारणीय विषय है ।

(9) सरकारी न्यायालयों की मुख्य कठिनाई न्याय-कार्य में देरी एवं अधिक खर्चा है । लोकअदालत इन दोनों कठिनाईयों से मुक्त है । यही लोकअदालत का मुख्य आकर्षण भी है । सरकारी न्यायालय इन दोनों कठिनाइयों से मुक्त हों, इस दिशा में प्रयास किये जाने जरूरी

हैं। लोकग्रदालत इसमें कई दृष्टियों से सहयोगी बन सकती है। जैसे :—

(क) अधिक से अधिक विवाद स्थानीय स्तर पर सुलझाये जायें, ताकि सरकारी न्यायालयों में ले जाये जाने वाले विवादों की संख्या घटे।

(ख) स्थानीय न्याय संस्थाओं को अधिक से अधिक न्यायिक अधिकार दिये जायें और लोकअदालत की विशेषताओं को ग्रहण करके चलने वाली स्थानीय न्यायव्यवस्था सुदृढ़ एवं विकसित की जाये। इससे मौजूदा न्यायालयों में विवादों की संख्या कम होने के साथ-साथ जन-साधारण में स्वशासन की भावना भी विकसित हो सकेगी।

(10) स्थानीय स्तर पर स्वशासन मजबूत बनाया जाना चाहिये, इस बात को स्वीकार किया जाना चाहिये। गांधीजी के ग्रामस्वराज्य की कल्पना को "नीचे की इकाई में स्वशासन हो और ऊपर की इकाई का विकास समुद्र की लहरों की भांति हो," मूर्त रूप देने का प्रयास किया जाना चाहिये।

(11) स्थानीय नेतृत्व के प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिये जिससे उनमें स्वशासन की योग्यता आये। पंचायतीराज के अन्तर्गत न्याय पंचायत की व्यवस्था है। प्रयोगात्मक रूप में बड़ोदा जिले की न्याय पंचायतों को लोकअदालत के साथ जोड़ना चाहिये और इसे न्यायिक दृष्टि से प्रयोग क्षेत्र बनाना चाहिये।

(12) सरकारी न्यायालय की कठिनाइयां एवं समस्यायें कम हों इसके लिये प्रयोगात्मक प्रयास किया जाय। इस प्रयोग के प्रथम चरण के रूप में ऊपर के सुझाव (सं० 11) के अनुसार लोकअदालत, न्याय पंचायत एवं अन्य सरकारी न्यायालयों में तारतम्य बैठाकर विवादों के शीघ्र निपटारे के लिए जिला स्तर पर एक प्रयोगात्मक योजना बनाई जानी चाहिये। प्रयोगात्मक योजना को न्याय की विविध समस्याओं के साथ जोड़ा जाना चाहिये। हमारी राय में लोकअदालत के अध्यक्ष एवं उस काम में लगे लोगों का इसमें पूरा सहयोग लेना चाहिये। इससे लोकअदालत, न्याय पंचायत एवं सरकारी न्याय व्यवस्था तीनों को नयी दिशा मिलेगी।

(13) इस प्रयोग पर विचार करने के लिये सरकारी न्यायालयों, न्याय पंचायतों (पंचायती राज), लोकअदालत के प्रतिनिधियों, समाज शास्त्रियों एवं उच्चस्तरीय प्रतिनिधियों की बैठक बुलायी जानी चाहिये।

(14) लोकअदालत का जो स्वरूप विकसित हुआ है, वह समाज सेवा कार्य में लगे लोगों के कार्यारम्भ के लिये उपयोगी है। देश भर में अनेक लोग ग्रामसेवा कार्य में लगे हैं और सुदूर गांवों में समस्याओं के समाधान का प्रयास भी कर रहे हैं। कई क्षेत्रों में विवाद सुलझाने का काम भी छोटे-मोटे पैमाने पर चलता है। लेकिन यह कार्य लोक-अदालत की भांति व्यवस्थित नहीं है। अन्य प्रदेशों में भी ग्रामदानी क्षेत्रों में विवादों को स्थानीय स्तर पर सुलझाने का प्रयास किया जाता है। वहां के कार्यकर्त्ता यहां के प्रयोग एवं अनुभव का लाभ ले सकते हैं और अपने क्षेत्र में इस प्रकार की न्याय-पद्धति को विकसित करने का प्रयास कर सकते हैं।

(15) लोकअदालत की व्यवस्था आदिवासी एवं पिछड़े क्षेत्र में विशेष रूप में उपयोगी हो सकती है। इससे शोषण एवं सामाजिक अन्धविश्वास में कमी आने के साथ-साथ उनमें स्वशासन की क्षमता का विकास भी होगा और आर्थिक विकास को भी गति मिलेगी। जिन आदिवासी क्षेत्रों में समाज सेवा में लगे हुए निष्ठावान कार्यकर्त्ता हैं, वहां इसका विकास सहज हो सकता है। निःस्वार्थ सेवा की भावना, प्रभावशाली नेतृत्व एवं ठोस कार्य में विश्वास इस प्रकार के कार्य को बढ़ाने के लिये आवश्यक हैं।

परिशिष्ट

परिशिष्ट में लोकअदालत के निर्णय, समस्याओं के समाधान के लिये किये गये प्रयास एवं करार-खत के नमूने नीचे लिखे क्रम में दिये गये हैं :

परिशिष्ट (क)

इसमें अध्ययन दल की मौजूदगी में लोकअदालत में जो विविध प्रकार के विवाद आये उनके नमूने दिये गये हैं। साथ ही कुछ अन्य विवादों की स्थिति एवं लोकअदालत द्वारा दिये गये निर्णय सम्बन्धी जानकारी भी संक्षेप में दी गई है।

परिशिष्ट (ख)

इसमें सरकारी न्यायालय में गये कुछ विवादों के संक्षिप्त नमूने दिये गये हैं।

परिशिष्ट (ग)

लोकअदालत द्वारा किये गये सामाजिक कार्य, क्षेत्र में अन्याय के अहिंसात्मक प्रतिकार सम्बन्धी समस्याएं एवं उसके समाधान के लिये किये गये प्रयास एवं सत्याग्रह के कुछ नमूने दिये गये हैं।

परिशिष्ट (घ)

इसमें लोकअदालत के निर्णय (करार-खत) के कुछ नमूने दिये गये हैं।

परिशिष्ट 'क'

लोकअदालत में निर्णित विवादों के नमूने

1. 'क' ने शिकायत पेश की कि उसका पति 'ख' उसे खाना नहीं देता, उसके साथ मारपीट करता है और बातचीत भी नहीं करता। लड़की पति के पास रहना चाहती है। उसके तीन साल का एक बच्चा भी है। 'ख' चुप रहता है। सभी उपस्थित लोग उसे समझाते हैं। समाधान सुझाते हैं कि तलाक की स्थिति में 'ख' 'क' को पैसा देगा, लेकिन बच्चा 'ख' के पास रहेगा। 'क' के दिमाग पर बच्चे के बिछुड़ने का डर है। आखिरकार लोकअदालत ने सारे विवाद पर विचार करके उसी दिन निर्णय दिया कि 'ख' पत्नी को साथ रखे। उसे खाना दे, झगड़ा न करे और उससे बोले-चाले। करार-खत लिखा गया जिस पर दोनों पक्षों के हस्ताक्षर हुए।

इस पूरी कार्यवाही से हम निम्न निष्कर्ष पर पहुंचे :—

(क) क और ख दोनों की बात बड़ी शांति से सुनी गयी और दोनों ने निडर होकर अपने विवाद की मुख्य बातें लोकअदालत के समक्ष पेश कर दीं।

(ख) दोनों के माता-पिता को विवाद के बारे में अपनी-अपनी बातें कहने का पूरा मौका मिला।

(ग) उपस्थित लोगों ने, जिनमें अधिकांश पड़ोसी एवं नाते-रिश्तेदार थे, 'ख' को समझाया।

(घ) दोनों पक्षों की ओर से नियुक्त चारों जूरियों ने सर्वसम्मत निर्णय दिया कि ख क को तलाक देना ही जरूरी माने तो उसे 'क' को रकम देनी पड़ेगी लेकिन सर्वोत्तम बात यह रहे कि 'ख' 'क' को अपने प्रेम से रखे।

इस निर्णय में कहीं भी आपसी तनाव बढ़ने की स्थिति नहीं दिखाई दी। निर्णय देने में उनकी दृष्टि इस तथ्य की ओर केन्द्रित रही कि 'क' और

'ख' दोनों छोटी सी बात को लेकर सम्बन्ध-विच्छेद न करें अपितु एक दूसरे की कठिनाई को समझें और आपसी तारतम्य बैठाकर सुख के साथ जीवन बिताना सीखें।

इस सुनवाई की दूसरी विशेषता यह थी कि 'क' और 'ख' दोनों ने अपनी गलती स्वीकार की। क ने कहा कि उसने पति द्वारा धक्का मारे जाने की बात गलत रिपोर्ट की थी तो 'ख' ने पत्नी के साथ किये गये दुर्व्यवहार के लिये क्षमा मांगी। अध्यक्ष ने निर्णय सुनाने के बाद उपसंहार में प्रेरणादायी भाषण देकर महिला जाति का सम्मान करने की और पारिवारिक जीवन को तनाव रहित व प्रेम पूर्ण बनाये रखने की अपील की और बताया कि जरा-जरा सी बात पर तलाक लेकर जीवन बिगाड़ना उचित नहीं है।

इस विवाद का एक और पहलू भी था। वह यह कि विवाद दो ग्रामदानी गांवों से सम्बन्धित था—'क' और 'ख' दोनों के परिवारजन अलग-अलग गांवों के थे लेकिन ग्रामदानी गांवों की ग्रामसभाओं ने मामले पर स्वयं निर्णय न देकर लोकअदालत के समक्ष इस विवाद को निर्णयार्थ प्रस्तुत किया था।

(2)

दूसरे विवाद का निर्णय लोकअदालत उसी दिन नहीं कर पायी। विवाद यह था कि 'क' को अपनी पत्नी के आचरण के बारे में ठोस एवं प्रामाणिक शंका थी और एक बार उसकी पत्नी अपने जेठ के साथ दुष्कर्म में लीन पकड़ी भी गई थी और ग्रामसभा ने बड़े भाई पर 400 रुपये दंड निर्धारित करके वह धनराशि 'क' को दिलवाई थी। क को शिकायत थी कि इस घटना के बाद भी पत्नी का आचरण ठीक नहीं रहा है और उसके विवाह को पांच वर्ष बीत जाने के बाद भी बाल-बच्चे नहीं हुए हैं। पत्नी ने शिकायत की कि पति ने दवा खिलाकर दो तीन बार गर्भपात कराया था। उसने यह भी कहा कि वह पति के पास रहना चाहती है लेकिन पति नहीं रखता है।

लोकअदालत की बैठक में उपस्थित लोगों ने पत्नी की गलती मानी लेकिन साथ ही 'क' को भी समझाया कि वह पत्नी को सुधार का एक मौका और दे।

जूरी की नियुक्ति की गई। जूरी ने दवा खिलाकर गर्भपात कराने की पत्नी की शिकायत गलत मानी लेकिन फिर भी जूरी दोनों पक्षों में पारस्परिक समाधान कराने में असफल रहे। 'क' के मन में पत्नी के आचार के प्रति अविश्वास बना ही रहा और पत्नी का मानस भी जूरीगण को साफ नजर नहीं आया। जूरी भी एकमत नहीं हो सके। एक जूरी ने क का पक्ष लिया

और 40—50 रुपये पत्नी को देकर उसे तलाक देने का आग्रह रखा। अन्य तीन जूरियों की राय उससे भिन्न थी। बाद में उस जूरी ने स्वीकार किया कि वह एक पक्षीय भूमिका निभा रहा है जो जूरी के सिद्धान्त एवं व्यवहार के विरुद्ध है इसलिये उसे जूरी से अलग किया जाये और भूल के लिये उसे क्षमा किया जाये। लेकिन फिर भी विवाद नहीं निपट पाया क्योंकि 'क' ने लोकअदालत से कुछ समय दिये जाने की मांग की। उधर पत्नी तात्कालिक निर्णय किये जाने पर जोर देती रही। अध्यक्ष ने समाधान खोजने के लिये अगली तारीख दे दी।

(3)

दो पक्षों में इंजिन की खरीद-बिक्री की रकम के लेन-देन के प्रश्न पर विवाद उठ खड़ा हुआ। लोकअदालत ने हिसाब-किताब का निरीक्षण किया और इंजिन खरीदने वाले को बाकी रकम किश्तों में भुगतान करने का निर्णय देकर विवाद का निपटारा कर दिया।

(4)

'क' ने ग्राम सभा में शिकायत की कि 'ख' ने उसे डायन कहा है। ग्रामसभा ने 'ख' पर 80 रुपये का जुर्माना किया और भविष्य में 'क' को डायन न कहने का निर्देश दिया। लेकिन 'ख' ने 'क' को न केवल डायन कहकर परेशान करना जारी रखा बल्कि उसे मारा पीटा भी और उसके विरुद्ध झूठी रिपोर्ट पुलिस में दर्ज कर दी। 'क' ने लोकअदालत के समक्ष अपनी शिकायत रखी। लोकअदालत ने पुलिस को पत्र भेजा कि वह 'क' को इस सम्बन्ध में परेशान न करे और लोकअदालत को इस विवाद के निपटारे में सहयोग दे। उस बैठक में मामला अनिर्णित रहा। अगली बैठक में समझौता हो गया और 'ख' ने अपनी गलती स्वीकार कर आगे से ऐसा न करने की प्रतिज्ञा ली।

(5)

'क' की शादी 'ख' के साथ 1970 में हुई थी। पत्नी को शिकायत थी कि पति की सूरत-शक्ल एवं व्यवहार उसे पसन्द नहीं है इसलिये वह तलाक चाहती है। फलतः ग्रामसभा ने तलाक स्वीकार कर दिया, लेकिन पति को संतोष नहीं हुआ। इसलिये 'क' ने लोकअदालत के समक्ष मामला प्रस्तुत किया। लोकअदालत दोनों पक्षों की बातें सुनकर समाधान किया कि 'क' आज से 15 दिन के भीतर-भीतर 'ख' को 525 रुपये दे और

'ख' उसको तलाक दे दे। 'ख' ने भी इस निर्णय को स्वीकार कर लिया।
'क' ने उसी दिन "ख" को दण्ड की रकम दे दी और पड़ोसी गांव के एक युवक से शादी करके उसके साथ चली गई।

(6)

'क' अपनी पत्नी 'ख' के साथ दुर्व्यवहार करता था इसलिये 'ख' अक्सर अपने पीहर चली जाया करती थी। पारस्परिक तनाव बढ़ रहा था और लोकअदालत के समक्ष मामला पेश हुआ तो पंचों ने निर्णय दिया 'क' 'ख' को परेशान करना बन्द करे और अच्छी तरह रखे। यदि वह ऐसा नहीं करेगा तो 'ख' की तलाक की प्रार्थना स्वीकार कर ली जायेगी। पंचों के निर्णयानुसार 'ख' ने भी यह इकरार किया कि वह भविष्य में अपने पति से बिना अनुमति प्राप्त किये पीहर नहीं जायेगी और अगर गई तो दण्ड देने की जिम्मेदार होगी।

(7)

'क' (पति) और 'ख' (पत्नी) में अक्सर मारपीट होती रहती थी। लोकअदालत ने निर्णय दिया कि 'क' भविष्य में 'ख' के साथ मारपीट नहीं करे और उसे परेशान करना बन्द करे। यदि वह ऐसा न करेगा तो उसे दण्ड देना होगा। 'ख' ने निर्णय स्वीकार करके करारखत पर यह लिख दिया कि आज के बाद वह 'क' को दवा खाकर मर जाने को नहीं कहेगी और यदि वह ऐसा कहेगी तो पंचों द्वारा दिया गया दण्ड उसे स्वीकार होगा।

(8)

रंगपुर गांव की एक महिला ने पिता की जमीन में हिस्सा प्राप्त करने के लिये सरकारी न्यायालय में आवेदन किया। 18 महीने का लम्बा अर्सा बीत जाने पर भी उसे सरकारी न्यायालय से किसी प्रकार का निर्णय प्राप्त नहीं हुआ तो उसने लोकअदालत की शरण ली। लोकअदालत ने उसके भाई को, जो दूसरा पक्ष था, बुलाकर सर्वसम्मत निर्णय दिया कि महिला को पिता की जमीन में हिस्सा दिया जाये। उस महिला के ससुराल में उसके पति की भी जमीन है। अब वह दोनों जगह खेती करती है और पीहर वाले गांव रंगपुर में स्थायी तौर पर रहती है। लोकअदालत का निर्णय शीघ्र तो हुआ ही लेकिन सरकारी न्यायालय में जाने के फलस्वरूप बहिन एवं भाई में जो कटुता एवं तनाव का वातावरण पैदा हो गया था, लोकअदालत ने उसके स्थान पर दोनों पक्षों में सौहार्द एवं स्नेह का भाव भी सुदृढ़ कर दिया।

(9)

एक व्यक्ति 'क' ने अपना खेत 'ख' के पास रहन रख दिया। चार साल बाद उसने 'ख' को रहन की रकम देकर अपना खेत वापस लेना चाहा तो 'ख' ने इन्कार कर दिया। 'क' ने सरकारी न्यायालय की शरण ली। काफी समय बीत जाने के बाद भी सरकारी न्यायालय से न्याय नहीं मिला तो वह लोकअदालत में आया। लोकअदालत ने निर्णय दिया कि 'ख' 'क' से रहन की रकम लेकर उसका खेत वापस कर दे। 'ख' ने खेत वापस कर दिया। अब 'क' उस खेत में आराम से खेती कर रहा है। लोकअदालत के नैतिक प्रभाव और सामाजिक न्याय-भावना के कारण ही 'ख' ने 'क' की जमीन आसानी से वापस कर दी, अन्यथा सरकारी न्यायालय के माध्यम से 'क' को जमीन वापस पाने में पता नहीं कितना धन एवं समय बरबाद करना पड़ता और फिर भी निर्णय उसके पक्ष में होता या विपक्ष में, इसकी कोई गारण्टी नहीं थी।

(10)

रंगपुर ग्राम में जमीन के मामले को लेकर 'क' की 'ख' से मारपीट हो गई। मारपीट की रिपोर्ट थाने में दर्ज करा दी गई लेकिन सुनवाई नहीं हुई। अतः मामला लोकअदालत के समक्ष प्रस्तुत हुआ। 150 व्यक्ति उपस्थित थे। अदालत ने निर्णय दिया कि वादी जमीन प्रतिवादी के सुपुर्द कर दे क्योंकि उसका हक है और प्रतिवादी वादी को 120 रुपया भरे।

(11)

रंगपुर के 'क' का जमीन के मामले को लेकर 'ख' से विवाद हो गया। एक साल तक न्यायालय में विवाद चला लेकिन फैसला नहीं हो सका। लोक-अदालत ने एक ही पेशी में निर्णय दे दिया जिसके अनुसार वादी को उसकी जमीन वापस मिल गयी एवं प्रतिवादी को 2350 रुपये मिल गये।

(12)

मोटावांटा के 'क' का जमीन के मामले में 'ख' से विवाद हो गया। मामला सरकारी न्यायालय में प्रस्तुत किया गया लेकिन निर्णय नहीं मिल सका। लोकअदालत ने दो पेशियों में मामले की सुनवाई करके जमीन प्रतिवादी को दिलवा दी और वादी को उसका पैसा मिल गया।

(13)

मोटावांटा के 'क' ने अपनी जमीन 'ख' के पास गिरवी रखी थी लेकिन

उसने 'ख' को उस खेत में बुवाई नहीं करने दी। लोकअदालत ने निर्णय दिया कि 'क' 'ख' को 2029 रुपये देगा तब जमीन उसे वापस मिल जायेगी।

(14)

खेरका की 'क' ने अपने पति की मृत्यु के पश्चात् उसकी जमीन पर अपना हक प्रस्तुत किया। दो बार तारीखें पड़ीं। पति के अन्य रिश्तेदारों के मुकाबले में पत्नी का जमीन सम्बन्धी हक स्वीकार किया गया। 150 व्यक्तियों की उपस्थिति में लोकअदालत ने जमीन मृतक की पत्नी को दिलवा दी।

(15)

जाम्बा के दो भाइयों—'क' और 'ख' में जमीन के बंटवारे के सवाल को लेकर विवाद उपस्थित हो गया। लोकअदालत ने 150 व्यक्तियों की उपस्थिति में दोनों भाइयों में विवादग्रस्त जमीन का बराबर-बराबर बंटवारा करा दिया।

(16)

जाम्बा का 'क' सरकारी खेत की जमीन लेना चाहता था। उसी भूमि को भूमिहीन किसान भी लेना चाहते थे। इन्हीं के हक की जमीन थी। 150 व्यक्तियों की उपस्थिति में लोकअदालत ने निर्णय दिया कि 'क' सरकारी जमीन न ले। करार-खत पर 'क' ने हस्ताक्षर कर दिये और भूमिहीनों के पक्ष में अपना हक छोड़ दिया।

(17)

'क' अपनी पत्नी को शराब पीकर पीटता था। लोकअदालत के समक्ष मामला प्रस्तुत हुआ तो उसने निर्णय दिया कि 'क' अपनी पत्नी को नहीं पीटेगा और यदि पीटेगा तो उसकी पत्नी को उसका घर छोड़कर दूसरा घर बसाने का अधिकार मिल जायेगा। उसने लोकअदालत के समक्ष करार-खत पर हस्ताक्षर कर दिये लेकिन बाद में पत्नी के साथ पुनः मारपीट की। उसकी पत्नी घर छोड़कर चली गई और दूसरा विवाह कर लिया।

(18)

'क' ने अपनी पुत्रवधू के साथ शारीरिक सम्पर्क स्थापित कर लिया। मामला लोकअदालत के समक्ष प्रस्तुत हुआ और उस स्त्री का तलाक हो गया।

वाद में 'क' ने उस पुत्रवधू से विवाह कर लिया और उसे दूसरी पत्नी बना लिया।

लोकअदालत के निर्णय की उपेक्षा करने के कारण आज समाज उसे गिरी हुई नजर से देखता है और उसका जन साधारण में कोई मान नहीं है। उसके साथ सम्पर्क करते हुए पड़ोसियों एवं ग्रामवासियों को शर्म आती है और संकोच होता है। दोनों ही 'क' एवं उसकी दूसरी पत्नी समाज में उपेक्षा एवं अवमानता का जीवन बिता रहे हैं।

(19)

'क' गांव की एक लड़की का विवाह 'ख' गांव के एक लड़के के साथ हुआ था। दोनों परिवारों में गहने एवं दहेज को लेकर 3-4 साल तक अनवन एवं विवाद चलता रहा। लड़की के पिता ने विवाद हल किये जाने का काफी प्रयास लेकिन कोई नतीजा नहीं निकला। आखिरकार मामला लोकअदालत के समक्ष प्रस्तुत किया। प्रतिवादी को लोकअदालत द्वारा पेशी के दिन उपस्थित होने के लिये आमंत्रण भेजा गया लेकिन वह उपस्थित नहीं हुआ पुनः आमंत्रण भेजा गया। लड़की का श्वसुर उपस्थित हुआ लेकिन वहू को घर ले जाने के लिये सहमति व्यक्त नहीं की। इस पर लोकअदालत ने निर्णय दिया कि लड़की का पिता लड़की के श्वसुर की चांदी के सांकलें आने वाली फसल के पहले लौटा देगा। श्वसुर वहू को घर लिवा ले गया। वरसों का विवाद महीने भर के भीतर निपटा दिया गया।

(20)

'क' पारिवारिक कलह के कारण अपने पति 'ख' के साथ नहीं रहना चाहती थी। मामला सरकारी न्यायालय में 1½ साल तक चला लेकिन कोई निर्णय नहीं हुआ। हार कर लड़की वालों ने लोकअदालत के समक्ष मामला प्रस्तुत किया। दूसरी पेशी पर ही, जो विवाद प्रस्तुत किये जाने के 15 दिन के भीतर ही रखी गई थी, लड़की को तलाक मिल गया और दोनों परिवारों का पारस्परिक तनाव समाप्त हो गया।

(21)

'क' को उसके पति ने पारस्परिक तनाव की वजह से घर से निकाल दिया यद्यपि 'क' से उसको नौ बच्चे हो चुके थे। लोकअदालत के समक्ष मामला निर्णयार्थ प्रस्तुत हुआ। लोकअदालत ने निर्णय दिया कि पति पत्नी को

900 रुपये जुर्माना अदा करे। 'क' को तलाक मिल गया और उसने दूसरा विवाह कर लिया।

(22)

'क' ने पुलिस थाने में अपने पति 'ख' के विरुद्ध मारपीट का मामला दर्ज कर दिया था, लेकिन नतीजा नहीं निकला तो लोकअदालत के समक्ष वह विवाद निर्णयार्थ आया। लोकअदालत ने निर्णय दिया कि पति पत्नी को तलाक दे दे। इस प्रकार शीघ्र ही निर्णय हो गया और तनाव भी समाप्त हो गया।

(23)

'क' ने पत्नी को पीटा इसलिये पत्नी अपने पीहर चली गयी। सरकारी न्यायालय में विवाद चला लेकिन एक वर्ष बीत जाने पर भी निर्णय नहीं हो सका। काफी खर्चा भी हो गया था। आखिर मामला लोकअदालत के समक्ष पेश हुआ और 'क' की पत्नी का तलाक स्वीकार हो गया।

(24)

'क' को उसके देवर ने पीटा। उसके सिर में ऐसी चोट लगी कि खून बहने लग गया। वह पीहर चली गयी। बाप ने 'क' के देवर के विरुद्ध सरकारी न्यायालय में फरयाद की, लेकिन नतीजा नहीं निकला। आखिरकार उसने लोकअदालत की शरण ली। देवर ने पंचों के सामने माफी मांगी। लोकअदालत ने निर्णय दिया कि प्रतिवादी भविष्य में ऐसा नहीं करेगा और करेगा तो लोकअदालत 500 रुपये तक जुर्माना ले सकती है।

(25)

गोयाबांट गांव की एक लड़की 'क' का विवाह सात साल पहले हरिपुरा गांव के एक लड़के 'ख' के साथ सम्पन्न हुआ था लेकिन 'क' लम्बे अर्से से 'ख' से अलग रह रही थी।

लोकअदालत के समक्ष विवाद प्रस्तुत हुआ। 'क' ने बताया कि 'ख' के साथ उसका कोई झगड़ा नहीं है लेकिन 'ख' का पिता (श्वसुर) उसे बुरी नजर से देखता है। दूसरे लोगों की उपस्थिति में वह उसे साड़ी से मुंह ढंका हुआ रखने के लिये कहता है और मुंह न ढंकने पर भर्त्सना भी करता है। लेकिन जब वह अकेला होता है तो वह मुंह ढंका रखने पर उसे डांटता रहता है इसी कारण वह पति के साथ नहीं रहती क्योंकि पति अपने पिता के साथ

है। यदि उसका पति अलग रहने लग जाये तो वह उसके साथ खुशी से रह सकती है।

'ख' के पिता ने लोकअदालत द्वारा सुझाया गया समाधान स्वीकार कर लिया। समाधान के करारखत में लिखा गया कि यदि श्वसुर भविष्य में बहू पर कुदृष्टि रखता हुआ पाया गया और लोकअदालत के समक्ष इसका प्रमाण प्रस्तुत हो गया तो उसे 500 रुपये का दण्ड भरना पड़ेगा और अपनी पुत्रवधू पर उसके समस्त अधिकार खत्म हो जायेंगे।

'क' 'ख' के साथ श्वसुर से अलग मकान में रहने के लिये चली गयी।

(26)

'क' अधेड़ उम्र की महिला थी जिसके पांच बच्चे थे। वह बीमार पड़ी तो उसके पति 'ख' ने उसके इलाज के लिये एक साधू 'ग' की सेवायें प्राप्त की और 'ग' द्वारा दी गई जड़ी बूंटियों के इलाज से वह कुछ अर्से बाद ठीक हो गयी। इलाज के दौरान 'ग' के मकान में रही और इस अर्से में 'क' और 'ग' में पारस्परिक प्रेम सम्बन्ध कायम हो गया। 'क' स्वस्थ होते ही अपने कपड़े-लत्ते लेकर 'ग' के साथ रहने के लिये चली गयी। कुछ दिन बाद किसी ने 'ग' की पिटाई कर दी तो 'क' ने लोकअदालत के समक्ष शिकायत प्रस्तुत की।

लोकअदालत की बैठक में 'क' ने बताया कि जब 'ग' उसका इलाज करने के लिये उनके घर पर ठहरा हुआ था तो 'ख' की सहमति से उसके भक्तों द्वारा भेंट किये गये अनाज और पैसे से उनका घर का खर्च चलता था। 'ख' स्वयं भी अक्सर 'ग' से रुपये उधार ले लिया करता था। एक दिन 'ख' ने 'क' से कहा कि वह जहां चाहे चली जाये लेकिन घर में कोई कार्य नहीं कर सकती। 'क' ने 'ख' से क्षमा भी मांगी लेकिन उसने कुछ भी नहीं सुना और घर से धक्का देकर निकाल दिया। निकालने के साथ-साथ यह भी कह दिया कि वह अपने पीहर नहीं जाये। उस स्थिति में 'क' के पास 'ग' के घर चली जाने के अलावा कोई चारा नहीं रहा। वह 'ग' का कार्य करती थी और 'ग' उसका भरण पोषण करता था। इस बीच 'ख' दो-चार बार 'ग' के घर पर भी आया और 'ग' से कुछ रुपया उधार लेकर चला गया। इस पर 'क' ने 'ग' से कहा भी कि वह 'ख' को पैसा उधार न दे क्योंकि पैसा उधार ले लेकर खाने से वह सुस्त हो जायेगा। 'ग' ने 'ख' से यह भी कहा कि तुम 'क' को क्यों पीटा करते हो ? उसे ले जाओ और प्रेम से रखो, लेकिन 'ख' ने उसकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। इस बीच 'क' की बहन विधवा हो गयी। उसके तीन चार

बच्चे भी थे। 'ख' उसे अपने घर ले आया और अब वह उसके साथ रह रहा है। इसके बावजूद उसने 'ग' की पिटाई करवाई है और अब उससे दवाई के और उसके बदले में रुपये मांग रहा है।

'ख' ने बताया कि उसने 'क' को नहीं निकाला। वह तो स्वयं 'ग' के पास चली गयी थी। यह सही है कि 'क' की विधवा बहन उसके साथ रह रही है और उसके और अपने बच्चों की देखभाल कर रही है और वह अब 'क' को साथ भी रखना नहीं चाहता। लेकिन उसने 'क' के पिता को दी गयी दहेज की धनराशि 'ग' से उसे दिलाये जाने की मांग की।

'ग' ने कहा कि उसकी कोई गलती नहीं है। वह कबीरपंथी साधू है और 'क' को अपनी स्वयं की मरजी से नहीं रखना चाहता है। 'क' स्वयं उसके पास आई है। 'क' ने भी इस बात का समर्थन किया लेकिन बैठक में उपस्थित एक-दो कबीरपंथी 'ग' को मारने के लिये उद्यत हो गये। बड़ी मुश्किल से स्थिति शान्त हुई।

जूरी की नियुक्ति की गई। सर्वसम्मत निर्णय हुआ कि 'ग' को 250 रुपया दण्ड राशि 'ख' को देनी पड़ेगी। 'क' चाहे तो 'ग' के साथ रह सकती है। 'ख' को 'क' की विधवा बहन के साथ रहने की अनुमति मिल गयी।

अध्यक्ष के अनुरोध पर दण्ड राशि 250 रुपये से घटाकर 200 रुपये कर दी गयी। 'क' की इस प्रार्थना पर कि जब वह अपने बच्चों को देखने 'ख' के घर आये तो वह उसे नहीं पीटे, 'ख' ने उत्तेजित होकर कहा कि वह उसे गांव में पैर नहीं रखने देगा।

इस पर लोकअदालत ने 'ख' को समझाया कि अब 'क' पर उसका कोई अधिकार नहीं रहा है। इसलिये अब यदि वह बच्चों को देखने के लिये घर पर आये तो 'ख' उसके साथ अतिथि जैसा व्यवहार करे।

हंसी के ठहाकों के बीच लोकअदालत का समाधान स्वीकार कर लिया गया।

(27)

'क' ने अपने पति 'ख' के साथ रहना अस्वीकार कर दिया। उसे कई बार समझाया गया लेकिन वह पति के पास नहीं गयी। लोकअदालत में मामला पेश हुआ तो 'क' ने बताया कि 'ख' के बड़े भाई की पत्नी ने उसके खाने में बाल डाल दिये थे और उसे आशंका है कि वह किसी रोज उसको जहर भी दे सकती है। इसलिये वह इस घर में कभी नहीं जायेगी।

लोकअदालत ने महसूस किया कि गलती 'क' की है। पंचों की राय रही कि 'क' का पिता 350 रुपये धनराशि दे जिसमें से 'ख' को 325 रुपये दिये

जायें और 25 रुपये का गुड़ वितरण किया जाये।

अन्ततोगत्वा 300 रुपया 'ख' को दहेज के वापस लौटाये गये और 50 रुपये जुर्माने के रूप में लिये गये। 'क' ने अपने पैर में से 'ख' द्वारा दिया गया कड़ा निकाल दिया और तलाक सम्पन्न हो गया।

परिशिष्ट 'ख'

सरकारी न्यायालयों में प्रस्तुत विवादों के नमूने

(1) 'क' का 'ख' से झगड़ा हो गया। गांव वालों ने 'क' को मामला लोक-अदालत के समक्ष प्रस्तुत करने की राय दी। 'क' नहीं माना। मामला सरकारी न्यायालय में गया। मामले का फैसला होने में तीन साल निकल गये। 1100 रुपये से अधिक खर्च हो गये और दोनों ही पक्षों को अन्य असुविधायें भी भोगनी पड़ीं। फैसला हो जाने पर भी आपसी कटुता एवं तनाव कायम है।

(2) 'क' की पत्नी ने विवाह के पांच महीने बाद ही एक बच्चे को जन्म दे दिया। 'क' ने अपनी पत्नी के साथ डांट-डपट की और कहा कि यह बच्चा किसी और मर्द से हुआ है। पत्नी ताने सुनते-सुनते परेशान हो गयी। उसने बच्चे को नाले में फेंक दिया। सुबह चरवाहों ने बच्चे का शव देखा और गांव वालों को बताया तो गांव वालों ने पुलिस में खबर कर दी। पुलिस ने 'क' की पत्नी को गिरफ्तार करके उसका चालान न्यायालय में कर दिया। मुकदमें में 1000 रुपये खर्च हो गये, लेकिन मामले का समाधान नहीं हुआ है।

(3) 22 साल के एक नौजवान ने दो भाइयों के खेत में धान की चोरी करली। दोनों भाइयों ने गुस्से में आकर चोरी करने वाले लड़के को मार डाला। सरकारी न्यायालय में मुकदमा चला। दोनों भाई न्यायालय में बिना दण्ड पाये बरी हो गये। खर्चा जरूर 6200 रुपया हो गया। मृत लड़के के बाप ने अपराधियों को सजा दिलाने के लिये 250 रुपये खर्च किये, लेकिन रुपये के बल पर आठ महीने के भीतर ही अपराधी बरी हो गये। गांव के लोग सच्चाई जानते हैं लेकिन अदालत के निर्णय के कारण चुप रहने के लिए बाध्य हैं।

(4) 'क' ने 'ख' के खेत से लकड़ी चुराली। सरकारी न्यायालय में मामला गया। 2 महीने तक केस चला। 'क' को 25 दिन की जेल

भुगतनी पड़ी और 200 रुपये खर्च हो गये।

(5) दो भाइयों की जमीन गांव के दो व्यक्तियों ने बनिये की मदद से अपने कब्जे में करली। मामला तीन साल से सरकारी न्यायालय में चल रहा है। 2000 रुपये खर्च हो चुके हैं लेकिन अभी तक दोनों भाइयों को अपनी जमीन नहीं मिल पायी है।

परिशिष्ट 'ग'

लोकअदालत और समस्याओं के समाधान का प्रयास

(1)

सामाजिक मान्यताओं में परिवर्तन

रतनपुर गांव की एक बहन नन्दा के पति मंगाभाई गोहाई तीन वर्ष पहले चल बसे। नन्दा और तीन लड़कियां रह गयीं। लड़का नहीं था। मंगाभाई की 9 एकड़ जमीन थी जो परिवार के गुजारे भर के लिये काफी थी। मंगाभाई के कोई भाई नहीं था, केवल एक बहन थी, जिसकी बहुत पहले शादी हो चुकी थी। इस इलाके के आदिवासियों में अब तक ऐसी प्रथा रही है कि विधवा औरत अपने देवर या पति के छोटे भाई के साथ जीवन बिता सकती है। छोटा भाई न हो तो बड़े भाई के साथ दूसरी पत्नी के रूप में रह सकती है। इस रिवाज का उद्देश्य यह है कि परिवार की जमीन परिवार में ही रहे। अगर मृत भाई की पत्नी इस प्रकार का व्यवहार पसन्द नहीं करे तो उसे परिवार से निकाल दिया जाता था।

नन्दा के पति की बहन शांति और बहनोई की नीयत नन्दा बहन की जमीन पर गई। उन्होंने नन्दा के घर में रहना शुरू कर दिया और खेत में भी काम करने लगे। उसके साथ लड़ाई-झगड़ा किया और पटवारी से मिलकर शांति के पति ने मंगाभाई की जमीन पर अपना नाम दर्ज करवा दिया। मामला ग्रामसभा के सामने आया लेकिन ग्रामसभा इस प्रश्न पर बंटी हुई थी। एक दल परिवार की जमीन परिवार में ही रहने के नाम पर शांति को जमीन का मालिक स्वीकार करने के पक्ष में था तो दूसरा इसे सामाजिक अन्याय मानकर यह चाहता था कि मृतक की पत्नी, चाहे उसके बच्चे हों या न हों, अपने पति की जायदाद की मालिक बनी रहनी चाहिये।

अन्त में गारदीया भाई ने बीच का मार्ग सुझाया "मृतक की पत्नी चाहे तो अपने बच्चों के साथ जमीन पर रहे, चाहे तो किसी से शादी करले, शर्त इतनी ही रहे कि वह शादी करके नये पति के घर

या गांव न जाये, किन्तु पति इसके घर पर रह कर खेतीवाड़ी करे। जमीन पत्नी के नाम पर ही रहे। अगर बच्चे हों तो वे उस जमीन के उत्तराधिकारी माने जायें, पति उस परिवार का पालक जरूर रहे किन्तु मालिक नहीं रहेगा। गांधीवादी परिभाषा में वह उस परिवार की सम्पत्ति का ट्रस्टी बनकर उपयोग करे।"

प्रस्ताव सर्वानुमति से स्वीकार हो गया। ग्रामसभा ने प्रस्ताव कर पटवारी से जो कच्ची एन्ट्री उसने शांति के पति के नाम दर्ज की थी, उसे रद्द कराया।

इस प्रकार लोकअदालत के माध्यम से नयी सामाजिक मान्यता स्थापित हुई और वर्षों से चली आ रही सामाजिक दूषण की एक प्रथा का अन्त हुआ।

(2)

अन्धविश्वास से मुक्ति

वाटड़ा गांव की रावली बहन के बारे में मुआ (ओझा) ने यह फतवा दे दिया कि वह डाकिन है और वही गांव के पशु और मनुष्यों को खा रही है। मुआ का बोल उनके लिये भगवान का बोल था। मुआ के इस कथन से उत्तेजित होकर गांव के लोगों ने रावली पर हथियारों से हमला बोल दिया और उसके परिवारजनों की उपस्थिति मे ही, जो मुआ के हुक्म और पूरे गांव में उसके कथन को मिलने वाले समर्थन से भयाक्रान्त होकर चुपचाप खड़े रहे, उसकी खूब मार-पिटाई कर दी। उसके शरीर पर घाव ही घाव हो गये और वह बेहोश होकर गिर पड़ी। मारने वाले यह सोच कर चले गये कि वह मर चुकी है लेकिन उसके परिवारजनों को उसकी सांस चलती हुई दिखाई थी। वे उसे खाट पर लिटाकर अस्पताल ले गये और उसका इलाज कराया। डाक्टर के बुलाने पर पुलिस आई। पहले तो उसने रावली के परिवारजनों के प्रति सहानुभूति प्रकट की किन्तु दूसरे दिन गांव के पटेल और अन्य कुछ लोग थाने पर गये और पुलिस का व्यवहार बदल गया। उसके पति का गांव जाना मुश्किल हो गया। उसकी खेती-बाड़ी खराब हो गयी। वह किसी तरह लुक-छिपकर रात को गांव आता था लेकिन सवेरा होते ही गांव छोड़ देता था।

इस परिस्थिति में मामला लोकअदालत के समक्ष पेश हुआ। गांव वालों को निमंत्रण भेजा गया। पुलिस को भी नोटिस दिया गया। रावली और उसका पति दिया लोकअदालत का नोटिस और उनको नये सिरे पर दी गयी शिकायत लेकर पुलिस थाने पहुंचा। पहले तो पुलिस अधिकारी काफी

क्षुब्ध हुये लेकिन बाद में उन्होंने कहा कि तुम लोग इस प्रकार की फरियाद देना चाहते हो तो मैं ले लूंगा किन्तु याद रखो, पुलिस कोई 24 घण्टे आपके साथ नहीं रहेगी। पूरा गांव एक तरफ है। मुआ का उनको आदेश है। अत: वे तुम्हें छोड़ेंगे नहीं। तुम जान बचाना चाहते हो तो गांव छोड़कर कहीं भाग जाओ। वे हतोत्साह होकर थाने से वापस लौट आये।

उधर पुलिस को भेजी गयी लोकअदालत की सूचना पूरी तफसील के साथ अखबारों में छपी। इसका पुलिस पर भी असर पड़ा। लोकअदालत की बैठक में अच्छी उपस्थिति थी। सारा गांव आया था। पहले तो गांव के अगुआओं ने इस बात को माना ही नहीं कि उन्होंने रावली को पीटा है। लेकिन बाद में उन्होंने सच-सच बयान कर दिया।

लोकअदालत के अध्यक्ष ने मिथ्या वहमों और झूठी मान्यताओं के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए लोकअदालत के सदस्यों से पूछा, "आप में कितने ऐसे लोग हैं जो अब भी यह मानते हैं कि डाइन बन कर कोई औरत किसी को खा सकती है?" जवाब में एक भी हाथ नहीं उठा। लेकिन बाटड़ा के लोगों ने कहा "मुआ के आदेश को हमने देवी का आदेश माना है।"

मुआ को बुलाया गया। लोकअदालत की ओर से मुआ से सवाल किया गया "आपके शरीर में जब देवी आती है तब सब कुछ कह देते हैं और जो चाहें सो कर लेते हैं। हम आपके सामने एक पानी का गिलास भरकर रख रहे हैं। आप इसको खून में बदल दें। अगर आप पानी को खून में न बदल सके तो हम एक प्याले में कोई भी चीज भरकर रख देंगे। आप बताइये इसमें क्या है? अगर आप किसी के शरीर में घुस कर यह बता सकते हैं कि उसने क्या खाया है तो यह बताना आपके लिये बहुत ही मामूली बात होनी चाहिये। गांव के लोग लोकअदालत के इस तर्कयुक्त सवाल से प्रभावित हुए और उन्होंने भी लोकअदालत के सवाल का समर्थन कर दिया। मुआ बगलें झांकने लग गया। लोगों की मौजूदगी में उसके ज्ञान और देवीपन का दिवाला निकल गया।

तुरन्त गांव के कुछ लोग बोल पड़े—"हमने इस मुआ के चक्कर में आकर बहुत बड़ा पाप किया है। लोकअदालत हमें चाहे जो सजा दे।"

लोकअदालत ने दोनों पक्षों से दो-दो जूरी नियुक्त करने को कहा। करीब घण्टे भर बाद जूरी ने अपना सर्वसम्मत फैसला सुनाया "हमने इस मामले पर काफी सोचा, गुनाह बहुत गंभीर प्रकार का है। एक तरह से लोगों ने रावली बहन का कत्ल ही कर दिया था। संयोग की बात है कि वह किसी तरह बच गयी। लोगों ने यह कार्य अज्ञानतावश किया है। जांच

से पता चला है कि गांव वाले अब तक पुलिस को 700 रुपये और वकील को 500 रुपये दे चुके हैं। अतः इन लोगों पर ज्यादा दण्ड डालना मुनासिब नहीं। रावली बहन की दवा आदि पर जो खर्च हुआ है, उसके लिये गांव के लोगों से 125 रुपये दिलाये जायें।"

उपस्थित लोगों ने इस फैसले को सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया। रावली बहन ने 25 रुपये का गुड़ मंगवाकर लोकअदालत की बैठक में उपस्थित लोगों को बांटा। स्नेह व सद्भाव के वातावरण में लोकअदालत उठ गई। अज्ञान का अंधकार साफ जो हो चुका था!

(3)

आर्थिक शोषण की समाप्ति

खायरिया गांव की ग्रामसभा ने प्रस्ताव करके तणखला कस्बे के साहूकारों को नोटिस दिया कि वे अपना हिसाब करके ग्रामवासियों की जमीनें वापस करदें। कुछ व्यापारियों ने ग्रामसभा के समक्ष उपस्थित होकर हिसाब कर दिया और जमीन भी लौटा गये लेकिन कुछ व्यापारियों ने संगठन करके ग्रामसभा के प्रस्ताव का वहिष्कार किया।

ग्रामसभा ने इन व्यापारियों का वहिष्कार करने और उनकी दूकानों व मकानों पर धरना देने का कार्यक्रम बनाया। व्यापारी आन्दोलनकारियों के प्रदर्शन के सामने स्वतः झुक गये। उसी दिन शाम को उन्होंने समझौता कर लिया।

यहां यह उल्लेख करना अप्रासांगिक नहीं होगा कि जैसे ही इस ग्राम ने ग्रामदान का संकल्प पत्र भरा था, पुलिस कर्मचारी गांव में पहुंच गये थे और लोगों को दानपत्र वापस लौटाने के लिये न केवल डराया धमकाया बल्कि गांव के 8 अगुआओं को पकड़कर पुलिस थाने में बन्द कर दिया। गांव वालों ने मुकाबला किया। गांव में सभा हुई और कई गांव के लोग एकत्रित होकर पुलिस थाने पहुंचे। उनके द्वारा उद्घोषित नारों से पुलिस वाले घबरा उठे। उधर कुछ लोग खायरिया और जीतनगर के अगुआओं को लेकर राजपीपला स्थित डिप्टी इन्सपेक्टर पुलिस के कार्यालय तक गये और उनसे पूछा कि ग्रामदान करना किस धारा के अन्तर्गत जुर्म बनता है और आठ लोगों को क्यों हिरासत में रखा है? डिप्टी साहब यह सुनकर शर्मिंदा हुये। थाने के पुलिस कर्मचारी को ग्रामवासियों की उपस्थिति में डांटा फटकारा, चाय पिलाई और क्षमा मांगते हुए विदा किया।

लोकअदालत द्वारा जागृत अहिंसात्मक प्रतिकार एवं निर्भयता की भावना

ने सदियों से चली आ रही आर्थिक शोषण की भीषण प्रक्रिया पर तीव्र प्रहार किया।

(4)

चोरी की कपास की खरीददारी बन्द

नलवांट (ग्रामदानी) गांव की ग्रामसभा ने गांव के उन व्यापारियों को, जो चोरी की कपास खरीद कर गांव को बुरी तरह लूटते थे, नोटिस दिया कि वे अगर चीजों का ठीक-ठीक मूल्य नहीं लेंगे और खेतों की चोरी का माल—कपास इत्यादि खरीदेंगे तो गांव उनका बहिष्कार करेगा। ग्रामसभा के नोटिस का कुछ असर तो हुआ—चीजों के दाम कुछ सुधरे और मापतोल भी ठीक होने लगी लेकिन चोरी का माल छोड़ना मुश्किल था क्योंकि चोरी का माल इन्हें आधे से भी कम कीमत में मिल जाता था और व्यापारी इतना बड़ा लालच आसानी से कैसे छोड़ सकते थे!

ग्रामसभा को दुबारा नोटिस देना पड़ा। ग्रामसभा ने चोरी का माल खरीदने वाले दूकानदारों की दूकानों के सामने 24 घण्टे की पिकेटिंग शुरू कर दी। नतीजा अच्छा निकला। चोरी का माल लेना बन्द हुआ, लेकिन व्यापारियों ने ग्रामसभा के लोगों से बदला लेने का पक्का निश्चय कर लिया।

एक दिन नजदीक के गांव के एक धनी किसान के पम्प इंजन के कुछ पुर्जों की चोरी हो गई। व्यापारियों ने पुलिस वालों को बताया कि आस-पास में केवल गजलावांट के ग्रामदानी गांव में ही इंजन पम्प है। हो न हो, यह चोरी का काम गजलावांट के किसानों ने ही किया होगा।

पुलिस अधिकारी गजलावांट गांव के मुखिया श्री छोटाभाई के घर पहुंच गये। जब छोटाभाई ने तलाशी लिये जाने का विरोध किया तो पुलिस अफसर काफी नाराज हुआ और बोला "कौन होती है तुम्हारी ग्रामसभा हमारे काम को रोकने वाली।" वे छोटाभाई को पकड़कर नलवांट के एक धनी किसान के घर ले गये। गांव के दूसरे लोगों को इसका पता चला तो वे सब तुरन्त वहां पहुंच गये और पुलिस अफसर को बताया कि "जिस किसान के इंजन के पुर्जों की चोरी हुई है, वह इंजन 5 हार्स पावर का है जबकि हमारा इंजन 20 हार्स पावर का है, आप ही बताइये, क्या इनके पुर्जे अदल-बदल किये जा सकते हैं?"

छोटाभाई के लड़के मोती ने कहा, "चोरी का माल खरीदने वाले चोर व्यापारियों ने हमारे खिलाफ कोई षड्यन्त्र रचकर आपको झूठे चक्कर में

डाला है। कुछ भी हो, हम इस अपमान को बर्दाश्त नहीं करेंगे।"

इस पर पुलिस के एक पुराने सिपाही ने अफसर के कानों में कुछ कहा और वे यह कहकर वहां से चले गये कि हमें भी इसमें कुछ बात छिपी हुई लगती है। हमने आपको नाहक कष्ट दिया।

उसी रात ग्रामसभा की बैठक हुई। सर्वानुमति से प्रस्ताव पास हुआ जिसमें कहा गया कि जिस धनी किसान ने इंजन के पुर्जों की चोरी का झूठा शक हमारे गांव वालों पर लगाकर गांव की बेइज्जती की है और जिन व्यापारियों ने झूठी गवाही देकर उसको गुमराह किया है, वे लोग 5 दिन में ग्रामसभा के सम्मुख आकर लिखित माफी मांगें। जिस पुलिस कर्मचारी ने पूरी तहकीकात किये बगैर ग्रामदानी गांव के व्यक्ति छोटाभाई के घर की तलाशी बिना ग्रामसभा की अनुमति के ली, उसको भी ग्रामसभा से क्षमा मांगनी होगी।

ग्रामसभा के दो तीन नोटिसों के बावजूद धनी किसान और व्यापारियों ने लिखित माफी मांगने से इनकार कर दिया। मामला लोकअदालत में पहुंचा। धनी किसान और व्यापारी पहले तो इधर-उधर करते रहे लेकिन बाद में उन्होंने अपनी गलती स्वीकार करली। जूरी द्वारा दिये गये सर्व-सम्मत फैसलों के अनुसार धनी किसान एवं दोनों व्यापारियों को लिखित माफी मांगनी पड़ी और 25-25 रुपया जुर्माना देना पड़ा। पुलिस के प्रति-निधि ने गुमराह होने पर अफसोस जाहिर किया। करारखत पर धनी किसान, व्यापारी और पंचों ने हस्ताक्षर किये।

लोकअदालत की प्रेरणा से उत्पन्न ग्रामस्वराज्य की दृढ़ भावना और ग्रामनिवासियों में उत्पन्न साहस एवं एकता की भावना ने गलत आचरण करने वालों को सत्य के सामने झुकने के लिये और अपने अपराध की क्षमा मांगने के लिये मजबूर कर दिया।

(5)

प्रेम भाव का विस्तार—मानस पाप की समाप्ति

रंगपुर गांव के बेहलाभाई की जमीन बगलिया के साहूकार शाह चिमनलाल के पास वर्षों से रहन थी। श्री चिमनलाल इस खेत को बेचना चाहते थे इसलिये ग्रामसभा ने बेहलाभाई को कहलाया कि वह इस खेत को वापस लेना चाहे तो ले ले, ग्रामसभा उसकी मदद करेगी। बेहलाभाई ने ग्रामसभा के सम्मुख खेत वापस लेने की इच्छा प्रकट की तो ग्रामसभा ने प्रस्ताव किया कि 3600 रुपये साहूकार को देकर यह खेत ग्रामस्वराज्य समिति के नाम

खरीद लिया जाये और दूसरी जमीनों की तरह यह खेत इस आधार पर वेहलाभाई को सुपुर्द कर दिया जाये कि वे कर्ज की रकम चुकाने तक इस खेत के उत्पादन में से 50 प्रतिशत अन्न हर साल ग्रामसभा को देते रहेंगे।

ग्रामसभा के इस प्रस्ताव के कुछ दिन बाद वेहलाभाई ने ग्रामसभा के समक्ष निवेदन किया कि ग्रामसभा से कर्जा लेने की बजाय वे अपने श्वसुर नकलाभाई से बिना ब्याज के कर्जा ले लेंगे और यह जमीन श्री चिमनभाई से खरीद लेंगे लेकिन खरीददारी सीधी ग्रामस्वराज्य समिति के नाम से ही की जायेगी ताकि अन्य लोगों के खेतों की तरह, जिन्होंने अपनी व्यक्तिगत मालिकी ग्रामस्वराज्य समिति के नाम कर दी है, यह खेत भी ग्रामस्वराज्य समिति की मालिकी का अंग बन जाये।

ग्रामसभा ने कहा कि चूंकि वेहलाभाई के श्वसुर नकलाभाई ग्रामदान के कार्य में शरीक नहीं हुये हैं और एक धनी किसान होने के नाते वे पहले भी कुछ लोगों की जमीनें हड़प चुके हैं, इसलिये ग्रामसभा वेहलाभाई के प्रस्ताव को इसी शर्त पर स्वीकार कर सकती है कि वे ग्रामसभा को इस बात का लिखित वचन दें कि वे किसी भी सूरत में यह खेत अपने श्वसुर को नहीं सौंपेंगे। वेहलाभाई ने ग्रामसभा को लिखित वचन दे दिया और उनके श्वसुर ने भी लिखित निवेदन कर दिया कि वे यह जमीन वेहलाभाई के पास ही रहने देंगे और अपना रुपया उत्पादन में से आहिस्ता-आहिस्ता वसूल करेंगे।

जमीन खरीद ली गयी और वेहलाभाई ने भी एक साल तक उस जमीन को जोता भी लेकिन दूसरे वर्ष उनके श्वसुर नकलाभाई ने इस जमीन को जोता। ग्रामसभा ने बराबर वेहलाभाई को इस प्रकार वचन भंग न करने के लिये समझाया लेकिन वेहलाभाई ने ग्रामसभा के निर्णय की अवहेलना की। इस पर ग्रामसभा ने उसको ऐसा न करने के लिये नोटिस दिया और बाद में पूरी ग्रामसभा ने मिलकर खेत जोत लिया और कपास बो दी।

वेहलाभाई ने अपने श्वसुर के दबाव में आकर पूरी ग्रामसभा के विरुद्ध इंडियन पेनल कोड की दफा 420, 416 और 438 के अन्तर्गत विश्वासघात का केस दाखिल कर दिया। ग्रामसभा की बैठक हुई और इस षड्यंत्र के मुकाबले के लिये ग्रामसभा ने लोकअदालत के अध्यक्ष को ही मुखिया नामजद कर दिया।

पुलिस की चार्ज लिस्ट में केस इस प्रकार दर्ज था "वेहलाभाई ने ग्रामसभा को अपने स्वयं के लिये साहूकार से जमीन खरीदने के उद्देश्य से रुपया दिया था और ग्रामसभा ने विश्वासघात करके जमीन उनके नाम खरीदने की बजाय अपने (ग्रामसभा के) नाम से खरीदली।" ग्रामसभा के सदस्यों ने

पुलिस के सामने बयान दिये और ग्रामसभा के प्रस्ताव एवं वेहलाभाई व नकलाभाई के अपने हाथों से दिये गये निवेदन एवं वचन भंग आदि की बातें पुलिस के समक्ष पेश कीं। लेकिन पुलिस ने लोकअदालत के अध्यक्ष को ग्रामसभा के मुखिया की हैसियत से एवं ग्रामसभा के कुछ सदस्यों को गिरफ्तार कर लिया। कोर्ट ने तत्काल सबको जमानत पर रिहा कर दिया। आसपास के गांवों वाले इस मामले से काफी दुखी हुये। उन्होंने वेहलाभाई और नकलाभाई को समझाने और पुलिस की मिलीभगत से उन्हें अलग कराने की कोशिशें भी कीं लेकिन मामले का तुरन्त निपटारा नहीं हो सका।

छः महीने तक ग्रामसभा को और लोकअदालत के अध्यक्ष को अपनी निजी हैसियत में अदालत जाना पड़ा। लेकिन हर बार पुलिस ने बहाना बनाकर तारीखें बदलवाने का तरीका अपनाया। मजिस्ट्रेट के ध्यान में यह बात आ गई इसलिये उसने आखिरकार पुलिस को चेतावनी दे दी कि अगली तारीख के पहले पुलिस सारे कागजात पेश कर दे। उस दिन सुनवाई अवश्य होगी। इस पर इन्सपेक्टर कुछ घबराये। उधर वेहलाभाई व नकलाभाई भी पूरे समाज से अलग हो गये थे। वे भी किसी तरह अपनी गलती सुधारना चाहते थे। अतः मजिस्ट्रेट के चैम्बर में सब इकट्ठे हुए। ग्रामसभा की ओर से यह मांग पुनः दोहराई गयी कि जमीन वेहलाभाई को मिलनी चाहिये। ग्रामसभा जमीन वेहलाभाई को जोतने के लिये देने को तैयार है किन्तु उसके श्वसुर नकलाभाई को इस जमीन पर आंख नहीं लगानी चाहिये। अगर वे (वेहलाभाई) जमीन जोतना न चाहें तो ग्रामसभा उसका 3600 रुपये मय ब्याज लौटाने को तैयार है। प्रारम्भ में पुलिस वालों ने कई चालें चलीं ताकि मुकदमा जल्दी न उठे लेकिन मजिस्ट्रेट साहब ने ग्रामसभा द्वारा सुझाया गया समाधान स्वीकार कर लिया। उसी दिन मजिस्ट्रेट साहब के चैम्बर में ही छोटा उदयपुर के लोगों ने लाकर रुपया जमा करा दिया। मजिस्ट्रेट साहब इससे बहुत प्रभावित हुये।

विवाद तो समाप्त हो गया लेकिन बाद में मालूम हुआ कि पुलिस ने इसमें काफी रुपया ले लिया था। वेहलाभाई बहुत परेशान थे। श्वसुर और दामाद दोनों में रुपये के प्रश्न पर मुनमुटाव हो गया था।

लोकअदालत ने दोनों को अपनी गलती पर पश्चाताप करने की सलाह दी और दोनों में पुनः मेलमिलाप करवा दिया।

(6)

न्याय-प्राप्ति के लिये सफल संघर्ष

अक्लेश्वर गांव की लगभग 300 एकड़ जमीन तसखला और तिलकवाड़ा

के साहूकारों से, जिनके पास गांव के किसानों की जमीनें रहन रखी हुई थी, भूतपूर्व राजपीपला रियासत के राजा के छोटे भाई चम्पक सिंह ने खरीद ली और जब किसानों ने उनसे सम्पर्क करके उलाहना दिया तो उन्होंने उत्तर दिया "क्या हम साहूकारों से बुरे हैं ? जमीन तो आप ही लोगों के पास रहने वाली है। आप ही उसे जोतेंगे जो कुछ आप साहूकारों को देते थे, वह हमें देते रहना और जब भी कोई अपनी जमीन वापस लेना चाहेगा, हम उसको जरूर लौटा देंगे।"

किसान चुप हो गये। कुछ अर्से बाद बम्बई राज्य में टीनेन्सी एक्ट बना। जमीन के सच्चे मालिक अब उसके टीनेन्ट (किरायेदार) बन गये। इधर चम्पक सिंह जी का देहावसान हो गया। उनके पुत्र मेजर वीरेन्द्र सिंह ने किसानों को कानून की धमकियां देकर अपने मन से ज्यादा रुपया लेकर जमीन बेचना शुरू कर दिया। जब बहुत सारी जमीनें बिक चुकीं तो अक्तेश्वर की ओर उनका ध्यान आकृष्ट हुआ। इस गांव की जमीनें उन्होंने खुद काश्त में मांगी और तहसीलदार से सांठगांठ करके किसानों से जमीनें छुड़ाने के आदेश प्राप्त कर लिये। किसान इस अन्यायपूर्ण हुक्म के विरुद्ध असिस्टेन्ट कलक्टर और कलक्टर के पास भी अपीलें ले गये लेकिन सुनवाई नहीं हुई। मामला रेवेन्यू ट्रिब्यूनल के पास पहुंचा तो ट्रिब्यूनल के जजों ने नीचे के अफसरों के फैसले को खारिज कर दिया और मामला नये सिरे से जांच के लिये असिस्टेन्ट कलक्टर के पास वापस भेज दिया। ट्रिब्यूनल ने दो मुद्दे फिर से जांच के लिये सुझाये।*

(1) शार्टेस्ट टीनेन्सी।

(2) वीरेन्द्र सिंह की वास्तविक आय।

असिस्टेन्ट कलक्टर ने आठ साल तक रिपोर्ट नहीं भेजी। इस बीच बहुतसी जमीनें "जोते उसकी जमीनें" कानून के मातहत बिकीं और उनका रुपया वीरेन्द्र सिंह को मिल गया। "डिफेन्स पर्मनेन्ट एक्ट" की धाराओं का लाभ उठाकर 1967 में उन्होंने इसी विवादग्रस्त जमीन को उसके अन्तर्गत पुन: प्राप्त कर लिया, यद्यपि ट्रिब्यूनल द्वारा पुन: जांच कराये जाने का फैसला कायम था। किसानों ने उसके खिलाफ अपील की लेकिन राज्य सरकार ने कोई बात नहीं सुनी। किसी ने भी निम्न दो महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर लक्ष्य नहीं किया—

* हरिवल्लभ परीख, 'क्रान्ति का अरुणोदय,' पृष्ठ 93, वाराणसी 1973।

(1) रेवेन्यू ट्रिब्यूनल ने पुनः जांच का जो आदेश दिया था, उसपर आठ साल तक कोई अमल नहीं किया।

(2) सन् 1962 में जो जमीनें बिक चुकी थीं और जिसके रुपये मेजर वीरेन्द्र सिंह ले चुके थे तथा जिन जमीनों के खाते-खसरे किसानों के नाम चढ़ चुके थे, वह जमीनें 1966 में बने डिफेन्स पर्सनल एक्ट के द्वारा बेचने वाले को कैसे लौटायी जा सकती थीं ?

सामाजिक एवं मानवीय दृष्टि से किये जा रहे इस अन्याय के विरुद्ध सत्याग्रह किये जाने का संकल्प किया गया। इधर किसानों को सरकारी नोटिस मिले कि वे उस जमीन का कब्जा मेजर वीरेन्द्र सिंह को सौंप दें और उधर अक्तेश्वर की ग्रामसभा ने मिलकर तय किया कि किसान स्वयं अपनी ओर से जमीन का कब्जा नहीं छोड़ेंगे। फैनाई प्रदेश ग्रामस्वराज्य मंडल ने अक्तेश्वर ग्रामसभा के प्रस्ताव का समर्थन किया और गुजरात सर्वोदय मंडल ने भी इस मामले पर विचार किया लेकिन इसी दौरान रेवेन्यू विभाग के अधिकारी पुलिस दल के साथ अक्तेश्वर पहुंच गये और गांव वालों को डांटना शुरू कर दिया। ग्रामसभा के मुखिया ने कहा कि ऐसी डांट-फटकार की कोई आवश्यकता नहीं हैं। हम सरकार के इस हुक्म के खिलाफ हैं। हम अपने हाथों अपनी जमीन नहीं सौंपेंगे। इस पर गांव के 48 लोगों को, जिनमें दो-दो बच्चों वाली बहनें भी शामिल थीं, गिरफ्तार कर लिया गया और तहसीलदार के सम्मुख राजपीपला ले जाया गया। यहां सरकारी कर्मचारियों ने एक साजिश की। तहसीलदार ने लोगों के सामने तो पुलिस को डांटा कि इतने सारे लोगों को क्यों गिरफ्तार किया गया और ग्रामजनों से कहा "मैं आप सब लोगों को व्यक्तिगत जमानत पर छोड़ देता हूं" फिर तथाकथित जमानत के कागजों पर किसानों के हस्ताक्षर लिये गये। लेकिन असल में वे कागज जमानत के कागज नहीं थे वे कोरे कागज थे। उनमें अपनी खुशी से जमीनों के कब्जे मेजर वीरेन्द्रसिंह के सुपुर्द करने की बात बाद में लिख दी गयी थी। इस प्रकार सरकारी कर्मचारियों ने लोगों के साथ धोखा किया और पुलिस की मदद से वीरेन्द्रसिंह की पत्नी ने खेतों में बुवाई करवादी।

ग्रामसभा ने मुख्यमंत्री तक सारी जानकारी भिजवाई लेकिन कोई नतीजा नहीं निकला। इस पर 18 अप्रैल यानी 'भूमि क्रान्ति दिवस' पर अक्तेश्वर में एक विशाल सभा का आयोजन किया गया जिसमें सर्वश्री इन्दुलाल याज्ञिक, श्री सनत् मेहता (जो बाद में गुजरात के श्रम एवं पुनर्वास मंत्री बने) और गुजरात किसान सभा के अध्यक्ष श्री चन्दूलाल पटेल

भी उपस्थित थे। श्री याज्ञिक ने कहा कि 200 ग्रामजनों के साथ किये गये इस अन्याय के प्रतिकार के लिये सरकार से मुकाबला करना होगा। श्री सनत मेहता ने जोरदार शब्दों में सत्याग्रह का समर्थन करने की घोषणा की और श्री चंदूभाई पटेल ने कहा कि सरकार गांव के गरीबों के मुंह से रोटी का कौर छीनने को सहायता दे रही है। इसका मुकाबला उग्र आन्दोलन के जरिये किया जाना चाहिये।

लोकअदालत के नेतृत्व में समस्या के समाधान के लिये संघर्ष करने का निश्चय किया गया और एक ऐक्शन कमेटी की स्थापना की गयी जिसमें अक्तेश्वर के आसपास के गांवों के लोगों को भी लिया गया।

सभा द्वारा लिये निर्णय की सूचना सरकार को दे दी गयी। अखबारों ने भी इस समस्या के सम्बन्ध में अच्छा प्रकाशन किया। अंतिम प्रयत्न के रूप में लोग राज्यपाल श्री श्रीमन्नारायण से भी मिले लेकिन सरकार की ओर से कोई कदम न उठा। 22 मई को अक्तेश्वर में बड़ी सभा हुई। 250 से ज्यादा व्यक्तियों ने सत्याग्रह में भाग लेने के लिये इस संकल्प-पत्र पर हस्ताक्षर किये। "सरकार या किसी और की तरफ से हिंसक प्रहार हो, फिर भी हम अहिंसक रहेंगे। कष्ट खुद सहन करेंगे, किन्तु अन्यायपूर्ण कानून को तोड़कर, छीनी गयी जमीन को वापस प्राप्त होने तक, हर तरह की कुर्बानी के लिये तैयार रहेंगे।" सभा जलूस के रूप में बदल गयी। जलूस के आगे ढोल वगैरह बज रहे थे। बिल्ले लगाये हुए सत्याग्रही भाई-बहन सबसे आगे चल रहे थे। अगल-बगल पुलिस चल रही थी—खेतों के किनारे पुलिस कतार बांधकर मोर्चा लेने को तैयार खड़ी थी। लेकिन पांच सत्याग्रहियों की टोली ने खेत में प्रवेश किया, नारियल फोड़ा और खेत की मिट्टी सिर पर चढ़ायी। पुलिस सत्याग्रहियों को लेकर चली गयी। उस दिन पांच खेतों पर इस प्रकार सत्याग्रह हुआ। सत्याग्रहियो की प्रथम टोली को दो सप्ताह जेल मे रहना पड़ा। गुजरात के तथा देश के अन्य अखबारों ने आदिवासियों द्वारा किये गये इस अनुशासन-बद्ध सत्याग्रह की काफी सराहना की।

तीन सप्ताह के बाद फिर सत्याग्रह हुआ। 58 सत्याग्रही कानून भंग करके गिरफ्तार हुए। विधान सभा में भी मामला उठाया गया। सदस्यों ने राज्य सरकार को काफी आड़े हाथों लिया।

तीसरी टोली में 122 भाई-बहन गिरफ्तार हुए। सत्याग्रहियों को उसी दिन शाम को छोड़ दिया गया।

सत्याग्रह का चौथा चरण अगस्त 70 में शुरू हुआ। बहुत बड़ी तादाद

में जलूस खेतों में प्रविष्ट हुआ। पुलिस दो मोटर वाहन भरकर सत्याग्रहियों को थाने पर ले गयी। पुलिस की एक पूरी गाड़ी बच्चों वाली बहनों से भी भरी थी। जब पुलिस ने बहनों को मोटर से उतारना चाहा तो वे नहीं उतरीं। उन्होंने कहा "पुलिस ने हमें गिरफ्तार किया है तो किसी न किसी गुनाह के आरोप में ही किया होगा। अब हमें क्यों छोड़ रहे हैं। हम तो उन खेतों में जरूर जायेंगी और खेती करेंगी।"

अन्याय के प्रतिकार की हवा यहां तक फैली कि पुलिस अफसरों को कहना पड़ा, "पहले पुलिस के नाम से यहां के आदिवासी लोग डरते थे, थाने और जेल की बात सुनते ही घबरा जाते थे। लेकिन इस सत्याग्रह ने आदिवासी पुरुषों के ही दिल से नहीं, स्त्रियों के दिल से भी थाने और जेल का डर निकाल दिया है।"

अक्तेश्वर के इस बार के सत्याग्रह ने पूरे गुजरात का ध्यान आकर्षित कर लिया था। अप्रैल 71 में फिर सत्याग्रह शुरू करने की स्थिति आयी। सत्याग्रह के संचालकों—लोकअदालत के कार्यकर्त्ताओं ने सरकार को स्पष्ट तौर पर बता दिया कि अब सत्याग्रह सिर्फ खेतों तक ही सीमित नहीं रहेगा बल्कि सरकारी थानों और सरकार के उस इलाके के समस्त विभागों के सामने होगा" अर्थात् इस क्षेत्र में सारा सरकारी काम ठप्प कर दिया जायेगा।

ऐक्शन कमेटी के सदस्य राज्यपाल से भी मिले। उन्होंने सब कागजात देखे। उन्हें लगा कि कानूनी दृष्टि से सरकार द्वारा की गयी गलती के विरुद्ध कुछ कार्यवाही हाईकोर्ट में ही की जा सकती थी लेकिन गरीबों के लिये अदालत से शीघ्र न्याय प्राप्त करना न तो आसान था और न संभव। इसलिये उन्होंने वीरेन्द्र सिंह को बुलाकर आपसी बातचीत द्वारा ही समाधान खोजने का प्रयास किया। ग्रामसभा के सदस्यों और मेजर साहब में बातचीत शुरू हुई लेकिन मेजर साहब की पत्नी ने तुरन्त समाधान नहीं होने दिया। उन्होंने एक महीने के समय की मांग की। समय दे दिया गया, लेकिन दो महीने बीत जाने पर भी आगे कार्यवाही नहीं हुई। इस पर लोकअदालत के अध्यक्ष ने 'अक्तेश्वर का प्रश्न—मेरी अन्तर्वेदना' शीर्षक से एक खुलापत्र गुजरात के सब राजनैतिक एवं सामाजिक कार्यकर्त्ताओं के पास भेजा जिसमें सम्पूर्ण परिस्थिति की जानकारी देते हुए तीन मार्ग बताये गये :

1. बड़े पैमाने पर सामूहिक सत्याग्रह करके सरकारी तंत्र को रोक देना।
2. लोकअदालत के कार्यकर्त्तागण एवं अक्तेश्वर के ग्रामजन सामूहिक आमरण-अनशन करें।

3. हाथ में हाथ धर कर बैठे रहें और नक्सलवादी तूफान जैसे हिंसात्मक आन्दोलन के आने का इन्तजार करें।

अन्त में उस पत्र में लिखा गया कि यदि 11 सितम्बर 71 तक गुजरात सरकार ने समस्या का समाधान नहीं किया तो कार्यकर्त्तागण अपने बलिदान की शुरुआत कर देंगे।

उन्होंने सर्वसेवा संघ के मंत्री के साथ राज्यपाल से पुनः भेंट की। उनके अनुरोध पर वीरेन्द्रसिंह के साथ 8 सितम्बर को ऐक्शन कमेटी के सदस्यों की तीन घण्टे बातचीत चली, जिसमें निम्न समाधान खोजा गया :—

1. सरकार ने मेजर वीरेन्द्रसिंह को जो जमीन किसान से छुड़वाकर दिलाई है, उसमें से आधी जमीन वे सरकार को लौटा दें।

2. किसानों ने और मेजर ने जो आधी-आधी जमीनें छोड़ी हैं, उन दोनों को सरकार अपनी ओर से सरकारी जमीन देकर पूर्ति कर दे ताकि किसानों को और मेजर को पूरी मात्रा में जमीन मिल जाये।

3. दोनों पक्ष कोर्ट में चल रहे केस वापस ले लेंगे और इस वर्ष की फसल निकलते ही इस समस्या का समाधान होगा।

4. गांव के लोगों की जो आधी जमीन छूटेगी, उन्हें उतनी ही जमीन सरकार कहीं भी दूसरी जगह देगी किन्तु किसी किसान को बेदखल करके नहीं।

5. जिन किसानों को काफी समय तक तकलीफें उठानी पड़ीं और जिन्हें नयी जमीन को तोड़ने के लिये भी अधिक मेहनत करनी पड़ेगी, उन्हें सरकार अपनी ओर से कम ब्याज पर या बिना ब्याज के ऋण देगी।

इस प्रकार इस समाधान के जरिये सरकार ने अपनी गलती को दुरुस्त कर दिया और उसने ही इस गलती की कीमत भी चुका दी। आदिवासियों के अहिंसक सत्याग्रह ने पहली बार ही सरकार को अपनी भूल सुधारने को बाध्य किया। सत्याग्रह की इस विजय ने लोकअदालत के कार्यकर्त्ताओं की प्रतिष्ठा तो बढ़ाई ही, साथ ही आदिवासियों में आशा एवं साहस का संचार करके उनमें नई जान भी फूंक दी।

(8)

अत्याचार का प्रतिकार

जैसा कि अध्ययन में बताया गया है, लोकअदालत ने न केवल दोनों पक्षों के आपसी विवाद का शीघ्र एवं सस्ता समाधान खोज कर न्याय की प्रक्रिया में मदद दी है बल्कि जन-साधारण को सरकार की गलत नीतियों एवं

सरकारी कर्मचारियों के अत्याचार और उत्पीड़न एवं व्यापारियों के शोषण से मुक्ति मिले अर्थात् जन साधारण को व्यापक रूप से विभिन्न प्रशासनिक, आर्थिक एवं सामाजिक मामलों में सत्तारूढ़ लोगों से न्याय प्राप्त हो सके, इसके लिये भी उसने प्रयास किया और ऐसे प्रयासों में एक प्रकार से स्वयं पक्षधर बन कर अहिंसात्मक संघर्ष एवं प्रतिकार के द्वारा सरकार एवं जन साधारण को न्याय की सही दिशा बतायी है और लोक-जागरण का सफल प्रयास किया है। नीचे दी जा रही घटनायें एवं लोकअदालत द्वारा तद्विषयक अपनायी गई कार्य-प्रक्रिया उक्त कथन की पुष्टि के लिये यथेष्ट सामग्री प्रदान करती हैं।

ताड़काछला गांव में जंगलात के कर्मचारियों ने गांव के लोगों पर अत्याचार किया। वे न केवल रोज किसी न किसी ग्रामवासी को पीटते थे और उनसे मुर्गियां एवं दूध मांगते रहते थे, बल्कि एक दिन तो उन्होंने वहां के लोगों के जो उनके लिये दूध घी नहीं ला सके, उन गांवों की 22 के करीब जवान लड़कियों को एक कतार में चौपायों की तरह दो टांगों और दो हाथों के बल मुर्गी बना दिया और जंगलात विभाग के एक बीट गार्ड भीखाभाई को, जो बहुत भारी वजन का है, उन लड़कियों की पीठ पर चढ़ाया और उसे उनकी पीठ पर चलने का आदेश दिया। मानों वह जिन्दा लड़कियों की बनायी गयी पुलिया हो। उनके पीछे फारेस्टर हंटर लेकर चल रहा था और जो लड़की बोझ के कारण जरा सी झुकती, उसके पैरों पर हंटर मारता जाता था। जब एक ग्रामवासी इस दयनीय दृश्य को बर्दाश्त नहीं कर सका और उसने फारेस्टर से नोंकझोंक की तो उसकी बुरी तरह पिटाई की गयी और जंगलात के तीन अधिकारियों ने ग्रामवासियों की तरफ बंदूकें तान लीं। गांव वाले डर के मारे भाग गये। जब ग्रामस्वराज्य समिति गजलांवाट के मंत्री तजलाभाई और ग्राम-सभा के मुखिया श्री भगत ने ताड़काछला गांव के लोगों पर किये गये इस अत्याचार का विस्तृत विवरण सुना तो उन्होंने एक जांच समिति नियुक्त की। जांच समिति एवं ग्राम-सभा के सदस्य जंगलात के कर्मचारियों से मिलने के लिये घटना स्थल पर पहुंचे लेकिन जंगलात के कर्मचारियों ने उनकी कोई परवाह नहीं की—उनकी आपस में नोंकझोंक भी हो गयी। उन्होंने गांव वालों से भेंट करके उनके ऊपर किये गये अत्याचार एवं अमानवीय जंगली कृत्यों की जानकारी प्राप्त की और इस अत्याचार का मुकाबला करने के लिये लोकअदालत के संस्थापक के नेतृत्व में समस्त ग्रामदानी गांवों के लोगों का आवाहन किया। सभा बुलाई गयी और उसमें निम्न प्रस्ताव पारित करके इन कृत्यों की भर्त्सना करते हुए सरकार से मांग

की गयी कि वह इस मामले की जांच कराये और दोषी व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करे। (क) ग्रामदानी गांवों की यह सभा राज्य के मुख्यमंत्री से यह अनुरोध करती है कि बड़ौदा जिले के छोटा उदयपुर तहसील के ताड़काछला गांव में सरकारी घास-कटाई के काम पर लगे हुए बीसों गांवों के सैकड़ों मजदूरों के साथ जंगल विभाग के अधिकारियों ने जो अशोभनीय व्यवहार किया है और हमारी बहन-बेटियों की सरेआम इज्जत लूटी है, उसकी फौरन जांच की जाये। (ख) सम्बन्धित अधिकारियों को तुरन्त अलग किया जाय। (ग) सरकार जब तक यह कदम न उठाये, तब तक घास काटने का काम बन्द करदें, ऐसा आदिवासी भाइयों से यह सभा अनुरोध करती है। (घ) सभा सर्वसम्मति से श्री हरिवल्लभ भाई परीख को अधिकार देती है कि वे इस मामले में सरकार से और सरकारी अधिकारियों से तुरन्त सम्पर्क करें और आवश्यक सारी कार्यवाही करें। ग्रामसभायें हर प्रकार का बलिदान करने के लिये तैयार रहेंगी।"

श्री हरिवल्लभ भाई अधिकारियों से मिले और उन्होंने अफसरों को कहा 'जो लोग आपके पास काम करना नहीं चाहते, उन्हें रोक रखने का आप को कोई अधिकार नहीं। मजदूरों के निजी औजारों और हथियारों को आप लोग जबरदस्ती अपने कब्जे में नहीं रख सकते।' लेकिन अधिकारियों का रुख अनुकूल नहीं था। रेन्ज फारेस्टर ने कहा "आपको जो कुछ कहना हो, हमारे उच्चाधिकारियों से कहिये। हम तो हुक्म के ताबेदार हैं।"

उन्होंने उच्चाधिकारियों के पास गलत समाचार भी भेजे और लिख दिया कि लोकअदालत के कार्यकर्त्ता और ग्रामदानी गांव के नेता सरकारी काम में दखल दे रहे हैं।

प्रस्ताव की प्रतियां राज्य के मुख्य-मंत्री एवं वन विभाग के सर्वोच्च अधिकारी के पास भेजी गयीं। समाचार पत्रों के जरिये इस लोमहर्षक घटना का प्रकाशन किया गया। अनवरत प्रयासों के बाद आखिरकार वन विभाग ने जांच कराई। दोषी अधिकारियों को बदल दिया गया। लेकिन उच्च अधिकारियों ने यह आश्वासन चाहा कि ग्रामवासी घास-कटाई के काम पर जायेंगे। ग्रामवासियों ने लोकअदालत के कार्यकर्त्ताओं के निर्देश से दूसरे दिन से ही भारी संख्या में उपस्थित होकर काम प्रारम्भ कर दिया। उनकी उपस्थिति एवं उत्साह देखकर उच्चाधिकारी भी स्तब्ध रह गये। उन्होंने ग्रामवासियों से जंगलात विभाग की ओर से अत्याचार एवं उत्पीड़न के लिये क्षमा-याचना की। उनके उत्साह को देखकर उन्हे यहां तक कहना पड़ा कि ऐसे अनुशासनबद्ध लोगों के लिये जंगलात के कर्मचारियों ने किस सीमा तक मिथ्या प्रचार कर रखा है।

घास कटाई के लिए दूसरे दिन से जाने का यह निर्णय ग्रामसभा के मुखियों की सहमति से हुआ था। जब जांच अधिकारी श्री बारेजा ने कहा कि "अगर कल से आपके लोग काम पर लगने को तैयार हैं तो मैं नये आदमी ताड़काछला भेजने का हुक्म देता हूं" तो अगले दिन दीपावली का त्योहार होने के बावजूद ग्राम मुखियाओं ने उनकी चुनौती स्वीकार करली। और रातों-रात एक गांव से दूसरे गांव तक इस चुनौती की जानकारी घास-कटाई पर आने वाले मजदूरों तक पहुंचा दी। गांव-गांव में यह आवाज गूंज उठी—"सरकार ने हमारी बात मानली है। अन्यायी अधिकारियों के बजाय नये अधिकारियों को नियुक्त किया है। यद्यपि आज दीपावली का त्योहार है, फिर भी हमें अपना वायदा पूरा करने के लिये घास काटने ताड़काछला चलना होगा। चलो, जल्दी ही तैयार होकर ताड़काछला चलें।"

लोक-शक्ति के जागरण की इस महान प्रक्रिया को देखकर जांच अधिकारी श्री बारेजा को कहना पड़ा :—

"मैं आप लोगों से क्षमा चाहता हूं। आप लोगों के प्रति हमारे कर्मचारियों ने जो दुर्व्यवहार किया, उसके लिये मैं शर्मिन्दा हूं, उन सब अधिकारियों को आज से ही नौकरी पर से हटा देने का मैं एलान करता हूं। आप लोगों ने दीपावली जैसे बड़े त्योहार के अवसर पर भी काम पर लगने का जो संकल्प साकार किया है, इसके लिये मैं आपको बधाई देता हूं और अपनी ओर से आप लोगों को त्योहार मनाने की दो दिन की छुट्टियां देता हूं। आप लोग दो दिन के बाद काम पर आ जाइये। नये अधिकारी आप की सेवा में उपस्थित रहेंगे। मैं वायदा करता हूं कि अब ऐसी कोई वारदात नहीं होगी जिससे आपको कोई कष्ट हो। एक बार फिर से मैं आपसे क्षमा मांगता हूं।"

यह थी सत्याग्रह की अन्याय का अहिंसात्मक प्रतिकार करने की विजय कहानी। आदिवासियों ने ऐसे बड़े अधिकारी के मुंह से क्षमा-याचना के बोल अपने जीवन में पहली ही दफा सुने थे। यह पहला ही अवसर था, जब अत्याचारी अधिकारियों को मुंह की खानी पड़ी—उन्हें नौकरी से हटने को मजबूर होना पड़ा और जनसाधारण के मन में हिम्मत एवं आत्मविश्वास का भाव पैदा हुआ एवं अन्याय और अत्याचार का मुकाबला करने के लिये लोकअदालत से उन्हें नयी दिशा मिली।

(9)

शोषण का मुकाबला

चलामली गांव के एक धनी जमींदार श्री चुन्नीलाल भाई पटेल का गांव की लगभग आधी जमीन पर कब्जा था। भारत भाई कैसनाभाई की 9 एकड़ जमीन उन्होंने सिर्फ 300 रुपये में ले ली थी। यह जमीन इतनी उपजाऊ है कि एक एकड़ में बिना सिंचाई के भी 400 रुपये की उपज हो जाती है। इस प्रकार करीब 4 हजार रुपये सालाना की उपज पांच साल तक तो उन्होंने ले ही ली। लेकिन साथ ही साथ 300 रुपये के कर्ज की रकम को 900 रुपये भी बना दिया।

जब ग्रामसभा ने उन्हें रुपया वापस देकर जमीन प्राप्त करनी चाही तो उन्होंने ग्रामसभा के आमंत्रणों की कोई परवाह नहीं की। आखिर मामला लोकअदालत में प्रस्तुत किया गया। श्री चुन्नीलाल की रजामंदी से ही सुनवाई की तारीख भी तय की गई लेकिन तारीख के दिन "हम बीमार है" ऐसा कहकर श्री चुन्नीलाल ने अपने लड़के कालीदास को लोक-अदालत की बैठक में भेज दिया और स्वयं नहीं पहुंचे। हिसाब-किताब की जांच-पड़ताल हुई और कालीदास की सहमति से ही लोकअदालत ने यह निर्णय दिया कि भारत भाई ने अपनी पुत्री की शादी के लिये इस खेत पर जो 951 रुपये श्री चुन्नीलाल भाई से कर्ज लिया है, वह कर्जा श्री चुन्नीलाल भाई को बिना सूद के लौटाने का दायित्व ग्रामसभा ले ले और चुन्नीलाल भाई इस वर्ष खेत छोड़ दें। चुन्नीलाल का शेष दावा (जो 300 रुपये की रकम चक्रवृद्धि ब्याज लगाकर उन्होंने 900 रुपये कर दी थी) इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि गत पांच साल में खर्च वगैरह काटकर उस खेत से चुन्नीलाल जी ने 8000 रुपये का मुनाफा कमाया है इसलिये अब उस कर्ज की राशि वापस मांगना उचित नहीं है। लेकिन इस करारनामे पर कालीदास ने यह कहकर दस्तखत करने से इन्कार कर दिया पिताजी ही उस पर हस्ताक्षर कर सकते हैं।"

जब लोकअदालत में यह कार्यवाही चल रही थी, तब चलामली में चुन्नीलाल भाई अपना अलग षड्यन्त्र रच रहे थे। गांव वालों की अनुपस्थिति का लाभ उठाकर उन्होंने दस जोड़ी हल-बैल लिये और बुवाई करने के लिये खड़ा किया, जहां खेत स्थित है, पहुंच गये। लेकिन जीजीभाई के नेतृत्व में गांव की महिलाओं ने चुन्नीलाल जी के इस षड्यन्त्र और जोर-जबरदस्ती का मुकाबला किया और वे हल बैलों के सामने एककतार में हाथ में हाथ डालकर

किले वन्दी करके खड़ी हो गयीं। चुन्नीलाल जी ने गाली गलौज किया और नौकरों से भी कहा 'इन रांडों पर बैल चला दो।" लेकिन नौकरों की हिम्मत नहीं हुई तब तक स्वयं चुन्नीलाल जी ने एक महिला का हाथ पकड़कर दूसरी महिला से उसे अलग करना चाहा। इस पर उस वहिन ने फटकारा देकर चुन्नीलाल जी से अपना हाथ छुड़ा लिया और सारी वहिनें चुन्नीलाल जी पर टूट पड़ी। नौकर हल बैल छोड़कर भाग गये और चुन्नीलाल जी भी अपने घर लौट गये।

कुछ दिन वाद वोरियाद के पुलिस अधिकारी को रिश्वत देकर उन्होंने गांव के आठ-दस व्यक्तियों को गिरफ्तार कराया लेकिन जब मजिस्ट्रेट के सामने ग्रामसभा के मुखिया ने पुलिस का भंडा फोड़ किया, तब मजिस्ट्रेट ने पुलिस को उलाहना देकर गांव के सब लोगों को विना जमानत वरी कर दिया।

उधर लोकअदालत की अवहेलना और गलत कृत्य करने के कारण चुन्नीलाल जी के प्रति क्षेत्र के लोगों में जो प्रतिकूल भावनायें फैलीं, उससे वे शर्मिन्दा हुए और पछताये, ग्रामसभा से आकर मिले और लोकअदालत के फैसले को कबूल करने का संदेशा भिजवाया। निश्चित तारीख को समाधान के मसविदे पर चुन्नीलाल जी ने हस्ताक्षर कर दिये और गांव के साथ उन्होंने जो धोखा किया था और वहनों के साथ जो ज्यादती की थी, उसके प्रायश्चित स्वरूप 151 रुपये का दण्ड भी स्वीकार किया।

इस प्रकार शोषण के मुकावले के लिये किए गये इस अहिंसात्मक प्रतिकार से भारतभाई की जमीन मुक्त हुई और ग्रामसभा को विजय प्राप्त हुई। लोकअदालत के कार्यकर्त्ताओं की सच्चाई से प्रभावित होकर मजिस्ट्रेट ने पुलिस वालों द्वारा लगाये गये झूठे आरोपों को अस्वीकार किया और उनको झूठे पक्ष का समर्थन लिए उन्हें उलाहना दिया। चुन्नीलाल भाई भी समझ गये कि गांव वालों की संगठित शक्ति के मुकावले वे अधिक दिन टिक नहीं सकते और इसलिये उनके लिये यही श्रेयस्कर मार्ग है कि वे लोकअदालत का निर्णय स्वीकार करके क्षेत्र में हो रही अपनी अप्रतिष्ठा को रोकें।

(10)

संगठन एवं वहिष्कार के वल पर न्याय-प्राप्ति

मातोरा के किसानों पर संखेड़ा के साहूकार जमनादास का कुछ ऋण था। ग्रामसभा ने साहूकार को अपना हिसाव लेकर ग्रामसभा के समक्ष उपस्थित

होने के लिये कई बार नोटिस भेजे लेकिन वे हिसाब-किताब साफ करके अपना वाजिब बकाया रकम लेने के लिये ग्राम-सभा के समक्ष नहीं आये और संखेड़ा की अदालत में मुकदमा दायर करके अदालत के जरिये रुपया जमा कराने का नोटिस ग्रामजनों के पास भिजवा दिया ताकि ग्रामवासी घबरा जायें और साहूकार को मनचाही धनराशि मिल जाये। इस ग्रामदानी गांव के ग्रामजनों ने संखेड़ा की अदालत के अमीन की धमकी की परवाह नहीं की और अमीन को सारी स्थिति से अवगत कराया और कहा कि साहूकार पैसे के बल पर हमें कोर्ट की धमकियां दे रहे हैं लेकिन अब हमने अपने गांव में ग्रामस्वराज्य स्थापित कर लिया है। इसलिए किसी से डरते, घबराते नहीं और अगर उनका रुपया हक का और सच्चा है तो वे आयें और हमारी ग्राम सभा के सामने अपना हिसाब रखें और अपना पैसा ले जायें। अमीन उनकी बातों से प्रभावित हुआ। वह वापस चला गया लेकिन महीने भर बाद फिर वह गांव में पहुंच गया और लोगों से कोर्ट का हुक्म लेने का आग्रह किया। लेकिन लोगों ने फिर भी नोटिस लेने से इनकार कर दिया। अमीन घर-घर घूमकर घरों पर यह नोटिस चिपकाता रहा कि "5 मई' 62 के दिन 12 परिवारों की जमीन नीलाम होगी।"

ग्रामवालों ने ग्रामसभा की एक तात्कालिक बैठक बुलायी और यह तय किया कि गांव का कोई भी परिवार नीलामी में बोली नहीं लगायेगा। ग्राम-सभा ने अड़ोस-पड़ोस के 10-15 गांवों के लोगों के पास भी निम्न मजमून का पर्चा लिखकर भिजवाया—

"आपसे न्याय चाहते हैं"

हमारे प्यारे ग्रामीण भाई-बहन,

हम मातोरा गांव के लोग आप ही की तरह किसान परिवार हैं। आप सब भली-भांति जानते हैं और अनुभव कर चुके हैं कि हमारे इलाके के साहूकारों ने लेन-देन में हम गरीबों की सैकड़ों एकड़ कीमती जमीन हड़पली है। सेठ साहूकार अफसरों को रिश्वत देकर मनमानी करवा लेते हैं। शायद ही कोई गांव बचा हो, जहां उन्होंने अपना हाथ न दिखाया हो। गांव-गांव में साहूकारों की जमीनें हैं। मेहनत हमारी और उत्पादन उनका। मौज-मजा वे लूटें, और हमारे बाल-बच्चे भूखे मरें। ठीक ऐसी ही एक आफत हमारे मातोरा गांव पर आयी है। 5 मई को हमारे 12 परिवारों की जमीन नीलाम होने वाली है। अगर यह जमीन इन परिवारों के हाथ से चली गयी तो 12 परिवारों के करीब 100 लोग भूखों मरेंगे। मजदूरी तो

रोज नहीं मिलती नहीं। सिवा चोरी के और कोई चारा नहीं रह जायेगा।

आप जानते हैं कि हमारे गांव ने और आस-पास के कुछ गांवों ने ग्राम-स्वराज्य का संकल्प किया है। अतः एक संगठन खड़ा हुआ है जिसके बल पर हम ऐसे अन्याय का मुकाबला करने की हिम्मत कर सके हैं। आप सबका सहयोग हम इस काम में चाहते हैं। चाहे आपने ग्रामस्वराज्य का संकल्प न किया हो, परन्तु आप नीलामी के रोज हाजिर न रहें और अगर हाजिर रहें भी तो बोली न बोलें। आपका इतना सहयोग अन्याय करने वालों की हिम्मत तोड़ देगा और हमारे जैसे अनेक गरीबों को अपनी भूमि माता से बिछुड़ने से रोकने में मदद करेगा। हम सब आपके सहयोग की प्रार्थना करते हैं।

"हम नेक बनें, एक बनें।"
"गांव की धरती गांव का राज"
"हर गांव में हो ग्रामस्वराज्य।"

विनीत

ग्रामस्वराज्य सभा, मातोरा के
सब भाइयों के राम-राम
द : दलाभाई जीता भाई भील,
मुखिया, ग्रामसभा, मातोरा

लोकअदालत के कार्यकर्त्ताओं के सहयोग से यह पत्रक साइक्लोस्टाइल करवा कर पचास गांवों में पहुंचा दी गयी। उधर निश्चित दिन अमीन, सेठ जमनादास और पुलिस कर्मचारियों के साथ मातोरा पहुंच गया। गांव वालों ने इनका बहिष्कार किया। वे लोग दिन भर बैठे रहे। न कोई उस गांव का आदमी उनके पास फटका, न कोई दूसरे गांव का बोली बोलने वाला ही आया। हां, मुखिया के निर्देश पर उनके बैठने के लिये खाट जरूर बिछा दी गयी थी और पीने के लिये पानी के घड़े रखवा दिये गये थे। दो बार गांव की लड़कियां उन्हें चाय भी पिला आयी थीं। यह नाटक तीन बार चला। आखिरकार श्री जमनादास समझ गये कि गांव के संगठन को छिन्न-भिन्न करके अपना उल्लू सीधा करना उनके लिये किसी भी प्रकार संभव नहीं है। उन्होंने ग्रामसभा की शरण ली। अदालत ने 15000 रुपये जमा कराने का जो निर्णय दे रखा था, उसके मुकाबले केवल 1500 रुपये में ही मामला निपटा और वह रुपया अगले मास में लौटाने का ग्रामसभा ने लिखित

वादा किया। गुड़ बांटा गया। बदले में सेठ ने उन्हें यह लिख दिया कि पूरा रुपया लोगों से मिल गया है, अतः उनके सारे केस कोर्ट से उठा लिये जायें। लिखित निवेदन पर सेठ ने अपने दस्तखत कर दिये और वह निवेदन कोर्ट में भेज दिया गया।

इस प्रकार "संगठन एवं अनुचित कार्यवाही का बहिष्कार" की नीति के बल पर ग्रामवालों ने अपनी समस्या के समाधान का अचूक रास्ता खोज निकाला। गांववालों की इस विजय से आसपास के अनेक गांवों को ग्राम-स्वराज्य का संकल्प लेने की प्रेरणा मिली। व्यापक पैमाने पर हुई लोक जागृति और उसके फलस्वरूप लोकअदालत को मिली मान्यता एवं प्रतिष्ठा इसका ज्वलन्त प्रमाण है।

(11)

लोकअदालत के संस्थापकों के प्रयास से ग्रामदान की जो लहर चली, उससे व्यापक पैमाने पर लोकजागरण तो हुआ ही साथ ही इन क्षेत्रों में अफसरों और साहूकारों का प्रभाव भी क्षीण हुआ और भूतपूर्व राजाओं के जो पुराने कानून चलते थे, वे भी समाप्त हो गये और ग्रामदानी गांवों ने नाजायज कर देने से इनकार भी कर दिया।

ग्रामदानी गांव गुटिया आम्वा के फतुभाई ने इस दिशा में नेतृत्व किया। ठाकुर बोरियाद ने गुटिया आम्वा के लोगों को डराना धमकाना चाहा लेकिन उनकी कोशिशें नाकामयाब रहीं। अन्त में ठाकुर ने एक दफा फतुभाई को दूसरे गांव बुलाया और वहां उसकी काफी पिटाई की। उस समय पुलिस के दो कर्मचारी भी वहां मौजूद थे लेकिन ठाकुर से मिलीभगत होने के कारण वे कुछ नहीं बोले। पिटाई बिना वजह की गयी थी और सम्पूर्णतया गैर-कानूनी थी।

ठाकुर भय के जोर पर टैक्स वसूल करना चाहते थे। गांव के लोगों को पता चला तो पूरा गांव ठाकुर से लोहा लेने के लिये तैयार हो गया। ठाकुर जीप लेकर भाग गया। आसपास की ग्रामसभाओं ने मिलकर जलूस निकाला और जबरदस्त विरोध प्रदर्शन किया। तब से ठाकुर ने किसी ग्रामदानी गांव से पैसा वसूल नहीं किया है।

इसी प्रकार साहूकारों द्वारा 'झड़प' के नाम पर की जाने वाली स्वेच्छा-चारिता का भी अन्त हुआ है। लेन-देन की प्रथा का नाम 'झड़प' है। इस प्रथा के अनुसार जो किसान साहूकारों से खाने व बोने के लिये अनाज लाते थे, वह उनके खाते में अनाज की जगह रुपया लिखता था और जनवरी-

फरवरी में कपास निकलने पर सबसे पहले कपास पर हक उस झड़प वाले साहूकार का होता था। इस प्रकार वह झड़प की प्रथा के द्वारा अनाज की अपेक्षा दुगुने मूल्य का माल (कपास) प्राप्त कर लेता था और व्याज अलग से ले लेता था। लोकअदालत के प्रयासों से स्थापित ग्राम-स्वराज्य संगठनों ने किसानों को झड़प से मुक्ति दिला दी है क्योंकि ग्रामदानी गांव संगठन के बल पर साहूकारों के चुंगल से मुक्त हो गये हैं और उनकी जरूरत का कर्जा ग्राम-स्वराज्य सहकारी समिति के माध्यम से उन्हें सस्ते व्याज दर पर उपलब्ध हो जाता है।

(12)

अफसरों की अनुचित हरकतों का पर्दापाश

ग्रामस्वराज्य में शामिल होने वाले ग्रामीणों ने लोकअदालत के संस्थापक के नेतृत्व में अफसरों द्वारा की जाने वाली धांधली एवं साजिशों का भी सफलतापूर्वक प्रतिकार करने की क्षमता प्राप्त करली है। इसका नमूना है कसुन्दर के ठाकुर वाला मामला। उक्त ठाकुर ने स्वराज्य प्राप्ति के पश्चात अपना शासनाधिकार सरकार को संभालाते समय राजस्व रेकार्डों में फेरबदल करवा दिया और अम्बालिया गांव के 16 किसानों की 180 एकड़ जमीन अपनी खुदकाश्त में बतादी। यह जमीन वह थी जो पीढ़ियों से किसानों के अधिकार में थी और जिस पर वे बराबर काश्त करते आ रहे थे लेकिन ठाकुर इस बढ़िया जमीन को सरकारी कानून की मदद से किसानों से ले लेना चाहते थे। वर्षों तक तहसीलदार के यहां मामले की पैरवी चलती रही लेकिन फैसला नहीं हो पाया। संयोग के ठाकुर के सम्बन्धी गुजरात सरकार के डिप्टी रेवेन्यू सेक्रेटरी बन गये। उनके द्वारा भड़ोंच के कलक्टर, डिप्टी कलक्टर और राजपीपला के तहसीलदार पर प्रभाव डलवाया गया। किसानों की जमीन ठाकुर को सौंपे जाने के आदेश भी हो गये। लेकिन ग्राम-सभा इस अन्याय को, चाहे वह कानून के द्वारा समर्थित ही क्यों न रहा हो, सहन नहीं कर पायी। उसने दो साल तक सरकार के हुक्म का पालन नहीं होने दिया लेकिन 1966 में पुलिस अधिकारियों के सहयोग से ठाकुर ने जमीन पर कब्जा कर लिया।

ग्रामसभा ने फैसला किया कि "चाहे जो नतीजा निकले, वे अन्याय के खिलाफ संघर्ष करेंगे।" सत्याग्रह शुरू कर दिया गया। रोज आठ दस किसानों की टोली प्रतिबंधित खेतों में जुताई के लिये जाती और पुलिस को गिरफ्तारी देती। सत्याग्रह में दूसरे गांव के लोग भी हिस्सा लेते थे। 12 दिन के

सत्याग्रह में अम्बालिया गांव के सब बालिग जेल चले गये। तब महिलों ने सत्याग्रह में सहयोग देना शुरू कर दिया और वे भी जेल जाने लग गयीं।

इधर सत्याग्रह चलता रहा, उधर लोकप्रदालत के कार्यकर्ता न केवल सत्याग्रह की सम्पूर्ण जानकारी इलाके के अन्य गांवों तक पहुंचाते रहे बल्कि राजपीपला, भड़ोंच और अहमदाबाद जा जाकर अधिकारियों से भेंट कर के अम्बालिया गांव के नये पुराने समस्त रेकार्ड भी इकट्ठा करते रहे और उन्हें सही तथ्यों की जानकारी कराने का प्रयास भी करते रहे। नतीजा यह हुआ कि सरकार ने भूल महसूस करली। पुराना हुक्म बदल दिया गया और दूसरा हुक्म किसानों के हक में जारी किया गया। 12 दिन के बाद सत्याग्रही जेल से रिहा किये गये। सत्याग्रहियों का लौटने पर शानदार स्वागत किया गया।

संगठित होकर अन्याय का मुकाबला करने के इस प्रयास ने क्षेत्र की जनता में जान फूंक दी।

जब कलक्टर के खास प्रतिनिधि यह जमीन फिर से किसानों को लौटाने के लिये पहुंचे तो सत्याग्रहियों ने उन्हें बताया कि किस प्रकार बच्चों को भूखा रखकर किसानों ने बीज बचाकर बोया था और किस प्रकार बार बार ठाकुर ने उगे हुए बीज को हल चला कर नष्ट कर दिया था। फलस्वरूप कई घरों में आज बोने के लिये दाना भी नहीं बचा है।

उसी समय पड़ोसी गांव के एक भाई ने उठकर अम्बालिया ग्रामवासियों को विश्वास दिलाया कि उसका गांव न केवल उनके लिये बीज की व्यवस्था करेगा बल्कि पूरे गांव के लोग हल बैल लेकर वहां पहुंचेगें और खेतों की बोआई-जुताई में मदद करेंगें।

कलक्टर के प्रतिनिधि इस भावना से बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने सुझाव दिया कि सब लोग अपने-अपने गांव या परिवार की ओर से सहायता का अनाज लिख दें और आज या कल तक संकलित अनाज अम्बालिया पहुंचा दिया जाये। रात भर में अनाज अम्बालिया पहुंच गया और दूसरे दिन ठाकुर वाले खेतों को 150 हल बैलों की सहायता से जोत कर किसानों ने चिर-प्रतिक्षित सही न्याय प्राप्त कर लिया।

(13)

सरकारी कर्मचारियों ने रिश्वत लौटायी

इस क्षेत्र में कावराचिमली और बाटवा नामक गैर-आमदानी गांव हैं। कुछ समय पहले जंगल विभाग के अधिकारियों ने इन गांव से सरकारी जुर्माने

की वसूली की भी, किन्तु जितना रुपया लिया, उससे आधे की भी रसीदें नहीं दी। उदाहरण के लिए जिससे 300 रुपये वसूल किये, उसे 125 रुपये की रसीद दी और जिस पर 500 रुपये जुर्माना किया, उसे 200 रुपये की रसीद दी। कुल मिलाकर 3900 रुपये कम की रसीदें काटी।

ग्रामसभा के समक्ष शिकायत आयी तो उसने जांच कराई। शिकायत सही निकली। मामला लोकअदालत के समक्ष पेश किया गया। लोकअदालत के कार्यकर्त्ता द्वारा भी पुनः जांच करके सही तथ्यों का पता लगाया गया। लोकअदालत की ओर से सम्बन्धित अधिकारियों को भी स्पष्टीकरण हेतु पत्र लिखे गये। उन्हें लिखा गया कि वे लोकअदालत में आकर अपना स्पष्टीकरण दे सकते हैं अन्यथा दूसरे कदम उठाने पड़ेंगे। एक अधिकारी ने आकर अपनी भूल स्वीकार करली, रुपया वापस लौटा दिया और भविष्य में ऐसी भूल न करने का लिखित आश्वासन दे दिया, लेकिन दूसरे दो अधिकारियों ने लोकअदालत के निर्देश की अवहेलना की। ऊपर के अधिकारियों को भी मामले से अवगत कराया गया लेकिन उनकी ओर से निश्चित कदम नहीं उठाया गया।

अन्त में लोकअदालत को अखबारों का सहारा लेना पड़ा। सारी जानकारी प्रकाशित कराई गयी और सम्बन्धित अधिकारियों के दफ्तर पर सत्याग्रह करने की घोषणा की गयी। तब उच्चाधिकारियों की आखें खुलीं। वे दल-बल सहित लोकअदालत के सामने पहुंचे। उनके आने की सूचना मिलते ही आसपास के गांवों के करीब 2000 लोग जमा हो गये। अधिकारियों ने लोकअदालत के चबूतरे पर जाने से पहले सारी जानकारी प्राप्त करली। लेकिन फिर भी इस बात से इनकार करते रहे कि रुपया उनके लोगों ने लिया होगा। वे यही कहते रहे कि हमारे किसी कर्मचारी से किसी प्रसंग में गलती हो गयी होगी किन्तु इतने मामलों में तथा इतनी बड़ी रकम की गलती होना संभव नहीं है।

जब लोकअदालत के मंत्री ने माफी मांगने वाले जंगलात अधिकारी का दस्तखती करारखत मुख्य वन-संरक्षक के हाथों में रख दिया तो वे बगलें झांकने लग गये। उन्होंने संबंधित अधिकारी को बुलाकर वह करारखत उसके समक्ष रख दिया। उसने हाथ जोड़कर निवेदन किया कि "मैंने ही यह माफीनामा लिखा है। मैं इस गलती के लिए शर्मिन्दा हूं। आप चाहें मुझे नौकरी में रखें या निकाल दें, मेरी गलती हुई है। मैं भविष्य में ऐसी भूल नहीं करूंगा।"

वन-संरक्षक उसके पश्चाताप भाव से गद्गद हो गये और उन्हें लोकअदालत

के अध्यक्ष के समक्ष यह हार्दिक उद्गार प्रकट करना पड़ा "कि आपकी लोक-अदालत ने हमारे एक कर्मचारी का जीवन बदल दिया है। मैं आपका बड़ा आभारी हूं।"

मुख्य वन-संरक्षक ने बाकी दोनों अधिकारियों को भी बुलाया। किसानों ने हिम्मत और विश्वास के साथ, जितने रुपये अधिकारियों को दिये थे, सब ठीक-ठीक बता दिये। वन-संरक्षक ने अपने अधिकारियों को धमकाया। फलस्वरूप एक ने अपनी भूल स्वीकार करली और लिखित रूप में माफी मांगी, एवं रुपया भी लौटा दिया, लेकिन तीसरा अधिकारी अपनी गलती फिर भी स्वीकार नहीं कर रहा था इसलिए मुख्य वन-संरक्षक को उसके विरुद्ध कार्यवाही करनी पड़ी।

लोकअदालत की खुली बैठक में मुख्य वन संरक्षक ने अपने अधिकारियों के आचरण के लिये क्षमा मांगी, भविष्य में ऐसा न होगा, इस बात का विश्वास दिलाया और अपने सब कर्मचारियों को ,जाहिरा तौर पर चेतावनी दी कि आयन्दा वे ऐसी बात बर्दाश्त नहीं करेंगे।

उन्होंने गांव की जागृत ग्रामसभा की भी तारीफ की और अन्य ग्राम-वासियों से अनुरोध किया कि वे भी ऐसा ही संगठन बनायें।

(14)

लोक शक्ति से अत्याचार का मुकाबला: लोकअदालत और लोक कूच

नवालजा गांव के एक युवक का खून हो गया था और उसकी लाश रणभी गांव के एक खेत में मिली। पुलिस कर्मचारियों ने अकारण ही ग्रामवासियों के साथ मारपीट की। गांव भर के पुरुषों को तीन दिन तक पशु की तरह हाथों पैरों पर उलटा किया गया और उनको इसी तरह खड़ा रखा गया। रात को वहीं लिटा दिया जाता था। तीसरे दिन गांव की एक कुंवारी लड़की रेमती को इस शक में कि उसकी मरने वाले युवक से मुहब्बत थी, बुलाया और एक कमरे में ले जाकर पीटना शुरू कर दिया। लेकिन जब पुलिस ने रेमती के वक्षस्थल पर हाथ डाला और बुरी गाली देकर उसको नीचे गिराना चाहा तो उसकी बुआ दशरी बहिन, जो गांव की उप-मुखिया भी थी और दरवाजे से मार पिटाई का दृश्य देख रही थी, पुलिस के सिपाहियों पर शेरनी की तरह कूद पड़ी और पुलिस वालों के आचरण की तीव्र शब्दों में भर्त्सना करते हुए चेतावनी दी "यदि तुम एक भी कदम आगे बढ़े और लड़की को हाथ लगाया तो मैं जान दे दूंगी।"

दशरी बहिन की दहाड़ ने पुलिस कर्मचारियों के हौसले पस्त कर दिये। कुछ घंटों बाद पुलिस के बड़े अधिकारी आये। उन्होंने रेमती को अपने डेरे पर ले जाकर उसके साथ डांट-डपट की और गालियां देकर छोड़ दिया। फिर रात्रि में पुलिस वाले रेमती को उसकी इच्छा के विरुद्ध घर से खींच कर बाहर ले गये और उसके मुंह में रुमाल ठूंस कर उसके साथ बलात्कार किया एवं उसके सारे शरीर को क्षतविक्षित कर दिया एवं उसके गुह्या में लकड़ी डालकर उसे रोता-चीखता छोड़कर गायब हो गये। नजदीक के घर वाली औरतों ने ही हल्ला मचाकर गांव की औरतों को इकट्ठा किया। अंधेरी रात में रेमती की बुआ दशरी बहिन पहले कंवाट (कांग्रेसी विधायक के घर) और बाद में छोटा उदयपुर (विरोधी पक्ष के विधायक के घर) गई और उन्हें सारी घटना बताई।

विधायक श्री भट्ट (छोटा उदयपुर) ने अपनी गाड़ी से रेमती को छोटा उदयपुर अस्पताल पहुंचाया। पुलिस वाले भी वहां पहुंच गये और उस लड़की को यह कह कर अपने कब्जे में ले लिया कि वे बड़ौदा के अस्पताल में उसे ले जायेंगे। वहां उन्होंने बांस का डंठल लगने की मनगढ़न्त बात कह कर उसका उपचार कराया और उसे रिहा कर दिया।

इधर यह बात लोकअदालत में पहुंची। तत्काल बैठक बुलाई गयी। दशरी बहिन ने अत्याचार का लोमहर्षक विवरण प्रस्तुत किया। रेमती तो अदालत के पूछने पर रो ही पड़ी मुश्किल के संभल पाई। वातावरण बड़ा तनावपूर्ण हो गया। कुछ लोगों ने जोश में जाकर यहां तक कह डाला "कवांट थाने को जला देंगे और इस पाप की सजा हम पुलिस वालों को पूरी तरह देंगे।"

लोकअदालत ने पुलिस वालों के अत्याचार की कड़ी आलोचना करते हुए एक प्रस्ताव स्वीकार किया। पांच आदमियों की जांच कमेटी बनी, जिसने मेहनत करके 68 प्रत्यक्षदर्शी व्यक्तियों के बयान लिये। बाद में लोकअदालत के कार्यकर्त्ता कंवाट पुलिस थाने के सब-इन्सपेक्टर से मिले। उन्होंने स्वीकार किया कि डिप्टी पुलिस इन्सपेक्टर के ड्राइवर और थाने के दो अन्य कर्मचारियों ने बलात्कार का पाप किया है लेकिन इस सम्बन्ध में कार्यवाही बड़े अधिकारी ही कर सकते हैं। मैं तीनों कर्मचारियों के खिलाफ अपनी रिपोर्ट बड़े साहब को अवश्य भेज दूंगा।" दूसरे दिन सब-इन्सपेक्टर पुलिस कांग्रेसी विधायक के साथ लोकअदालत में आये लेकिन इस उद्देश्य से कि लोकअदालत सरकार और अखबारों के पास सही जानकारी न भेजे और न सब-इन्सपेक्टर द्वारा दी गयी रिपोर्ट की नकल मांगने का आग्रह करें। लेकिन

लोकग्रदालत उनका यह अनुरोध स्वीकार नहीं कर सकती थी। अखबारों को सारे घटनाक्रम की जानकारी भेज दी गयी और सरकार से अनुरोध किया गया कि वह इस मामले में तुरन्त कार्यवाही करे। अन्यथा अन्याय के प्रतिकार के लिये जनता को सत्याग्रह का रास्ता अपनाना पड़ेगा क्योंकि पुलिस द्वारा जिस तरह पूरे आदिवासी समाज का अपमान किया गया है, वह बरदाश्त के बाहर है और इस मामले को 12 दिन बीत चुके हैं लेकिन अभी तक सरकार के पेट का पानी भी नहीं हिला है।

अखबारों ने इस घटनाक्रम पर गहरा रोष व्यक्त किया और गुजरात के और भी कई नेताओं ने आदिवासियों पर हुए इस अत्याचार के सम्बन्ध में लोकग्रदालत की बात मानने का सरकार से अनुरोध किया।

लोकअदालत के नोटिस का सरकार पर काफी प्रभाव पड़ा। तीनों छोटे पुलिस कर्मचारियों को तुरन्त हटा देने का हुक्म हुआ लेकिन तीनों जिम्मेदार पुलिस अधिकारियों के विरुद्ध—जिनकी मौजूदगी में तीन दिन तक लोगों की पिटाई हुई थी तथा उनके साथ पशु से भी बदतर व्यवहार और यह बलात्कार हुआ था—कार्यवाही नहीं की गयी।

15 दिन बाद लोकग्रदालत फिर बैठी। तय किया गया कि सरकार पर प्रभाव डालने के लिये तीन दिन बाद एक 'लोक-कूच' का आयोजन किया जाये। इस 41 मील लम्बे लोक-कूच में भाग लेने के लिये लगभग 1500 स्त्री पुरुष निर्धारित तिथि और समय पर एकत्रित हो गये। धूप की परवाह न करके लोक-कूच में भाग लेने वाले स्त्री-पुरुष छोटा उदयपुर पहुंचे और निर्भय होकर किसी बात की परवाह किये बगैर अहिंसक लोकशक्ति का प्रचण्ड प्रदर्शन किया। छोटा उदयपुर के इतिहास में आदिवासियों की संगठित शक्ति का इस प्रकार का यह पहला प्रदर्शन था जिसे देखने के लिये छोटा उदयपुर के लोग उमड़ पड़े। कचहरी के लोग भी सारा कामकाज छोड़कर अहाते से इसे देखने लगे।

उसी दिन लोक-कूच छोटा उदयपुर से रवाना होकर पुलिस सब-इन्स्पेक्टर के कार्यालय, क्वांट पहुंचा। इस प्रदर्शन का तात्कालिक फल निकला। समाचार-पत्रों ने बड़ी-बड़ी सुर्खियां देकर इस प्रदर्शन का प्रकाशन किया। रेडियो ने स्थानीय समाचार बुलेटिन में इसे प्रसारित किया। आखिरकार सरकार ने क्वांट के सब-इन्सपेक्टर को हटाने और उसको निलंबित करने की घोषणा की। दूसरे दो उच्च पुलिस अधिकारियों के भी तबादले कर दिये गये।

लोकअदालत द्वारा संगठित एवं जागृत लोकशक्ति की विजय हुई। सरकार ने लोकअदालत की सत्ता के पीछे निहित अहिंसात्मक शक्ति को महसूस किया और उसे अन्याय के निराकरण के लिये आवश्यक कदम उठाने को मजबूर होना पड़ा।

परिशिष्ट 'घ'

करारखत के नमूने

लोकअदालत द्वारा दिये गये निर्णयों को करारखत के रूप में लिपिबद्ध किया जाता है। फाइल अध्ययन से यह बात सामने आयी कि प्रारम्भिक वर्षों में करार-खत की सम्यक् व्यवस्था नहीं थी। लोकअदालत के करारखतों का नमूना इस परिशिष्ट में दिया गया है। इन करारखतों को देखने से ऐसा लगता है कि उनके लिखने में मुख्य दृष्टि समझाने की रही है। करारखत सामान्यत: अध्यक्ष द्वारा लिखा जाता है। करारखतों की भाषा में एक-रूपता का अभाव खटकता है। करारखत पंचों को साक्षी मानकर वादी-प्रतिवादी की ओर से लिखा जाता है। इसकी व्यवस्था, नियम आदि भी अत्यन्त सरल हैं।

करारखतों के विकास के क्रम को देखते हुए उसे मुख्यत: दो वर्गों में बांट सकते हैं: (1) प्रारम्भिक करारखत इसे समयानुसार सन् 1965 तक मान सकते हैं। (2) करारखत का मौजूदा ढांचा, उक्त वर्ष के बाद करारखत के रूप का निखार हो रहा है।

विवादों के प्रकार के अनुसार करारखतों का नमूना इस प्रकार है:

1961 से 1965 तक लिखे जाने वाले करारखतों का नमूना

(1) पति-पत्नी का झगड़ा

लड़की तेरसिंह डूमड़ा, ग्राम चिपानी ने पंचों के सामने स्वीकार किया। तुम्हारी लड़की को नहीं मारूंगा। अगर मारूंगा तो पंच 151 रुपये तक मुझ पर दण्ड कर सकते है। प्रतिवादी बाबा नाना ग्राम पोढ़ा ने पंचों की जामनी (जमानत) पर लड़की को पति के सुपुर्द कर दिया।

(2) लड़की से छेड़छाड़

राजरसिंह कनजी भाई, ग्राम पोढ़ा ने हेवड़ा भाई पापड़ा भाई की लड़की वेचली को, जिसका गांव मांटियावाटा था, छेड़ा। लोक अदालत में क्षमा मांगी। 45 रुपये लड़की के बाप को जुर्माना भरा।

(3) गुजर बसर

देवदना के मूलजी जालमा ने अपनी काकी बाई भूरी बुटिया से करार किया कि मैं तुम्हें गुजर-बसर के लिये निर्धारित अनाज और नकद सुकाल और दुष्काल दोनों में दूंगा क्योंकि मूलजी जालमा अपने काका की जमीन जोतता है।

(4) दहेज सम्बन्धी झगड़ा

लड़की के पिता मथुर छाड़िया कोली, ग्राम मंकोड़ी ने खरमड़ा ने नानजी सुमरा (लड़की के पति) को स्वीकार किया कि मैं 215 रुपये दहेज के लड़के को दूंगा। पंचों के सामने स्वीकार करता हूं।

(5) मारपीट

प्रतिवादी कालिया लालिया, ग्राम गलेथा ने स्वीकार किया कि गांव में झगड़ा मारपीट नहीं करूंगा। करूं तो मेरे पर पंच 500 रुपये तक दण्ड कर सकते हैं। वादी था गलेछा गांव का रगन थावरिया।

(6) जमीन का झगड़ा

मैं हरिया जानिया (ग्राम जाम्वा) तुम लोगों, गनिया जानिया, को लिख देता हूं कि मेरे पास 6 एकड़ जमीन है, उसमें से आधा भाग तुमको देता हूं। इसके सिवाय अनाज की पैदावार में मेरे दो भाग और तुम्हारा एक भाग होगा।

(7) जमीन का झगड़ा

मैं नाना भाई जाथया कोली (मोटावांटा) तुम नारायण सीतू रंगपुर को लिख देता हूं कि पंचों के सामने तुम्हारा खेत 4 एकड़ जो मेरे पास था, तुमको निम्न शर्त पर देता हूं कि तुमको एक एकड़ के 600 रुपये के हिसाब से कुल 2450 रुपये देना पड़ेगा। ये सब रुपये इसी साल दे दोगे तो मैं जमीन का कब्जा इसी वर्ष छोड़ दूंगा।

(ख) 1966 से 1975 तक

तलाक

(1) मैं सुन्दरिया राम रंगपुर का तुम रणछोड़ तुलसी ग्राम अम्बालग को लिख देता हूं कि आज से हमारे बीच तकरार नहीं है और तुम्हारी पुत्री को

मैंने त्याग दिया है। इसकी कहीं भी शादी कर सकते हो। इसमें हमको कोई एतराज नहीं है और वह जहां कहीं भी शादी करेगी, वहां से हम 251 रुपये लेंगे।

(2) मैं केवजी घुघिया (ग्राम आधा डूंगरी), तुम बजली मंगनिया ग्राम सामला को लिख देता हूं कि आज के बाद मेरे और तुम्हारे बीच किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। तुम कहीं भी विवाह कर सकती हो। तुम्हारे पास जो बच्चा है, उस पर मेरा अधिकार नहीं है। कारण कि वह मेरा नहीं है। मैं बजली केवजी लिखती हूं कि मैंने राजी ने तुम से तलाक लिया है। तुम कहीं भी विवाह कर सकते हो, लिखावट हमने पढ़-लिखकर स्वीकार की है।

(3) मैं मानसिंह मालूतुम नायकड़ा बावला को लिख दिया कि मैंने तुम्हारी पत्नी बाई जुवली को अपने घर में रखा है। इसके बदले में मैं 700 रुपया तुमको दूंगा और आज से हमारे बीच कोई झगड़ा नहीं है। मैं नायकड़ा तुम मानसिंह को लिख दिया कि हमारे तुम्हारे बीच कोई झगड़ा नहीं है। तुम बाई जुवली को घर में रख सकते हो या छोड़ सकते हो। उस पर अब मेरा कोई अधिकार नहीं है। मैं जुवली नायकड़ा को छोड़कर इसकी (मानसिंह की) पत्नी बन कर गई हूं। यह मेरे लिये सब कुछ है। यह लिखावट हमने पढ़-सुनकर स्वीकार की है।

पारिवारिक झगड़ा

(1) मैं मथुरा हूमका तुम पंचों के सामने मंगिया भूरी नूरिया ग्राम कानखेड़ा को आज लिख देता हूं कि आज के बाद तुम्हारी लड़की धनकी को मेरी मां नहीं सतायेगी और किसी प्रकार की हानी नहीं पहुंचायेगी। मगर करेगी तो तुम तुम्हारी लड़की धनकी को अपने घर ले जा सकते हो और इस पर मेरा कोई अधिकार नहीं रहेगा। आज से हम मां से अलग रहेंगे और उससे मां का काम नहीं कराऊंगा और धनकी बिना पति से पूछे पिता के घर नहीं जावेगी।

(2) मैं नागजी बुधिया तुम मथुर झगड़ा को पंचों के सामने लिख देता हूं कि आज के बाद तुम्हारी लड़की जस्तू को परेशान नहीं करूंगा, मारूंगा नहीं। अगर सताऊं तो पंच 501 रुपये तक मेरे पर जुर्माना कर सकते हैं और मेरा जस्तू पर कोई अधिकार नहीं रहेगा। मैं मथुर तुम नागजी को लिख देता हूं कि आज के बाद मेरी लड़की जस्तू तुम्हारी आज्ञा के बिना मेरे

घर चली आई तो 501 रुपये देऊंगा। यह लिखावट पढ़ सुनकर स्वीकार की है।

(3) मैं गनिया वेचला पंचों के सामने लिख देता हूं कि मैंने भूल से मेरी साली मंगली को झूठी रीति से अपने घर में रखा और दो साल तक हमारे बीच सम्बन्ध रहे और मुझसे मंगली को एक लड़की है जिसकी आयु 15 दिन है। इस लिखित से स्वीकार करता हूं कि मेरी गलती के कारण मंगली मेरे पास थी। मंगली और बच्ची पर मेरा कोई अधिकार नहीं है। गलती के जुर्माने का 150 रुपये देने को तैयार हूं। ऊपर की लिखावट पढ़-सुनकर स्वीकार की।

(4) मैं शांतिलाल हिरकत ग्राम जामली पंचों के सामने लिख दिया कि झरोकी बाई टूटी के घर 11 वर्ष से घर जंवाई हूं और मुझसे बाई टूटी को चार बच्चे हुए। मुझसे गलती से अपनी पड़ोस की दो लड़कियों के साथ गैर-कानूनी सम्बन्ध हुए। इसके लिये क्षमा चाहता हूं और भविष्य में ऐसी गलती नहीं करने के वचन से बंधा हूं। ऐसा करूं तो बाई टूटी पर मेरा पति का अधिकार समाप्त हो जावेगा और पंच 51 रुपया जुर्माना ले सकते हैं। अब घर में मैं अच्छी तरह से रहूंगा। यह लिखावट मैंने पढ़-सुनकर स्वीकार की है।

जमीन सम्बन्धी झगड़ा

(1) मैं सुन्दरियाराय (रंगपुर) पंचों के सामने लिख देता हूं कि मैं मेरी जमीन का बंटवारा करने को तैयार हूं। एक भाग मेरे पास रहेगा। दूसरा भाग रंगली सुन्दरिया को मिलेगा। एक-एक भाग जमू भाई, करशन भाई और गैमलभाई को मिलेगा। पंच बंटवारा करेंगे और उस पर भागीदार का कब्जा रहेगा। पर यह जमीन सरकारी कागजों, ग्राम-सुधार संस्था में सम्मिलित करनी पड़ेगी। ऊपर लिखा हमने पढ़ाकर सुन लिया है और मेरे वारिसों को भी स्वीकार है।

(बाद में अगले वर्ष कार्यवाही निम्न प्रकार लिखित में दर्ज हुई)।

इस लेख द्वारा हम रंगपुर के निवासी पक्षकार पंचों के सामने लिखते हैं कि हमारी जायदाद का बंटवारा निम्न प्रकार होगा :

मैं सुन्दरियाराम जी मेरी पूरी जमीन को 5 भागों में बांटता हूं। पाचों भाग बराबर रहेंगे जो निम्न व्यक्तियों को मिलेंगे :

प्रथम :: सुन्दरियाराम जी

द्वितीय :: रंगली बहन सुन्दरिया

तीसरा :: जमू भाई सुन्दरिया

चौथा :: करसनभाई सुन्दरिया

पांचवा :: नटूभाई सुन्दरिया

मैं सुन्दरियाराम जी ने परिवार के निर्वाह के लिये तीन हजार का कर्जा लिया है जो प्रत्येक भागीदार (हिस्सेदार) को भरना पड़ेगा। लेकिन जमू सुन्दरिया गत दो वर्ष का कर्जा नहीं देगा। कारण वह स्वयं दो वर्ष से अलग रहकर कमा रहा है। दो कमरे का मकान जमू, करसन, नट और उनकी या रंगली के हिस्से में जावेगा और पुराना मकान सुन्दरिया भाई के हिस्से में जावेगा और सुन्दरिया भाई जब मकान को पक्का करेंगे तो सब भागीदारों को हिस्से में रुपयों का भाग देना। यह लिखावट हमने पढ़कर-सुनकर स्वीकार की है।

(2) मैं कानजी धानका, ग्राम सिहादा, मेरी भाभी बाई सादी को आज दिन पंचों के सामने लिख देता हूं कि मेरे जो भाई मर गये हैं, उनकी पूरी जमीन और जायदाद भाभी सादी को दूंगा। इस समय हम सम्मिलित रहते हैं लेकिन जब भी भाभी अलग होंगी, और वह लड़की के पति को घर जंवाई रखेगी, तब उनकी जमीन छोड़ दूंगा। साथ हैं तब तक उनके और उसके बच्चों की सम्भाल करूंगा। लिखावट पढ़कर-सुनकर स्वीकार की।

(3) मैं छोटा भाई बापू भाई (ग्राम गजनावांट) तुम रामा भाई, हरियाभाई, छगनभाई, मोहन भाई, मनसुख भाई, कालू भाई, रावजी भाई, ग्राम वांटा को लिख दिया कि मेरे पास जो 3 एकड़ 5 गु. जमीन है, इसकी एवज में मैं आपको 2027 रुपये देता हूं और इस जमीन में आप लोगों को 5 साल तक खेती करने का अधिकार देता हूं. यह अवधि खतम होने पर यह जमीन मुझे सौंपनी पड़ेगी। बीच में मैं किसी प्रकार तुम लोगों को परेशान नहीं करूंगा। अगर इस दौरान आखा तीज के पहले पैसा लौटा दूं तो यह जमीन मुझे सौंपनी पड़ेगी। यह लिखावट मैंने पढ़ सुन कर स्वीकार की है।

(4) हमारे पिता लालसिंह जानमा के नाम पर जमीन सर्वे नं. 100 एक एकड़ और 38 गुठा है, वो हमारे पिता लालसिंह, होरी, और भूमसी के मध्य बराबर भागों में बंटेगी। बाकी नेरबा की पूरी जमीन हम सातों भाईयों को बराबर बंटवारे के लिये पंचों को सौंपते हैं। दादन का नंबर

लालसिंह ने जो खर्चा किया है, वो कुल 500 रुपये है वो हमको स्वीकार है। इस रकम में से सात भाग होंगे। इसमें से चार भाईयों कलसिंह, घनजी, मानसिंह और नरसिंह इन चारों को शंकर के 300 रुपये देना है। यह हम चारों को मंजूर है। इस आधार पर हमारे बीच जो झगड़ा है और जो मुकदमा कोर्ट-कचहरी में गया है, वो वापस लेते हैं और भविष्य में नहीं झगड़ेंगे।

लेन-देन सम्बन्धी

मैं बाई बीतली होदर की वहू, तुम हरिजन पूनिया जीता पानवड़ को लिख देती हूं कि मेरे पति ने तुम्हारे से जो बैल लिया था, उसके 600 रुपये बाकी थे। उसके बदले में मैं एक बछड़ा और बैल देती हूं। आगे आपसे मेरी लेन-देन सम्बन्धी तकरार नहीं रहेगी। मैं पूनिया जीता बाई बीतली को लिख देता हूं कि मुझे एक बैल और बछड़ा मिल गया है। अब हमारे बीच कोई झगड़ा नहीं है।

मारपीट

मैं भूरा भाई छदिया भाई कोली, गांव बंकवा का रहने वाला हूं। मेरी गलती के लिये क्षमा चाहता हूं। पंचों द्वारा दिया दण्ड खुशी से स्वीकार करता हूं और पुलिस की रिपोर्ट वापिस ले लेता हूं। पंचों का फैसला स्वीकार है। यह लिखावट पढ़-सुनकर स्वीकार की है।

चोरी

(1) मैं मग्गा जादवा, ग्राम मोटावांटा पंचों के सामने लिख देता हूं कि आज मैंने चोरी का 217 रुपया का कपास मोल लिया था। उसके जुर्माने के रूप में 50 रु. देता हूं। अगर फिर से चोरी का कपास लेते हुए पकड़ा जाऊं तो पंच 1000 रुपये जुर्माना कर सकते हैं।

(2) मैं नायका रणछोड़ कोली (ग्राम आंबालग) तुम पंचों को लिख देता हूं कि मैंने गलती से रंगपुर के वेलिया छगन के बैल को चुराया था। वो बैल मैं कंवाट वेचने गया तब पकड़ा गया था। अब मैं पंचों से क्षमा चाहता हूं। भविष्य में ऐसा खराब कार्य नहीं करूंगा। मेरी गलती पर पंच जो सजा देंगे, स्वीकार करूंगा। इस गलती के लिये 150 रुपया जुर्माना पंचों को दे रहा हूं। यह लिखावट पढ़ सुनकर स्वीकार की है।

(3) मैं रड़तिया भील, ग्राम समिति को लिख देता हूं कि सर्वे नं. 36,

57 की जमीन कुल 8089 रुपये 21 पैसे में मोल ली है । उसमें से 4000 रुपया मेरे को अप्रैल 71 के पहले देने हैं । इसके पश्चात अप्रैल 1972 में रुपये 2000 देने हैं और अप्रैल 1973 में रुपये 2089 तथा 21 पैसे तुमको देने हैं । इस प्रकार यह रकम भरूंगा । अगर मेरा प्रथम भाग 4000 रुपये इस वर्ष न भर सकूं तो प्रति एकड़ 100 रुपया जुर्माना दूंगा । इस प्रकार 5-5 एकड़ का 550 रुपया दूंगा और जमीन पर से अधिकार उठाना पड़ेगा और ग्राम समिति इस जमीन को किसी को भी दे सकती है ।

साक्षात्कार अनुसूची–1

कुमारप्पा ग्राम स्वराज्य संस्थान, जयपुर

लोकअदालत : संगठन और कार्य पद्धति का अध्ययन

दिनांक — साक्षात्कार संख्या
नाम — आयु
ग्राम — शिक्षा
जाति
संयुक्त या एकाकी परिवार

सर्वेक्षण कर्त्ता

(i)

विवाद के वादी एवं प्रतिवादी से सम्बन्धित प्रश्न : (दोनों पक्षों से)

(1) परिवार तालिका

क्रम	मुखिया से सम्बन्ध	शिक्षा	उम्र	धन्धा	आय (मासिक/वार्षिक)
1.					
2.					
3.					
4.					
5.					
6.					
7.					
8.					

कौनसा विवाद लोकअदालत में गया

(2) विवाद कब और कैसे प्रारम्भ हुआ ?

(3) लोकअदालत में आने से पूर्व

(क) पंचायत में गये हों तो वहां क्या हुआ ?

(ख) जाति पंचायत में गये हो तो वहां क्या हुआ ?

(ग) आपसी बातचीत से क्या कुछ तय हुआ ?

(घ) लोकअदालत में क्यों ले गये ?

(4) विवाद का स्वरूप (आवश्यकता हो तो अलग नोट करें)

(5) लोकअदालत में जाने की तारीख--कितनी बार तारीखें लगीं और प्रत्येक तारीख में क्या-क्या हुआ ?

(6) फैसले की तारीख।

(7) लोकअदालत की बैठक में कितने लोग उपस्थित थे ?

(8) क्या निर्णय हुआ ? विवरण दें।

(9) क्या निर्णय आपके पक्ष में हुआ ? हां/नहीं।

(10) क्या निर्णय से आप सन्तुष्ट हैं ? पूर्ण सन्तुष्ट/सामान्य संतुष्ट कम सन्तुष्ट/असंतुष्ट।

(11) निर्णय के बारे में आपकी क्या राय है ?

(क) न्याय मिला? यदि हां, तो आपकी क्या कसौटी है ?

(ख) न्याय नहीं मिला, इसकी कसौटी क्या है ?

(ग) विवाद बढ़ा, यदि हां तो किस प्रकार से ?

(घ) विवाद कम हुआ—यदि हां तो किस प्रकार से ?

(ङ.) तनाव कम हुआ—यदि हां तो किस प्रकार से ?

(12) क्या लोकअदालत के निर्णय के बाद अन्य न्यायालय में अपील की है ? हां/नहीं। यदि हां तो कहां और क्या हुआ। (विवरण नोट करें)।

(13) लोकअदालत में क्या परेशानी होती है ?

(अ) कार्य प्रक्रिया की
(आ) आर्थिक
(इ) एक व्यक्ति के नेतृत्व की ।

(14) आज क्या स्थिति है ? विवाद सुलझ गया/कुछ तनाव है/सामान्य स्थिति ।

(15) लोकअदालत में निर्णय होने तक कुल कितना खर्च हुआ ? विवरण दें ।

(ii)

(गांव के मुखिया, सामान्य जन, अधिकारी, जूरी, वकील आदि से सम्बन्धित प्रश्न)

नाम उम्र
गांव आय मासिक
शिक्षा जाति
धन्धा

(1) क्या आपने लोकअदालत की कार्यवाही में भाग लिया है ? हां/नहीं ।

(2) लोकअदालत में किस रूप में भाग लिया ?

(1) दर्शक
(2) सामान्य—वादी/प्रतिवादी
(3) गवाह-पक्ष में/विपक्ष में
(4) जूरी
(5) अन्य

(3) आपकी राय में लोकअदालत से—

(अ) क्या विवाद का हल आसानी से निकलता है ?
(आ) क्या आपसी तनाव कम होता है ?
(इ) क्या खर्च की बचत होती है ?
(ई) क्या न्याय शीघ्र मिलता है ?

(उ) यदि अन्य कोई लाभ है तो क्या ?

(4) क्या लोकअदालत से सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र में स्थायित्व आया है ? जैसे—

(क) विवाह सम्बन्धी विवादों में कमी हुई है।

(ख) पारिवारिक तनाव में कमी हुई है।

(ग) भूमि सम्बन्धी विवादों में कमी आई है।

(घ) भूत प्रेत में विश्वास कम हुआ है।

(ङ) खेती में रोजगार का क्षेत्र बढ़ा है।

(5) क्या लोकअदालत के कारण समाज में जागृति आयी है ? जैसे—

(अ) क्या क्षेत्र के लोग विवादों को स्वयं सुलझाने का प्रयास करते हैं ? यदि हां, तो कैसे ?

(आ) क्या महाजन का शोषण कम हुआ है ? हां/नहीं। हां तो किस प्रकार—

(क) क्या महाजन कम ब्याज लेने लगा है ?

(ख) क्या महाजन सही हिसाब रखता है ?

(ग) क्या महाजन पहले से अधिक सही हिसाब रखता है ?

(घ) अन्य ?

(इ) क्या जंगल के अधिकारियों के द्वारा की जाने वाली परेशानी कम हुई है ? हां/नहीं/यदि हां तो किस रूप में।

(क) लकड़ी काटने से सम्बन्धित प्रश्नों पर अब परेशान नहीं करते/कम करते हैं।

(ख) पशु चराने के प्रश्न पर परेशान नहीं करते या कम करते है।

(ग) अन्य।

(6) क्या अन्याय के खिलाफ बोलने की हिम्मत आयी है ? हां/नहीं। यदि हां, तो किस रूप में ?

(अ) संगठित होकर अन्याय का विरोध करते हैं।

(आ) लोकअदालत में जाते हैं।

(इ) अन्यायी को समाज (ग्राम) दंड देता है।

(ई) अन्य।

(7) लोकअदालत से क्या लाभ है ?

अ–(क) न्याय शीघ्र मिलता है।

(ख) न्याय पर होने वाले व्यय में बचत होती है।

(ग) न्याय कार्य में दोनों पक्ष खुल कर भाग लेते हैं।

(घ) निष्पक्ष न्याय मिलता है।

(ङ.) लोकतांत्रिक है।

आ–लोकअदालत में आस्था के क्या कारण हैं ?

(क) अच्छा नेतृत्व।

(ख) कार्य-पद्धति।

(ग) आनन्द निकेतन आश्रम का काम।

(घ) ग्रामदान विचार का प्रसार।

(ङ) जाति संगठन।

(8) क्षेत्र में लोकअदालत के क्या प्रभाव पड़े हैं ?

(अ) राजनीतिक प्रभाव

(क) लोकअदालत के नेतृत्व को स्वीकार करते हैं ?

(ख) उसका मार्ग दर्शन मानते है ?

(ग) राजनीतिक दलों की अपेक्षा लोकअदालत के नेता की बात को अधिक मानते हैं ?

(घ) लोकअदालत के कारण गांव में गुटबन्दी है/नहीं है। है तो क्यों ?

(ङ.) लोकअदालत के कारण एकता है ?

(आ) सामाजिक एवं आर्थिक प्रभाव

(क) अन्धविश्वास कम हुआ/वैसा ही है/समाप्त हुआ।

(ग) जातिगत एकता आयी है/बढ़ी है/वैसी ही है।

(ग) छूआ-छूत कम हुई है/समाप्त हुई है/पहले जैसी है।

(3) समग्र दृष्टि से लोकअदालत का कार्य कैसा है ?

(क) अच्छा है।
(ख) बहुत उपयोगी है।
(ग) सामान्यतया ठीक है।
(घ) अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता।

(9) लोकअदालत के अन्य प्रभाव

(क) पुलिस का हस्तक्षेप कम हुआ।
(ख) कोर्ट में जाने से मुक्ति मिली।
(ग) जंगल के अधिकारियों से परेशानी कम हुई है।
(घ) सरकारी अधिकारियों का सहयोग बढ़ा है।

(10) सामान्य न्यायालय और लोकअदालत में क्या फर्क है ?

(11) आपके साथ आश्रम में कैसा व्यवहार होता है ?

(क) हमारी बात सुनी जाती है।
(ख) कम रुचि लेते हैं।
(ग) निवास की समस्या रहती है।
(घ) भोजन की समस्या रहती है।

(12) लोकअदालत के स्थायित्व के बारे में आपकी क्या राय है ?

(क) इसमें विश्वास है।
(ख) ठीक एवं सस्ता न्याय मिलता है।
(ग) शीघ्र न्याय मिलता है।
(घ) ग्रामदानी ग्रामसभायें ग्रामस्तर पर :

इस काम को स्थायी रूप में करने लगी है।

(ङ) ठोस व्यवस्था का विकास हो रहा है। लोकअदालत की/ ग्रामसभा की।

(च) कानूनी मान्यता का अभाव।
(छ) एक व्यक्ति का नेतृत्व है।
(ज) विश्वास पर आधारित है।

(13) निर्णय प्रक्रिया में कौन-कौन से तत्व प्रभावकारी होते हैं ?

(क) सही न्याय की खोज ।
(ख) व्यक्ति का नेतृत्व ।
(ग) जाति का हित ।
(घ) पैसा
(ङ) नेताओं का प्रभाव ।
(च) व्यक्ति का हित ।

(14) क्या वादी-प्रतिवादी पक्ष में निर्णय के लिये विशेष प्रयास भी करते हैं ? जैसे :—

(क) लोकअदालत में प्रभावी लोगों से बातचीत ।
(ख) जूरी पर प्रभाव डालना ।
(ग) पैसा देना ।
(घ) अन्य ।

(15) क्या लोकअदालत के साथ किसी का टकराव है ? यदि हां, तो किस प्रकार का ?

(क) न्यायालय के साथ ।
(ख) पुलिस के साथ ।
(ग) महाजन वर्ग के साथ ।
(घ) गांव के किसी विशिष्ट वर्ग के साथ—कौन सा वर्ग ?
(ङ.) पढ़े लिखे लोगों के साथ ।

(16) यदि टकराव है, तो उसका लोकअदालत पर क्या प्रभाव पड़ा है ?

(क) प्रतिष्ठा कम हुई ?
(ख) विवाद ले जाने में रुचि कम हुई ?
(ग) विरोध में वातावरण बना ?

(17) लोकअदालत की प्रतिष्ठा कैसी है ?

(क) इसे सभी स्वीकारते हैं ।

(ख) खास वर्ग कम स्वीकारता/नहीं स्वीकारता—कौन सा वर्ग ?

(ग) प्रतिष्ठा का क्या कारण है ? सही न्याय/भाई (श्री हरिवल्लभ परीख) का व्यक्तित्व/कल्याणकारी कार्य ?

(घ) क्या लोकअदालत के लोगों का अपना स्वार्थ है ? हां, तो क्या और क्यों ?

कुमारप्पा ग्राम स्वराज्य संस्थान

लोकअदालत : संगठन और कार्य पद्धति का अध्ययन
साक्षात्कार अनुसूची-2

परम्परागत कोर्ट में विवाद ले जाने वालों से साक्षात्कार

दिनांक संख्या
नाम ग्राम
आयु जाति
शिक्षा

(1) किस प्रकार के न्यायालय में विवाद ले गये ? पंचायत/स्थानीय कोर्ट में/अन्य कोर्ट में।

(2) लोकअदालत में विवाद क्यों नहीं ले जाते हैं ?

(क) दूर पड़ता है।
(ख) जानकारी नहीं है।
(ग) वहां न्याय नहीं मिलता। यदि हां, तो क्यों नहीं मिलता ?
(घ) ज्यादा समय लगता है।
(ङ) लोकअदालत में विवाद ले जाने से मना करते हैं—गांव के नेता/जाति के नेता/राजनीतिक नेता।

(3) परम्परागत कोर्ट में क्या सुविधायें या असुविधायें हैं ?

सुविधायें असुविधायें

(क)
(ख)
(ग)

(4) लोकअदालत के साथ किसी प्रकार का तनाव है ?

(क) स्थानीय राजनीति की दृष्टि से वहां (लोकअदालत) जाना ठीक नहीं मानते।

(ख) जाति संगठन मना करता है।

लोकअदालत या आनन्द-निकेतन आश्रम से ठीक सम्बन्ध नहीं है। यदि हां, तो ऐसा क्यों ?

(5) आपकी लोकअदालत के बारे में क्या राय है ?

(6) परम्परागत कोर्ट में न्याय प्राप्ति में कितना समय लगा ?

(7) परम्परागत कोर्ट में न्याय में कितना खर्च हुआ ? विवरण दें :

(क) वकील पर

(ख) गवाहों पर

(ग) कोर्ट फीस

(घ) अन्य

कुमारप्पा ग्राम स्वराज्य संस्थान

लोकग्रदालत : संगठन एवं कार्य-पद्धति का ग्रध्ययन
ग्राम–ग्रनुसूची

सर्वेक्षण वर्ष 1975 नाम गांव गांव से दूरी (किलोमीटर में)

(1) गांव

(2) पंचायत

(3) पुलिस स्टेशन

(4) तालुका

(5) जिला

(6) गांव का क्षेत्रफल (एकड़)

(7) कुल परिवार संख्या।

(क) 1971 की जनगणना के ग्रनुसार—

(ख) वर्तमान समय में—

(8) सुविधायें—

(i) स्कूल प्राथमिक मिडिल माध्यमिक

(ii) विद्यार्थियों की संख्या

(iii) विजली गांव में/गांव से.........किलोमीटर दूर

(iv) सड़क गांव में/गांव से.........किलोमीटर दूर

(v) रेलवे स्टेशन गांव से..............किलोमीटर दूर

(vi) बस स्टैण्ड गांव में/गांव से.........किलोमीटर दूर

(vii) डाकघर गांव में/गांव से.........किलोमीटर दूर

(viii) तार घर गांव में/गांव से.........किलोमीटर दूर

(ix) कुएं कच्चे/पक्के (गांव में संख्या)

(x) तालाब (गांव में संख्या)

(xi) बाजार गांव में/गांव से.........किलोमीटर दूर

(xii) चिकित्सालय गांव में/गांव से.........किलोमीटर दूर

(xiii) परिवार नियोजन केन्द्र गांव में/गांव से.........किलोमीटर दूर

(xiv) रंगपुर आश्रम की दूरी

तारीख सर्वेक्षक

(नोट : यह जानकारी सरकारी कार्यालय, ग्राम पंचायत या ग्रामसभा से प्राप्त की जायेगी)।

(1) जाति विभाजन कुल संख्या परिवार संख्या

(i) अनुसूचित जातियां

(क) (ख) (ग)

(ii) आदिवासी जातियां

(क) (ख) (ग)

(iii) सामान्य हिन्दू जातियां

(क) (ख) (ग)

(iv) अन्य

(2) कुल जमीन एकड़ में

(3) भूमि की किस्म

(क) कृषि होती है

(ख) कृषि हो सकती है

(ग) मकान

(घ) बंजर

(ङ) पहाड़

(4) फसल एवं साधन

(अ) फसल की किस्में

(आ) आधुनिक साधन

(क) ट्रैक्टर (ख) थ्रेसर (ग) पम्पिग सेट
(घ) अन्य

(5) भूमि का बंटवारा—श्रेणी और परिवार संख्या

(अ) भूमिहीन

(आ) पांच एकड़ तक

(इ) दस एकड़ तक

(ई) बीस एकड़ तक

(उ) बीस एकड़ से अधिक

(6) रोजगार की स्थिति परिवार संख्या जाति

(अ) मुख्यतः खेती पर निर्भर परिवार

(आ) मुख्यतः उद्योग पर निर्भर परिवार

(इ) मुख्यतः व्यापार पर निर्भर परिवार

(ई) मुख्यतः नौकरी पर निर्भर परिवार

(उ) गांव में नौकरी करने वाले लोग (संख्या)।

(7) शिक्षित व्यक्ति (संख्या)

(क) एम. ए. (ख) बी. ए. (ग) टैक्नीकल
परीक्षा उत्तीर्ण (घ) हाईस्कूल (ङ) उससे नीचे
(च) अन्य

(8) क्या गांव ग्रामदानी है ? यदि हां, तो निम्नलिखित जानकारी—(केवल ग्रामदानी एवं सक्रिय गांवों के लिए)

(क) ग्रामदान की घोषणा का वर्ष

(ख) ग्रामसभा की स्थापना

(ग) ग्रामसभा के कार्यों का विवरण
(अलग कागज पर)

(घ) ग्रामसभा द्वारा लोकअदालत (न्याय) का कार्य अपनाया गया है। (अलग विवरण)।

(ङ.) किस-किस प्रकार कितने विवादों को सुलझाया है? (पांच वर्षों में)

विवाद का प्रकार	ग्रामसभा ने सुलझाया	लोकअदालत में गया	कोर्ट में गया
(क)			
(ख)			
(ग)			

विवाद का प्रकार	ग्रामसभा ने सुलझाया	लोकअदालत में गया	कोर्ट में गया
(घ)			
(ङ.)			

(च) ग्रामस्तरीय लोकअदालत की व्यवस्था का विवरण :

(i) स्थान

(ii) कार्य-पद्धति

(iii) अन्य जानकारी, जो उपलब्ध हो।

(9) गांव में अधिक विकास का कार्य

कार्य का प्रकार	संख्या :	(i) आश्रम के सहयोग से	(ii) सरकार के सहयोग से

क. ख. ग.

(10) गांव में अन्य कार्य जैसे—

(क) नई परम्पराओं का विकास

(ख) समाज सुधार के कार्य

(ग) संगठनों एवं संस्थाओं का विकास—इनका विवरण

सन्दर्भ ग्रन्थ

डा. उपेन्द्र बक्षी	लोकअदालत एट रंगपुर—ए प्रीलिमिनरी स्टडी, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1974।
हरिवल्लभ परीख	क्रान्ति का अरुणोदय, सर्वसेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 1971।
हरिवल्लभ परीख	स्वप्न हुए साकार, सोसाइटी फॉर डेवलपिंग ग्रामदान, 1972।
गांधीजी	हमारे गांवों का पुनः निर्माण, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद।
गांधीजी	ग्राम स्वराज्य, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद।
	जनगणना रिपोर्ट : वड़ोदा जिला, 1961।
एल. एम. श्रीकांत	ट्राइबल सोविनियर, भारतीय आदिमजाति सेवक संघ, नई दिल्ली।
ए. आर. देसाई	रूरल इन्डिया इन ट्रांजिशन।
विमलशाह	गुजरात के आदिवासी गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद, 1968।
हरिशचन्द्र उप्रेती	भारतीय जनजातियां राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, 1970।
स्टेफन फुच	द एवओरिजनल ट्राइब्स आफ इंडिया मैकमिलन 1973।
बी. एन श्रीवास्तव	एक्सप्लायटेशन इन ट्राइबल एरिया भा. आ. जा. सेवक संघ, नई दिल्ली, 1961।
ब्रानिस्लाव मेलिनाव्यस्की	वन्य समाज में अपराध और प्रथा (क्राइम एण्ड कस्टम इन सेवेज सोसाइटी) म. प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल,
पी. सी. विश्वास	संथाल्स ऑफ द संथाल परगना 1956।

वाल्टर जी ग्रीफिथ्स	द कोल ट्राइबल ऑफ सेन्ट्रल इंडिया द रायल एसियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, (कलकत्ता) 1946।
अनिल कुमार दास	द अरन्स ऑफ सुन्दरवन 1963।
टी. बी. नायक	बारह भाई बिभवार म. प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, 1971।
टी. बी. नायक	द भिल्स : एक स्टडी भारतीय आदिम जाति सेवक संघ, 1956।
जी. एस. घुर्ये	द शिड्यूल ट्राइब्स।
ई. डी. रायल	एन्थ्रोपलाजी, खण्ड 2, फिफ्थ मार्डन गौ वाट्स एण्ड कं., लन्दन, 1946।
पी. जी. शाह	द डुबला ऑफ गुजरात भा. आ. जा. सेवक संघ, 1958।
मैक्स ग्लुकमैन	आर्डर एण्ड रिबेलियन इन ट्राइबल्स
बी. रघुवैया	ट्राइब्स ऑफ इंडिया भारतीय आ. जा. सेवक संघ, 1971।
जे. सी. माइकेल	आर्डर एण्ड रिबेलियन इन ट्राइबल अफ्रिका न्यूयार्क।
परिपूर्णानन्द	प्राचीन भारत की शासन प्रणाली श्री राम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा,
प्रो. एन. बी. परांजपे	अपराध शास्त्र एवं आपराधिक न्याय प्रशासन म. प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
मैकम मेरियट	ग्रामीण भारत राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1973।
राबर्ट रेडफील्ड	कृषक समाज तथा कृषक संस्कृति राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1973।
हर्षदेव मालवीय	विलेज पंचायत इन इन्डिया अ. भा. कां. कमेटी, नई दिल्ली 1956।

इन्डियन पेनल कोड, भारत सरकार
सिविल प्रोसीजर कोड, भारत सरकार
क्रिमिनल प्रोसीजर कोड, भारत सरकार
इंडियन एविडन्स एक्ट, भारत सरकार
हिन्दू उत्तराधिकार विधेयक, भारत सरकार।

विषयानुक्रमणिका